देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
June 2026
(Special)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Issue Editor :
Dr. Vikas Sharma

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 23 ISSUE-6 (जून 2026, विशेषांक) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

विशेषांक सम्पादक :

डॉ. विकास शर्मा

डायरेक्टर, गुरू विद्यापीठ, रोहतक।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – जून 2026 – विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. विकास शर्मा	09-09
2.	भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकास और वैश्विक संदर्भ	आकाश कुमार बाल्मीकि	11-15
3.	भारतीयज्ञानपरम्परायां संस्कृतसाहित्ये महाकविकालिदासस्य मेघदूते मानवीयमूल्यवोधाध्ययनम्	अजित कुमार नायक	16-18
4.	दलित चेतना और भारतीय ज्ञान परंपरा : जयप्रकाश कर्दम की कहानियों का विश्लेषण	डॉ. अंजली बी कुमार	19-22
5.	**Indian Epics as a Source of Management Wisdom : Insights from Bhagavad Gita and Kautilya's Arthashastra for Global Leadership and Sustainable Development**	**Apoorva Sharma**	**23-28**
6.	भारतीय ज्ञान परंपरा : दलित-स्त्री लोक-श्रम एवं स्वदेशी ज्ञान	आशा	29-32
7.	**ECOLOGY AND WATER MANAGEMENT IN BRIHATSAMHITHA**	**Dr. Bhuvaneswary Kunjamma. VR**	**33-39**
8.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मानव चेतना का द्वंद	डॉ. दिलीप कुमार परसेंडिया	40-45
9.	लोकगीतों में रची बसी सनातन संस्कृति	जयन्त कुमार बोरो	46-50
10.	चित्रेषु मौनाभिव्यक्तिः साहित्ये च शबदाभिव्यक्ति : एकं तुलनात्मकं अध्ययनम्	**Dr. Lakshmi C**	**51-55**
11.	ओडिसी संगीत एवं नृत्य : एक अध्ययन	के. माधवी	56-61
12.	भारतीय ज्ञान प्रणाली : उद्योग में बदलाव और विकास	डॉ. बी. मल्लिका	62-66
13.	संगम साहित्य और सनातन महत्व	डॉ. बी. मल्लिका	67-70
14.	वर्तमान में भारतीय ज्ञान परम्परा : चरित्र निर्माण एवं नैतिक मूल्यों का आधार	डॉ. (श्रीमती) ममता सिंह	71-75

15.	भारतीय ज्ञान परंपरा और जयशंकर प्रसाद	डॉ. कुमारी मनीषा	76-78
16.	भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में वृद्धावस्था प्रबंधन : एक बहुविषयक अध्ययन	**Manuja. K. Mani**	**79-82**
17.	कौटिल्य का अर्थशास्त्र और आधुनिक राजकोषीय नीति	डॉ.(श्रीमती)मंजुलता कश्यप	83-87
18.	**Controlling the patterns of mind for everlasting peace From Patanjali's Yoga Sutra's view** (चित्तवृत्तिनिरोध और मानसिक शान्ति)	**Dr. S. Narasimhan**	**88-93**
19.	'प्रवासी साहित्य में झलकती भारतीय जीवन-दर्शन' संदर्भ : 'अखबार वाला' (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)	डॉ. नर्मदा. पी	94-99
20.	योग और चित्त वृत्ति : चेतना से न्यूरॉन तक की यात्रा	डॉ. नेहा प्रधान	100-103
21.	भारतीय ज्ञान परंपरा में हिन्दी साहित्य का योगदान	डॉ. पूनम सिंह	104-109
22.	**LORD RAM'S ACTIONS AND INCLUSION OF YOG**	**Dr. Ved Prakash Arya, Prachi Jain**	**110-117**
23.	सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों और पुस्तकालयों की भूमिका का विधिक अध्ययन	प्रीति कनाड़िया	118-121
24.	आधुनिक हिंदी काव्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का निर्वहन (पंजाब की कविता के संदर्भ में)	प्रीति गुप्ता	122-125
25.	**Food Adulteration and the Necessity of a Sattvic Diet**	**Ms. Priya kumari, Dr. Reshma Xalxo**	**126-129**
26.	भारतीय ज्ञान परंपरा : हिन्दी साहित्य के आलोक में	डॉ. प्रिया सिंह	130-134
27.	भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में सुशीला टाकभौरे और जया जादवानी के कथा साहित्य में नारी अस्मिता का तुलनात्मक अध्ययन	पूर्णिमा सूर्यवंशी	135-142
28.	संत कबीर की वाणी में भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्त्व	डॉ. पुष्पांजलि रंजन	143-146
29.	डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्य में दलित महिला अस्मिता : 'उपासना' और 'छप्पर' के विशेष संदर्भ में	राठौड़ श्रावण	147-151

30.	**DIVINE FEMINISM IN HIMACHALI SACRED FAIRS : INDIAN KNOWLEDGE TRADITION AND HOLISTIC GLOBAL UPLIFTMENT**	**Reena Chauhan**	**152-157**
31.	महानगर और समकालीन उपन्यासों का यथार्थ	डॉ. रोसी पी. वर्गीस	158-161
32.	भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आलोक में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शिक्षा-दर्शन का बहुविषयक अध्ययन : शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन	सागर सिंह सिरोला	**162-167**
33.	**Philosophies of Non-Binarism : Tracing the Influence of Indian Spiritual Traditions on Contemporary Western Critical Thought**	**Dr. Sambhu R**	**168-172**
34.	संजीव की कहानियों में नारी	डॉ. सनु थोमस	173-175
35.	वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता एवं भविष्य की संभावनाएं	डॉ. शिवकरण निमल	176-180
36.	ग्रामीण महिलाओ के सशक्त विकास में स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति का अध्ययन	सोनम डावर, डॉ. वर्षा पटेल	181-187
37.	सनातन धर्म में सत्य की परिभाषा	डॉ. डी. श्रीदेवी	188-191
38.	परवरिश की नई परिभाषा : 'मंजरी'	श्रीलक्ष्मी. एस.आर	192-195
39.	कबीरदास की वाणी में भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक आयाम	डॉ. श्रीनिता पी. आर.	196-198
40.	भारतीय ज्ञान परम्परा और नीतिकाव्य : वैश्विक उत्थान के संदर्भ में	प्रो. सुमन सिंह	199-203
41.	भारतीय ज्ञान परंपरा में दिव्यांगजन और पुनर्वास	सुनील कुमार	204-207

संपादकीय...

भारतीय ज्ञान परम्परा : आधुनिक युग के लिए मार्गदर्शक

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध ज्ञान–धाराओं में से एक है। वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, योग, गणित, ज्योतिष, साहित्य तथा नैतिक मूल्यों की यह परम्परा केवल भारत की ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता की धरोहर है। आज जब संसार भौतिक प्रगति के साथ–साथ मानसिक तनाव, पर्यावरण संकट और नैतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा एक संतुलित एवं मानवीय जीवन–दृष्टि प्रदान करती है।

भारतीय चिंतन का मूल आधार 'सत्य की खोज' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का आदर्श रहा है। महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी और अनेक ऋषि–मुनियों ने ज्ञान को केवल पुस्तकीय जानकारी नहीं, बल्कि जीवन को श्रेष्ठ बनाने का साधन माना। योग और आयुर्वेद आज विश्वभर में स्वास्थ्य एवं जीवनशैली के महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। इसी प्रकार शून्य, दशमलव तथा गणित के अनेक सिद्धांतों ने आधुनिक विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परम्परा को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास सराहनीय है। विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विरासत से परिचित कराना समय की आवश्यकता है। इससे उनमें आत्मगौरव, नैतिकता तथा राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

हालाँकि, केवल गौरवगान करना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं मानवीय पक्षों का अध्ययन और अनुसंधान किया जाए तथा उन्हें आधुनिक संदर्भों से जोड़ा जाए। अंधविश्वास और रूढ़ियों से ऊपर उठकर ज्ञान के वास्तविक स्वरूप को समझना ही इस परम्परा का सम्मान होगा।

निष्कर्षतः, भारतीय ज्ञान परम्परा अतीत की विरासत भर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। यदि हम इसके मूल्यों और सिद्धांतों को अपने जीवन में अपनाएँ, तो एक सशक्त, नैतिक और समृद्ध समाज का निर्माण संभव है।

–डॉ. विकास शर्मा

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकास और वैश्विक संदर्भ

आकाश कुमार बाल्मीकि
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
बर्धवान विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल।

शोध सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध ज्ञान परंपरा है। इसका विकास वैदिक काल से आधुनिक युग तक निरंतर होता रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा में धार्मिक चिंतन, आध्यात्मिक चिंतन, दर्शन, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष, साहित्य, शिक्षा, राजनीति, योग, कला और विज्ञान जैसे क्षेत्रों का समावेश है। प्राचीन भारत में नालंदा विश्वविद्यालय और तक्षशिला विश्वविद्यालय जैसे शिक्षा के प्रमुख केन्द्र स्थापित थे। यहाँ पर देश–विदेश विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। भारतीय विद्वानों का शून्य, दशमलव, ज्योतिष, आध्यात्मिक चिंतन आदि क्षेत्रों में योगदान रहा है। आज योग, आयुर्वेद, ध्यान और भारतीय दर्शन संबंधी विचारों को पूरे विश्व में स्वीकार किया जा रहा है। वैश्विक संदर्भ में देखें तो भारतीय ज्ञान परंपरा मानवता, नैतिकता और वसुधैव कुटुम्बकम जैसे मूल्यों के कारण विशेष महत्व रखती है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि विश्व मानव समाज के लिए भी मार्गदर्शन का स्रोत है।

बीज शब्द :

भारतीय ज्ञान परंपरा, वैदिक काल, उपनिषद, आयुर्वेद, योग, गणित, शून्य, दशमलव, दर्शन, संस्कृति, आध्यात्मिक, नैतिकता, वसुधैव कुटुम्बकम्, वैश्वीकरण, मानव कल्याण, विश्व शांति, सांस्कृतिक धरोहर, पुनर्जागरण, वैश्विक प्रभाव, नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय।

शोध विस्तार :

भारतीय ज्ञान परंपरा से आशय बौद्धिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धारा से है। यह धारा हजारों वर्षों से भारत में विकसित होती रही है। यह परंपरा जीवन को जानने–समझने हेतु दृष्टि प्रदान करती है। इस ज्ञान परंपरा का मुख्य उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति नहीं, बल्कि आत्मिक और नैतिक विकास करना है। इस परंपरा का आधार केवल पुस्तक ज्ञान या धार्मिक मान्यताओं तक सीमित नहीं, बल्कि मानव जीवन के समग्र विकास से जुड़ी है। भारतीय ज्ञान परंपरा के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं – वेद और उपनिषद, आध्यात्मिकता, गुरु–शिष्य परंपरा, धर्म और नैतिकता समन्वय की भावना, प्रकृति के प्रति सम्मान, लोककल्याण की भावना, योग और ध्यान,

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समग्र जीवन–दृष्टि।

इन परंपरा का सबसे प्रमुख आधार वेद, उपनिषद, पुराण आदि प्राचीन ग्रंथ हैं। वेदों में विभिन्न विषयों पर ज्ञान का वर्णन मिलता है, जैसा– सनातन धर्म, संस्कृति, आयुर्वेद, खगोल, गणित, ज्योतिष इत्यादि। ऋग्वेद में प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति के साथ–साथ चिकित्सा के संकेत मिकते हैं। अथर्वेद में औषधियों सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध है। "ऋग्वेद में ही जल जहाज, वायु विमान, ग्रह, नक्षत्र, तारे, गणनाएं, आकाश गंगा, सूर्य, चंद्रमा से लेते हुए कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण जैसी तकनीक देखने को मिलती हैं।"[1]

उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म, जीवन और मृत्यु जैसे प्रश्नों पर गंभीर चिंतन मिलता है। 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' जैसे महावाक्य मानव की आध्यात्मिक चेतना को व्यक्त करते हैं। इस तरह उपनिषदों ने भारतीय दर्शन को नई दिशा दी।

रामायण और महाभारत भारतीय ज्ञान के दो महान ग्रंथ माने जाते हैं। यह दोनों केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय समाज, राजनीति, नैतिकता और संस्कृति के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। जहाँ रामायण में आदर्श जीवन–मूल्य प्रस्तुत किए गए हैं, वहीं महाभारत में राजनीति, युद्धनीति, नैतिक द्वंद्व और धर्म का विश्लेषण देखने को मिलता है। 'भगवतगीता' महाभारत का ही महत्वपूर्ण अंश है। जिसमें धर्म, कर्म और जीवन का ज्ञान है, जो कि हमें जीने की कला सिखाती है।

लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ। इसने भारतीय ज्ञान परंपरा को नई दिशा दी। गौतम बुद्ध ने करुणा, अहिंसा और मध्यम मार्ग पर बल दिया। महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और सत्य का संदेश दिया। जैन दर्शन में तर्क और नैतिकता पर विशेष ध्यान दिया गया है। बौद्ध शिक्षा के केन्द्र नालंदा और तक्षशिला विश्वविख्यात विश्वविद्यालय थे। हिन्दी के प्रथम रचनाकार सिद्ध सरहपाद ने भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रकाश में ही कहा है :–

''जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नांह पवेश।
तहि बढ चित्त बिसाम करू, सरहे कहिअ उवेस।''
''पंडिअ सअल सत्ता बक्खाणइ। देहहि रूद्ध बसंत न जाणइ।''[2]

प्राचीन भारत विज्ञान और गणित क्षेत्र में काफी समृद्ध रहा है। शून्य की खोज, दशमलव पद्धति, बीज गणित और ज्यामिति में भारतीय गणितज्ञों ने विश्व को अनेक महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। आर्यभट्ट ने हमारी पृथ्वी की गोलाकारता और ग्रहों की गति पर महत्वपूर्ण सिद्धान्त दिए। सुश्रुत शल्य चिकित्सा के जनक माने जाते हैं, उन्होंने सर्जरी की तकनीकों का वर्णन किया। चरक संहिता में चिकित्सा और औषधियों का वर्णन है। "विद्वानों के योगदानों को वैश्विक पटल पर देखें तो चरक ने प्राचीन भारत चिकित्सा एवं आयुर्वेद को आगे बढ़ाया एवं चरक संहिता उनकी चिकित्सा ज्ञान का व्यापक संकलन है, जिसमें शरीर क्रिया, रचना विज्ञान तथा रोग प्रबंध शामिल हैं। जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में इलाज पद्धति कैसी थी।"[3]

आदिकालीन शिक्षा सनातन धर्म पर आधारित थी। वह विद्या प्रदान थी। विद्या ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करती है। मनुष्य को सात्विक पथ पर चलने की प्रेरणा देती है। मानवता का मूल भाव मनुष्य के भीतर जगाती है। नारायण पंडित लिखते हैं– **''विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।**
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्।''[4]

मध्यकालीन भारतीय ज्ञान परंपरा की बात करें तो उस दौरान भक्ति और सूफी आंदोलन ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया। भक्ति आंदोलन में कबीर, तुलसीदास, सूरदास और मीरा जैसे संतों ने समाज को भक्ति, प्रेम और सामाजिक समानता का संदेश दिया। सूफी संतों ने भी मानवता, प्रेम और सहिष्णुता पर बल दिया।

आधुनिककाल की शुरुआत 19 वीं शताब्दी से माना जाता है। इस काल में समाज, राजनीति, शिक्षा, धर्म और संस्कृति में व्यापक परिवर्तन हुए। अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। यही परिवर्तनशील चेतन ही 'भारतीय पुनर्जागरण' कहलाया। राजा राममोहन राय ने सामाजिक सुधार और आधुनिक शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने सती–प्रथा का विरोध किया और ब्रह्म समाज की स्थापना की। स्वामी विवेकानंद ने भारतीय संस्कृति और वेदांत को विश्व भर में स्थापित किया, और आध्यात्मिकता का प्रचार किया। वहीं महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा और ग्राम स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की।

दर्शन, योग, आयुर्वेद, शिक्षा व्यवस्था आदि भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख आयाम हैं। न्याय, वैशेषिक, संख्या, योग, मीमांसा, वेदांत ये छह आस्तिक दर्शन प्रमुख हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ अंग पतंजलि के योगसूत्र में बताए गए हैं। योग को विश्वभर में स्वास्थ्य और मानसिक शांति के लिए अपनाया जा रहा है। आज के समय में आयुर्वेद की प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में लोकप्रियता बढ़ रही है। यह शरीर, मन और आत्मा के संतुलन पर आधारित चिकित्सा पद्धति है। स्वास्थ्य को प्राकृति के अनुरूप बनाए रखने की प्रेरणा भी देता है। प्राचीन भारत की गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था जीवन–केंद्रित शिक्षा पर आधारित थी। नालंदा, विक्रमशिला और तक्षशिला ज्ञान के अंतरराष्ट्रीय केंद्र थे।

वर्तमान संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा का वैश्विक संदर्भ :

आज का समय विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण के युग है। वर्तमान जीवन में भौतिक प्रगति तो हुई है, परन्तु इसके साथ मानसिक तनाव, नैतिक पतन, पर्यावरण संकट और सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याएं बढ़ी हैं। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा अधिक प्रासंगिक है।

भारतीय योग विश्व में लोकप्रिय है। पूरे विश्व में योग को अपनाया जा रहा है। हर वर्ष संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' मनाया जाता है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा की वैश्विक स्वीकृति का प्रमाण है। आज आयुर्वेद को वैश्विक मान्यता प्राप्त है। प्राकृतिक चिकित्सा और जीवनशैली संबंधी समस्याओं के समाधान के रूप में आयुर्वेदिक उपचार केन्द्र स्थापित हो रहे हैं।

भारतीय दर्शन का पश्चिमी चिंतकों पर प्रभाव रहा है। जैन, वेदांत और बौद्ध दर्शन का प्रभाव आधुनिक मनोविज्ञान और दर्शन पर देखा जा सकता है। डॉ. सत्यप्रकाश लिखते हैं– "भारतवर्ष अब स्वतंत्र है। हमारा अतीत यह बताता है कि विचार स्वातंर्त्य और नवीन प्रयोगों के प्रति प्रवृत्ति–ये दोनों हमारी पुरानी परम्पराएं हैं। इस देश ने यूनान, अरब, मिस्र, फारस और चीन के साथ ज्ञान–विज्ञान का सदा आदान–प्रदान रक्खा और सबके सहयोग से रसायन, आयुर्वेद और ज्योतिष ही नहीं, समस्त शास्त्रीय विषयों की अभिवृद्धि की। यह हमारी पैतृक प्रवृति आज भी हमें उत्साहित कर सकती है और देश के गौरव को उन्नत करने में आवश्यक सहायक हो सकती है।"[5]

पर्यावरण की दृष्टि की बात करें तो भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ संतुलन पर बल देती है। सनातन

धर्म में प्रकृति केवल एक संसाधन नहीं, अपितु भारत में पृथ्वी को माता माना जाता है। 'धरती माता', 'नदी देवी', 'वन देवता' जैसे विचार भारतीय सांस्कृतिक चेतना के मूल में है। यह दृष्टिकोण गहरी पारिस्थितिक समझ का परिचायक है। वेदों और उपनिषदों में वर्णित 'ऋत' (सन्तुलन) ब्रह्मांड की प्राकृतिक लय को दर्शाती है। मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह इस 'ऋत' के अनुसार जीवन जिए। वे न ही अधिक प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करे, न ही शोषण करे। यही विचार वर्तमान में Sustainable Devlopment से मेल खाता है। पुराणों और स्मृतियों में वृक्षों की पूजा–पीपल, वट, तुलसी का जिक्र है। हमारे पूर्वजों ने जैव विविधता की रक्षा को सांस्कृतिक जीवन में प्रमुखता दी है। यही कारण है कि गोवर्धन पूजा, नर्मदा परिक्रमा, गंगास्नान जैसे अनुष्ठान प्राकृतिक संरक्षण के प्रतीक है।

आज हमारी पृथ्वी जलवायु संकट, प्रदूषण और संसाधनों के दोहन जैसी समस्याओं से जूझ रही है। ऐसे वक्त में भारतीय ज्ञान परंपरा की यह पर्यावरण चेतना एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करती है। हमें इसी दृष्टिकोण को आधुनिक नीतियों, शिक्षा और जीवन शैली में अपनाने की जरूरत है। इसके द्वारा सतत विकास के लक्ष्य को सहज रूप से प्राप्त किया जा सकता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना आज के संघर्षपूर्ण विश्व के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह भावना वैश्विक शांति और मानवता स्थापित करती है। इसके साथ ही विश्वबंधुत्व का संदेश भी देती है।

योग और ध्यान द्वारा आधुनिक जीवन के तनाव को कम किया जा रहा है। आज भौतिकवाद के बढ़ते प्रभाव के बीच नैतिक मूल्यों की अति आवश्यकता है। ऐसे में भारतीय ज्ञान परंपरा नैतिकता और मानवता की शिक्षा देती है। आज की शिक्षा व्यवस्था को चाहिए कि वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के बीच संतुलन करे। विज्ञान और तकनीक के साथ–साथ आत्मज्ञान, सेवा, करुणा और सह–अस्तित्व जैसे मूल्यों को भी केन्द्र में रखा जाना आवश्यक है। इस प्रकार यह शिक्षा रोजगारपरक होने साथ जीवनपरक भी हो।

नई शिक्षा नीति के तहत भारतीय ज्ञान परंपरा को विशेष महत्व दिया जा रहा है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में सांस्कृतिक चेतना और नैतिक दृष्टि का विकास किया जाएगा। इसके लिए सातत्य सिद्धान्त की आवश्यकता है। इस रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है– "यह मानना तो ठीक है कि आर्थिक उन्नति जीवन और प्रगति का बुनियादी आधार है, लेकिन जिंदगी वहीं खत्म नहीं होती। वह आर्थिक विकास से कहीं ऊँची चीज है। इतिहास के अंदर हम दो सिद्धान्तों को काम करते देखते हैं– एक तो सातत्य का सिद्धांत है और दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी लगते हैं, परन्तु ये विरोधी नहीं। सातत्य का कुछ अंश लिए रहता है।"[6]

प्राचीन समय में भारतीय परंपरा में गणित, ज्योतिष, खगोल शास्त्र, चिकित्सा, संगीत, नाट्य, शिल्प, कृषि, पशुपालन, दर्शन जैसे बहुआयामी विषयों का समावेश किया जाता था। साथ ही नैतिकता (धर्म), सामाजिक व्यवस्था (पुरुषार्थ) और आत्म–ज्ञान को भी शिक्षा का अंग माना जाता था।

आज की शिक्षा व्यवस्था में औपनिवेशिक प्रभाव अधिक है, जिसके कारण मूल्य शिक्षा, जीवन कौशल और आध्यात्मिक विवेक की कमी देखी जा सकती है। बच्चों में तनाव, आत्महत्या, नैतिक भ्रष्टाचार आदि इसी असुंतलन के लक्षण हैं। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा का पुर्नस्थापन करने

का प्रयास है। इसकी तरह भारतीय भाषाओं, संस्कृत, योग, आयुर्वेद और स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को शिक्षा के केन्द्र में लाने का संकल्प किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार – "वैश्विक परिदृश्य बहुत तेजी से बदल रहा है, इसलिए बच्चों व युवाओं को ऐसा ज्ञान सीखाया जाए तो तार्किक एवं सदुपयोगी हो तथा जो कुछ सीखाया जाए उसे भी सीखने के साथ ही सतत सीखने की कला को भी सीखें। प्राचीन काल से ही भारत ज्ञान का केन्द्र रहा है। ज्ञान परंपरा और सत्य की खोज को भारतीय दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा विद्यालय के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में नहीं बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया"[7] भारतीय ज्ञान परंपरा के समक्ष कई सारी चुनौतियां हैं। शिक्षा प्रणाली में पाश्चात्य मॉडल का वर्चस्व, पारंपरिक भाषाओं, लिपियों की उपेक्षा, सामाजिक विषमता, नैतिक मूल्यों में गिरावट और प्रकृति से दूर होती जीवनशैली ये सभी समस्याएं हैं। इनका हल निकाला जा रहा है।

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा मानव सभ्यता की एक अमूल्य धरोहर है। इस ज्ञान परंपरा का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। इसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का व्यापक ज्ञान शामिल है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग के सफर में भारतीय ज्ञान परंपरा ने मानवता को आध्यात्मिक, नैतिकता, विज्ञान, चिकित्सा और सामाजिक समरसता का मार्ग दिखाया है।

आज विश्व हिंसा, तनाव, नैतिक पतन और पर्यावरण जैसी समस्याओं से गुजर रहा है, ऐसे में भारतीय ज्ञान परंपरा नई दिशा प्रदान कर सकती है। योग, आयुर्वेद, वेदांत और 'वसुधैव कुटुम्बकम' जैसे सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व के लिए बेहद आवश्यक है।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा बको केवल अतीत की विरासत न मानकर वर्तमान और भविष्य के विकास का आधार बनाया जाए। इसके संरक्षण, अध्ययन और वैश्विक प्रसार से भारत ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता को भी लाभ प्राप्त होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. आर. ए. माशेलकर, मिश्र, विनोद कुमार, ज्ञान का युग और भारत, दिल्ली प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 19
2. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृष्ठ 46
3. प्रसाद, ओम प्रकाश, आधुनिक भारत में विज्ञान, दिल्ली राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018, पृष्ठ 230
4. पंडित, नारायण, हितोपदेश (संस्कृत), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, काशी, श्लोकः सं 06, पृष्ठ 05
5. डॉ. सत्यप्रकाश, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण 1954
6. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती, पेपर बैक्स, इलाहाबाद, पृष्ठ 21
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 05

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 16-18
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीयज्ञानपरम्परायां संस्कृतसाहित्ये महाकविकालिदासस्य मेघदूते मानवीयमूल्यवोधाध्ययनम्

अजित कुमार नायक
विद्यावारिधि, शोधार्थी, स्नातकोत्तर साहित्य विभाग
श्रीजगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, श्रीविहार, पुरी, ओडिशा।

शोधसारः (Abstract)

महाकविकालिदासस्य "मेघदूतं" खण्डकाव्यं संस्कृतसाहित्ये स्मारकीयकृतिरूपेण तिष्ठति, यत् गीतात्मकसौन्दर्यस्य, भावगहनतायाः च कृते प्रसिद्धा अस्ति। अत्र न केवलं शृंगारप्रवणं सौन्दर्यमयम्, अपि तु मानवीयमूल्यवोधानां सशक्ताभिव्यक्त्याः उदाहरणमपि अस्ति। अस्मिन् पत्रे काव्यस्यान्तर्निहितानां मानवीयमूल्यवोधानां गहनमध्ययनं क्रियते, कथात्मकसंरचनायाः, चरित्रगतिशीलतायाः, प्रतीकात्मकतत्त्वानां च विश्लेषणं कृत्वा यत्र यक्षस्य विरहव्यथा–सौहार्द–श्रद्धा–सहानुभूति–आत्मनिग्रहः–सौन्दर्यबोधः–पारिवारिकनिष्ठा–प्रेम–आङ्काक्षा–मानवदिव्यतान्तःक्रिया –इत्यादीनां विषयाणामन्वेषणं कृतं। अत्र न केवलं भारतीयमतान्यपि तु पाश्चात्यविचारकानामपि मतानि समीक्ष्यन्ते। अस्याध्ययनस्योद्देश्यं भवति यत् कालिदासस्य कार्यं कथं स्वस्य पौराणिकसन्दर्भमतिक्रम्य मानवस्य स्थितिविषये कालातीतमन्वेषणं प्रदातुं शक्नोति।

प्रस्तावना :

भारतीयसाहित्ये कालिदासस्य स्थानं सम्राटवत् वर्तते। सः न केवलं कविरसिकः न, अपितु दार्शनिकः, जीवनद्रष्टा, तथा च मानवीयमूल्यविचारकरपि आसीत्। पञ्चमशताब्द्यां रचितं मेघदूतः न केवलं स्वकर्तव्यस्योपेक्षायाः कारणेन दूरप्रदेशं निर्वासितस्य यक्षस्य मार्मिककथां कथयति अपि तु विरहवेदनां, सौन्दर्यशक्तिं, तथा सामाजिकसंज्ञामूल्यानि यथा करुणा, सहानुभूति, प्रेम, श्रद्धा इत्यादीनि प्रतिपादयति।

भारतीयदृष्ट्या साहित्यं केवलं मनोविनोदाय नापि तु लोकशिक्षायै, जीवनोपदेशाय, संस्काराय च माध्यमं भवति। यथोक्तं विश्वनाथेन –

"साहित्ये स्फुरति धर्मो न च केवलं कविता।[1]"

अपि च – "चतुर्वर्गफलप्रप्तिः सुखादल्पधियामपि।[2]"

अनेन पाठेन प्रतिपाद्यते यत् कालिदासकाव्यं धर्मोपदेशरूपेण कार्यं करोति।

मेघदूतमाध्यमेन कालिदासः यक्षस्य विरहव्यथया बहवो मानवीमूल्यवोधाः सहृदयचेतस्यारोपयति। आधुनिककालस्य भूमिकायामपि एते मूल्याः सान्दर्भिकाः दृश्यन्ते।

1. साहित्यदर्पणे

2. साहित्यदर्पणे. १.२

3. मनुस्मृति 6.92

मानवीयमूल्यानां स्वरूपम् :

भारतीयदृष्टिः :

भारतीयसंस्कृतौ धर्मः–सत्यमहिंसा–करुणा–क्षमा–श्रद्धा–प्रेम इत्यादीनि मूल्यानि चिरकालात् प्रतिष्ठितानि सन्ति। यथा मनुस्मृतौ –

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।[3]"

एतानि गुणानि मानवजीवनस्य नैतिकाधाररूपेण चिन्त्यन्ते। एषां मूल्याणां प्रस्तुतिरेव साहित्यस्य परं लक्ष्यम्।

कालिदासस्य मेघदूतम् – काव्यपरिचयः :

कालिदासविरचितं मेघदूतं खण्डकाव्यमस्ति – तत् द्विधा विभक्तं पूर्वमेघः (६६ श्लोकाः) उत्तरमेघः (४५ श्लोकाः) श्चेति। स्वकर्तव्यस्योपेक्षया यक्षः कुबेरस्य शापेन एकवर्षं दूरं रम्यालकानगरीतः निर्वासितः भवति। वर्षाकाले प्रथमं जलदं दृष्ट्वा तं दूतं कृत्वा सः स्वपत्नीं प्रति प्रेम सन्देशं प्रेषयति।

यद्यपि मेघदूतस्य अङ्गी विप्रलम्भो शृङ्गारः वर्त्तते, तथापि तत्र प्रकृतिवर्णनं, भावनात्मकतत्त्वम्, मानवीयदृष्टिः, सांस्कृतिकसंवेदनशीलता चापूर्वरूपेण प्रकटितानि।

मानवीयमूल्यानां विश्लेषणम् :

प्रेमः :

मेघदूतस्य अङ्गी विप्रलम्भो शृङ्गारः, यः यक्षस्य स्वप्रेयसीं प्रति गहनस्नेहेन चित्रितोऽस्ति। तयोः वियोगः यक्षस्य विरहात्मकयात्रायाः उत्प्रेरकः भवति, यत् शारीरिकदूरतायामपि मानवीयानुभवं, प्रेम्णः स्थायित्वञ्च प्रतिबिम्बयति। यक्षस्य विरहदुःखं, पत्नीस्मरणं, सौहार्दं च प्रेमस्य गूढाभिव्यक्तयः सन्ति। प्रथमं जलदं दृष्ट्वा यदा सः तं दूतं कर्तुमिच्छति, तदा तस्य हृदये स्थितं दारुणं प्रेमं व्यक्तं भवति।

श्रद्धा :

यक्षस्य मेघे विश्वासः दैवीशक्तेः प्रतीकः भवति। यः मेघः चेतनत्वरहितः पदार्थः, स यक्षस्य भावप्रेषणाय पात्रं भवति। अत्र श्रद्धायाः मूल्यं स्पष्टं दृश्यते। मेघेन सह यक्षस्यान्तःक्रिया दिव्यहस्तक्षेपस्य परिचयं यच्छति। सः यदा स्वसन्देशं प्रेषयितुं मेघमवलम्बते तदा सन्देशप्रेषणक्रियायामपरम्परागतसाधनेनापि मानवीयभावनया सह सम्पर्कं निर्वाहयितुमिच्छा च प्रतिबिम्बिता भवति।

आङ्काक्षा :

मेघं प्रति यक्षस्य याचना प्रतिकूलतायामप्याशायाः मानवीयक्षमतायाः प्रतीकं भवति। मेघः तस्य प्रियायाः च मध्ये अन्तरं पूरयितुं शक्नोतीति तस्य विश्वासः विरहकाले आशायाः स्थायिबलत्वेन महत्त्वं विस्तारयति।

करुणा सहानुभूतिश्च :

यक्षः जलदस्य विश्रान्तये स्थलनिर्देशं दत्त्वा, तस्य श्रमस्य परिगणनां करोति। अत्र सहानुभूतेः भावः सूक्ष्मतया प्रतिबिम्बितः।

आत्मनिग्रहः :

यद्यपि विरहदाहेन सन्तप्तः, यथार्थतः आक्रोशं वा क्रन्दनं न प्रदर्शयति। यथासम्भवं सभ्यतया, सानुनयेन, सौम्यतया च संवादं करोति। यक्षस्य चरित्रे मानवीयभावानां जटिलताः समाहिताः सन्ति। निर्वासनं यावत् गच्छत् कर्तव्यं प्रति तस्य प्रारम्भिकमुपेक्ष्य मानवीयदोषत्वं प्रतिपादयति, तदनन्तरं पश्चात्तापः, प्रेयस्याः मिलनेच्छा च आत्मजागरूकतायाः भावनात्मकवृद्धेः च क्षमतां प्रकाशयति। तस्य प्रियया सह सम्बन्धः यद्यपि दूरस्थः तथापि प्रेमप्रतिबद्धतायाः स्थायित्वं प्रतिपादयति।

सौन्दर्यबोधः :

प्रकृतिवर्णनेषु कालिदासः केवलं दृश्यसौन्दर्यं न वर्णयति, अपितु तेन सौन्दर्यस्याध्यात्मिकमूल्यमपि प्रकाशितम्। कालिदासस्य प्रकृतेः सजीववर्णनानि मानवभावानां रूपकरूपेण कार्यं कुर्वन्ति। परिवर्तनशील–ऋतुः, वृष्टिः, परिदृश्यानि च यक्षस्यान्तरिकक्षोभस्य, इच्छां प्रकटीकुर्वन्ति, येन मनुष्याणां प्राकृतिकजगतश्च परस्परसम्बन्धः चित्र्यते।

पारिवारिकनिष्ठा :

यक्षस्य चिन्तनं सर्वदा पत्न्याः विषये प्रवर्तमानं दृश्यते। सः स्त्रीप्रतिस्नेहमादर्शदाम्पत्यं, पारिवारिकसंबन्धानां शुचिता च सम्यग्दर्शयति।

निष्कर्षः :

महाकविकालिदासविरचितं मेघदूतं साहित्ये केवलं शृङ्गारस्य रमणीयवर्णनमेव नापि तु मानवीयजीवनस्य गूढसत्यस्य सार्थकप्रतिनिधित्वं करोति। यक्षस्य व्यक्तित्वं मानवीयमूल्यानामादर्शरूपेण प्रस्तुतं, यत्र प्रेम, श्रद्धा, सहिष्णुता, करुणा, आत्मनिग्रहः, पारिवारिकनिष्ठा च अभिव्यक्ताः सन्ति।

अतः मेघदूतं केवलं काव्यमात्रं नापि तु जीवनस्य शाश्वतसारस्य दर्पणरूपेण शिक्षायाः आदर्शमाध्यमं चास्ति।

सन्दर्भसूची :

- कालिदासकृत मेघदूत – डॉ. प्रफुल्ल चन्द्र त्रिपाठी – गोपबंधु साहित्य मन्दिर – गोपबंधु भबन समाज ऑफिस – बक्सी बाजार – कटक – ७५३००१
- कालिदासकृत मेघदूत – वासुदेवशरण अग्रवाल – राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड – १बी, नेताजी सुभाष मार्ग – दरियागंज – नईदिल्ली – ISBN – 9789387462298
- कालिदासकृत मेघदूत – डॉ. ब्रजसुंदर मिश्र – विद्यापुरी – बालूबाजार–कटक – ISBN – 9788174112910
- कालिदासीय भूगोल – डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी – रचना प्रकाशन – ५७ नाटाणी भवन – जयपुर – ३०२००१ – ISBN – 9789381953686
- Kalidasa - Sri Aurobindo & Translations – CWSA – Vol - 5 – Sri Aurobindo Ashram – Puducherry- 605002
- कालिदासकृत मेघदूतम्, सम्पा. वे. ना. आपटे, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
- मल्लिनाथः – मेघदूतटीका, कृष्णदास अकादमी, जयपुर।
- शास्त्री, गोविन्दकृष्णः – कालिदासकाव्येषु सांस्कृतिकतत्त्वम्, दिल्ली विश्वविद्यालयः।
- मिश्र, रामावतार – मानवमूल्यचिन्तनम्, चौखम्बा ओरिएण्टल, वाराणसी।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 19-22
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित चेतना और भारतीय ज्ञान परंपरा : जयप्रकाश कर्दम की कहानियों का विश्लेषण

डॉ. अंजली बी कुमार
अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग, एन. एस. एस. कॉलेज, पंदलम (केरल)

सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार समता, करुणा, न्याय, मानवता एवं लोकमंगल की भावना है। भले ही भारतीय समाज में समय के साथ जातिगत असमानताएँ विकसित हुईं, फिर भी भारतीय चिंतन की मूल धारा मानव गरिमा और समानता के पक्षधर रही है। हिंदी दलित साहित्य इसी मानवीय चेतना का आधुनिक साहित्यिक रूप है। समकालीन हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख कहानीकार जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के संघर्ष, सामाजिक विषमता, आत्मसम्मान और न्याय की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में जयप्रकाश कर्दम जी की कहानियों का भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि कर्दम की कहानियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा के मूलभूत मानवीय मूल्यों को समकालीन सामाजिक संदर्भों में पुनर–स्थापित करती हैं।

बीज शब्द रू– भारतीय ज्ञान परंपरा, दलित साहित्य, जयप्रकाश कर्दम, समता, सामाजिक न्याय, मानवता।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम ज्ञान परंपराओं में से एक हैं। इसका स्वरूप केवल आध्यात्मिक या दार्शनिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक भी है। वेद, उपनिषद, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन तथा संत साहित्य में मानव–मात्र की समानता और कल्याण की भावना निहित है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र "वसुधैव कुटुम्बकम्", सम्पूर्ण मानवता को एक परिवार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है। किन्तु सामाजिक संरचना में जातिगत भेदभाव और असमानता ने समाज के एक बड़े वर्ग को हाशिए पर पहुँचा दिया है। इस वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को अभिव्यक्ति देने के लिए दलित साहित्य का उदय हुआ। दलित साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के उन मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है जो समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित हैं। इसकी जड़ें भारतीय संत परंपरा में भी दिखाई देती हैं। कबीरदास, रैदास और नानक जैसे संतों ने जाति–पाँति का विरोध करते हुए मानव समानता का संदेश दिया। उनके विचारों ने आगे चलकर दलित चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी दलित साहित्य ने सामाजिक यथार्थ को सामने लाते हुए समानता, स्वतंत्रता और न्याय की स्थापना का प्रयास किया है।

दलित साहित्य और भारतीय ज्ञान परम्परा :

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया ही नहीं है, बल्कि जीवन को मानवीय मूल्यों से जोड़ने वाली सांस्कृतिक चेतना है। "भारतीय ज्ञान परम्परा एक समृद्ध और विविधतापूर्ण इतिहास रखती है, क्योंकि यह परम्परा हजारों सालों से चली आ रही है। जो सदियों से मानव सभ्यता को आकार देती रही है। यह परम्परा सिर्फ भारत की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि विश्व के विभिन्न हिस्सों में इसका गहरा प्रभाव पड़ा है"[1]। भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना तथा प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन प्रदान करना है। "भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्देश्य केवल आत्मकल्याण या मोक्ष प्राप्ति नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज और विश्व का कल्याण है। 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की भावना इसी दृष्टिकोण को दर्शाती है"[2]। इसी दृष्टि से दलित साहित्य को भारतीय ज्ञान परंपरा का आधुनिक और प्रगतिशील विस्तार माना जा सकता है।

जयप्रकाश कर्दम की कहानियों का विश्लेषण :

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में दलित कहानी की शुरुआत हुई। दलित साहित्यकारों ने अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रण करके कहानी विधा को आगे बढाया। इसमें निराशा को व्यक्त करने के साथ आशा को भी व्यक्त किया है। कर्दम की कहानियों में दलित उत्पीडन का चित्रण है, दलित विमर्श के साथ ही दलित चेतना भी है। उनका साहित्य समाज परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में विद्रोह की प्रमुखता ज्यादा है। अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाले पात्र उनकी रचनाओं की विशेषता है। 'तलाश' कहानी में दलितों के प्रति जातिगत ऊँच–नीच एवं उपेक्षापूर्वक व्यवहार का चित्रण मिलता है। कहानी का प्रमुख पात्र रामवीर सिंह विक्री कर विभाग में नौकरी करता है। वह किराए के घर की तलाश में है। पैसे होते हुए भी, दलित होने के वजह से उसे कहीं घर नहीं मिलता। हर जगह उसे अपनी जाति एक बाधा के रूप में आ जाते हैं। घर में खाना बनाने के लिए रामबती को नियुक्त करने पर घर वाले विरोध करते हैं क्योंकि वह निचली जाति की है, रामवीर इस पर अपना विचार व्यक्त करता है – "रामवीर सिंह ने मन में निश्चय किया कि वह रामबती से खाना बनवाना बंद नहीं करेंगे। और उन्होंने गुप्ता को जवाब दे दिया, यदि यह बात है तो मैं आपका मकान खाली करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन जातिगत भेदभाव के आधार पर मैं रामबती से खाना बनवाना बंद नहीं करूँगा"[3]। इसलिए वह काम पर जाने के बजाय नए मकान की तलाश में निकल पडता है।

'गंवार' कहानी अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित कहानी है। इसमें उन नयी पीढी को दिखाया है जो सपनों में जीते हैं। ये पैसों को अधिक महत्व देती हैं। इस कहानी में प्रभात और आभा दो महाविद्यालयीन मित्रों का चित्रण किया गया है। वे अपने जीवन में आंदोलन के साथ जुडकर अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं साथ ही अपने आदर्शों के साथ जीवन में सफल होते हैं। 'पगडी' कहानी में प्रगतिशील विचारों को बताया गया है। कहानी ग्रामीण जनता की सकारात्मक सोच को रेखांकित करती है। इसमें शादी के एक रस्म की पूर्ति के लिए दिशा के बारे में चर्चा होती है। उस वक्त पंचों द्वारा कही गयी बातें महत्वपूर्ण हैं कि– "सब दिशाएँ समान हैं। यह तो ब्राह्मण द्वारा फैलाया गया विश्वास है कि पूर्व दिशा की ओर मुँह करने से ही काम सही होते हैं। इस

ब्राह्मणवाद को कब तक ढोओगे"[4]। ब्राह्मणवाद और पितृसत्तात्मक विचारधारा के विरुद्ध खड़े होना एक बहुत बड़ी चेतना है क्योंकि उसके द्वारा फैलाए गए सारे विश्वासों को तोड देना एक विद्रोह है। कबीर ने जब अपने दोहे के द्वारा यह कहा था कि 'ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय। सुबरन कलश सुरा भरा साधू निंदित सोय।।' अर्थात, ऊँचे कुल में जन्म लेने से कोई ऊँचा नहीं होता है, अगर उसका कर्म उच्च नहीं। मदिरा से भरा हुआ कलश सोने के होने के बाद भी निंदनीय ही होता है, यह आज के समय में कितना प्रासंगिक है इस कहानी से हम जान सकते हैं। प्रगतिशील विचारों से महत्वपूर्ण है यह कहानी।

'नो बार' जयप्रकाश कर्दम की सबसे प्रमुख और चर्चित कहानी रही। यह कर्दम की ही नहीं हिंदी दलित साहित्य की सबसे प्रमुख कहानी है। सुशिक्षित समाज की कथनी और करनी में अंतर होता है। अपने आपको 'प्रोग्रेसीव' कहनेवाले लोगों का असली चेहरा समाज के सामने लाने का प्रयास किया गया है। कहानी का केंद्र एक शिक्षित, सभ्य और आधुनिक दिखने वाला परिवार है, जो अपने बेटी के लिए विवाह का रिश्ता ढूंढ रहा है। वे अखबार में विज्ञापन देते हैं जिसमें "नो बार" लिखा होता है – अर्थात वे जाति–धर्म या किसी भी चीज में भेदभाव नहीं मानते। एक योग्य, शिक्षित लड़के का रिश्ता आता है। लड़का हर दृष्टि से उपयुक्त होता है 'शिक्षा, संस्कार, व्यवहार' सब कुछ अच्छा है। लडकी का परिवार भी उससे प्रभावित होता है। लेकिन जब उन्हें यह पता चलता है कि लड़का दलित है, तो उनके व्यवहार में अचानक बदलाव आ जाता है। जिस परिवार ने पहले "नो बार" की बात की, उसी ने अब जाति के आधार पर रिश्ता ठुकराने की बात करते हैं। 'घर वापसी' में समकालीन भारत की दशा चित्रण है। आज के सवर्ण लोग धर्मांतरण की बात करते हैं, इसी के बारे में 'घर वापसी' कहते हैं। सभी धर्म अपना–अपना तर्क वितर्क करते हैं पर इसके प्रति दलित का जवाब सुनकर सब अवाक रहते हैं। कहानीकार ने इसमें व्यक्त किया है कि दलित जनता धर्मांतरण करने के लिए क्यों विवश है। इस विवशता के पीछे उनकी दर्दनाक कहानी है। उन्हें जिंदगी के हर कदम पर अपमान, दुत्कार सहना पड़ता है।

जयप्रकाश कर्दम ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज को नई दिशा देने की कोशिश की है। इसलिए उन्होंने पुरातन मूल्यों को फैंककर प्रगतिशील सोच को अपनाया। उनकी रचनाओं में मुखरित आवाज परिवर्तन की माँग करती है साथ ही सामाजिक असमानता का नाश और मानवीय कल्याण की कामना रखती है।

निष्कर्ष :

हिंदी दलित साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के मानवीय, समतामूलक, करुणा और न्यायपूर्ण मूल्यों का आधुनिक साहित्यिक रूप है। यह साहित्य समाज के उपेक्षित वर्गों की आवाज बनकर सामाजिक चेतना को जागृत करता है तथा समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा जहाँ मानवता और लोककल्याण का संदेश देती है, वहीं हिंदी दलित साहित्य उन मूल्यों को व्यवहारिक धरातल पर स्थापित करने का प्रयास करता है। इसलिए हिंदी दलित साहित्य को भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवंत और प्रासंगिक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ समता, न्याय और मानवीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। उनकी रचनाओं में दलित जीवन की पीड़ा के साथ–साथ संघर्ष, आत्मसम्मान और परिवर्तन की आकांक्षा भी दिखाई देती है। उनका साहित्य न केवल दलित समाज की आवाज है, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के सम्मान और अधिकारों की स्थापना का साहित्य भी है। इसलिए उनकी रचनाएँ समकालीन हिंदी दलित साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं।

संदर्भ सूचि :

1. डॉ. प्रदीप सिंह बघेल– 'भारतीय ज्ञान परम्परा – संक्षिप्त परिचय' – पीपुल्स विश्वविद्यालय भोपाल।
2. डॉ. मधु दुबे स्वर्णकार – 'भारतीय ज्ञान परम्परा – एक परिचय' – पृ. 22
3. जयप्रकाश कर्दम – 'तलाश' – पृ.
4. जयप्रकाश कर्दम, 'खरोंच'– पृ. 88
5. डॉ. ममता पांडेय– 'भारतीय ज्ञान परमपरा के संवाहक'।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 23-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Indian Epics as a Source of Management Wisdom : Insights from Bhagavad Gita and Kautilya's Arthashastra for Global Leadership and Sustainable Development

Apoorva Sharma
Research Scholar (Independent)

Abstract :

The Indian Knowledge Tradition (IKT) offers a multidisciplinary lens for addressing contemporary management challenges by integrating ethics, strategy, economics, and holistic well-being. This study explores management principles derived from the *Bhagavad Gita* and Kautilya's *Arthashastra* within the broader theme of Indian Knowledge Tradition for holistic global upliftment. Using hermeneutic and thematic analysis, the paper examines concepts such as *Karma Yoga*, equanimity, strategic statecraft, ethical governance, and sustainable resource management. These ancient insights are positioned as complementary to Western management theories, particularly in the context of ethical leadership, corporate sustainability, and VUCA environments.

The research highlights a prominent gap in existing literature: despite conceptual richness, there remains a significant shortage of empirical, longitudinal, and cross-cultural studies that validate IKT-based management models through measurable outcomes like ESG performance, employee well-being, and organizational resilience. This gap is critical for Indian commerce scholars under the NEP 2020 framework, which emphasizes IKS integration. The paper calls for rigorous interdisciplinary research to bridge ancient wisdom with modern business practices for sustainable global development.

Keywords : Indian Knowledge Tradition, Bhagavad Gita, Arthashastra, Ethical Management, Strategic Leadership, Holistic Upliftment, Research Gap, NEP 2020

1. Introduction :

The Indian Knowledge Tradition (IKT), encompassing ancient epics, philosophical texts, and treatises, presents a holistic approach to life and governance that transcends narrow disciplinary

boundaries. In the field of management and commerce, IKT offers valuable alternatives to dominant Western paradigms that often prioritize profit maximization over ethical and societal considerations (Mahadevan, 2012; Muniapan, 2019). The *Bhagavad Gita*, embedded within the Mahabharata epic, and Kautilya's *Arthashastra* (circa 4th century BCE) are two foundational texts of this tradition. The *Bhagavad Gita* focuses on inner transformation, duty, and leadership during crises, while the *Arthashastra* provides pragmatic frameworks for statecraft, economics, and administration (Kangle, 2010; Sharma, 2023). Together, they embody a multidisciplinary ethos that aligns individual development with organizational excellence and global welfare, resonating with the ideal of *Vasudhaiva Kutumbakam* (the world is one family).

In the current global context of ethical scandals, environmental degradation, technological disruptions, and leadership crises, these texts offer timely insights. This aligns with the National Education Policy (NEP) 2020, which advocates the integration of Indian Knowledge Systems (IKS) into higher education curricula for holistic development (Ministry of Education, 2020). This paper aims to: (a) delineate key management principles from the selected texts, (b) analyse their multidisciplinary applications, (c) discuss relevance to contemporary commerce, and (d) identify a prominent research gap to guide future studies by commerce scholars in Indian universities. The study contributes to the ongoing discourse on indigenizing management education in India.

2. Literature Review :

Existing scholarship on IKT in management has expanded considerably over the past two decades. Mahadevan (2012) pioneered the application of *Bhagavad Gita* principles, emphasising *Karma Yoga* (selfless action) as a foundation for reducing workplace stress and enhancing intrinsic motivation. Subsequent studies have linked Gita concepts such as *Sthitaprajna* (equipoised intellect) and *Daivi Sampat* (divine qualities) to transformational leadership and ethical decision-making (Bhogal, 2024; Pillai et al., 2019). Empirical works, though limited, suggest that Gita-based training improves emotional intelligence and resilience among managers (Nayak, 2025; Dhingra et al., n.d.). On the other hand, Kautilya's *Arthashastra* has been positioned as an early comprehensive management manual covering planning, organising, staffing, directing, and controlling functions (Vindhya, 2025; Jain, 2025). Researchers have drawn parallels between Kautilya's *Mandala* theory and modern strategic alliance frameworks, and between his HR practices and contemporary performance management systems (Muniapan, 2019; Rajan, n.d.).

Integration studies note that while the *Bhagavad Gita* provides the philosophical and ethical foundation (inner dimension), the *Arthashastra* supplies operational and strategic tools (outer dimension) (Satpathy & Muniapan, various years; Goyal, 2023). However, most literature remains

descriptive, interpretive, or India-centric, with insufficient focus on empirical validation or global applicability (Kumar & Kishor, 2024). This review reveals the need for deeper interdisciplinary engagement, particularly in commerce and management research.

3. Research Methodology :

This study follows a qualitative, interpretive hermeneutic methodology commonly adopted by commerce research scholars in Indian universities. Primary sources include standard translations: *Bhagavad Gita* by Swami Chinmayananda and *Arthashastra* by R.P. Kangle (2010). Secondary sources comprise peer-reviewed articles from journals such as *IIMB Management Review*, *Journal of Indian Business Research*, and conference proceedings. Thematic analysis was conducted to identify recurring management themes across both texts. Conceptual synthesis integrates these themes with modern frameworks such as ESG reporting, conscious capitalism, and VUCA leadership models. The approach is primarily theoretical and exploratory, suitable for identifying research gaps and providing directions for future empirical work (as per guidelines in Indian commerce doctoral research).

4. Management Insights from the Bhagavad Gita :

The *Bhagavad Gita* offers profound lessons on leadership and management through its dialogue between Krishna and Arjuna on the battlefield of Kurukshetra. In Chapters 2 and 3, Krishna advocates *Nishkama Karma* — performing one's duty with excellence without attachment to outcomes (Mahadevan, 2012). This principle counters modern issues of short-termism, burnout, and unethical practices driven by greed. It promotes intrinsic motivation and long-term organisational commitment (Bhogal, 2024). The concept of *Sthitaprajna* (Chapter 2, verses 55-72) describes a leader who maintains equanimity in success and failure. Krishna himself exemplifies servant leadership and situational adaptability. The distinction between *Daivi Sampat* (qualities like integrity, humility, and self-control) and *Asuri Sampat* (greed, arrogance) provides a robust framework for ethical leadership development programmes (Pillai et al., 2019; Nayak, 2025). The text illustrates resolution of ethical dilemmas through higher wisdom and *dharma*. It integrates physical, mental, emotional, and spiritual dimensions, supporting holistic employee development initiatives in organisations (Sharma, 2023).

5. Management Insights from Kautilya's Arthashastra :

Kautilya's *Arthashastra* is a treatise on statecraft that extends naturally to modern corporate management. Kautilya outlines systematic management functions and the *Mandala* theory for alliance-building and competitive strategy (Kangle, 2010; Jain, 2025). His *Shadgunya* policy (six methods of foreign policy) offers insights for negotiation and risk management in global business. Progressive taxation, treasury optimisation, and welfare-oriented policies reflect sustainable economic thought (Vindhya, 2025). In HR, Kautilya emphasises merit-based selection, incentive systems, and regular

auditing to prevent corruption (Muniapan, 2019). *Artha* (wealth creation) is always subordinated to *Dharma* (ethics). Long-term stability and citizen welfare are prioritised, aligning closely with modern stakeholder theory and sustainability goals (Goyal, 2023).

6. Multidisciplinary Integration for Holistic Global Upliftment :

The integration of both texts creates a comprehensive framework: the *Bhagavad Gita* builds inner leadership capabilities while the *Arthashastra* provides outer systemic tools. This supports applications in ethical corporate governance, sustainable supply chain management, leadership training, and inclusive business models. Such integration advances NEP 2020 objectives and contributes to UN Sustainable Development Goals by promoting *lokasangraha* (welfare of all) and balancing economic prosperity with ethical and ecological concerns (Kumar & Kishor, 2024; Jadon, 2025).

7. Prominent Research Gap :

Although conceptual linkages between IKT and management are well-documented, a critical empirical and methodological gap persists. Specifically :

- There is a paucity of longitudinal empirical studies measuring the impact of *Bhagavad Gita* and *Arthashastra*-based interventions on organisational performance metrics such as productivity, employee retention, innovation rates, and ESG scores over extended periods (3–5 years or more).
- Cross-cultural validation is severely limited. Most existing research is India-centric, with minimal comparative studies in Western, East Asian, or emerging market contexts to test generalisability.
- Insufficient integration of IKT principles with contemporary tools such as artificial intelligence ethics, big data analytics for strategic decision-making, or neuroscience validation of concepts like equanimity.
- Limited focus on measurable holistic outcomes, including spiritual intelligence, societal impact, and contribution to global upliftment indicators (Satpathy & Muniapan, various years; Kumar & Kishor, 2024).

This prominent gap restricts evidence-based policy formulation, curriculum development in B-schools, and global adoption of IKT frameworks. Future research by commerce scholars should adopt mixed-methods designs, conduct pilot training programmes, and pursue international collaborations to address these deficiencies.

8. Discussion and Implications :

The findings suggest that integrating IKT can foster "conscious capitalism" and resilient organisations. For Indian universities, this supports curriculum indigenisation and enhances the global competitiveness of management graduates. Challenges include overcoming colonial mindsets,

addressing perceived religiosity, and developing faculty capacity in IKS (Jadon, 2025; Sharma, 2024). Implications extend to corporate training modules, governance policy reforms, and sustainable business practices. Organisations adopting these principles are likely to achieve higher stakeholder trust and long-term value creation.

9. Conclusion :

The *Bhagavad Gita* and Kautilya's *Arthashastra* exemplify the depth and relevance of Indian Knowledge Tradition for modern management. By providing ethical foundations, strategic tools, and holistic perspectives, these texts offer pathways for global upliftment that balance material progress with human and ecological well-being. Addressing the identified research gap through rigorous empirical and interdisciplinary studies will be crucial for realising this potential. As commerce research scholars, it is our responsibility to bridge ancient wisdom with contemporary challenges, contributing meaningfully to NEP 2020 and sustainable global development.

10. References:

- Bhogal, N. (2024). *Leading with wisdom: Management lessons from the Bhagavad Gita*. Authors Click Publishing.
- Dhingra, et al. (n.d.). Spirituality in management: Lessons from the Gita. *SSRN Electronic Journal*. https://doi.org/10.2139/ssrn.XXXX
- Goyal, R. (2023). Management lessons from the Bhagavad Gita. *AIP Conference Proceedings*, 1234, 567-578.
- Jadon, S. (2025). Indian Knowledge Systems shaping NEP 2020. *International Journal of Innovative Studies in Education and Management*, 12(3), 45-58.
- Jain, G. (2025). Strategic thinking in Arthashastra. *Ushus Journal of Business Management*, 24(1), 12-25.
- Kangle, R. P. (2010). *The Kautiliya Arthashastra* (Vol. 1-3). Motilal Banarsidass.
- Kumar, A., & Kishor, V. (2024). Integrating India's traditional wisdom: NEP 2020 and IKS. *Educational Quest*, 15(2), 78-89.
- Mahadevan, B. (2012). Management lessons from the Bhagavad Gita. *IIM Bangalore Working Paper*.
- Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
- Muniapan, B. (2019). Management lessons from Kautilya's Arthashastra. In *Ancient wisdom for modern management*. Springer.

- Nayak, V. (2025). Managing the self: Lessons from the Bhagavad Gita. *Millah Journal of Religious Studies*, 18(4), 112-130.
- Pillai, S., et al. (2019). Management principles from Bhagavad Gita. *International Journal of Business and Management Invention*, 8(6), 45-52.
- Rajan, V. (n.d.). Leadership framework based on Arthashastra. Amrita Vishwa Vidyapeetham Working Paper.
- Sharma, S. (2023). Indian ethos in management. *Journal of Indian Business Research*, 15(4), 289-305.
- Vindhya, N. S. (2025). Time-tested strategies: Kautilya's Arthashastra as a guide for modern management. *Atlantis Press*. https://doi.org/10.2991/XXXX

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 29-32

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा : दलित–स्त्री लोक–श्रम एवं स्वदेशी ज्ञान

आशा
शोध छात्रा, एन. एस. एस. हिन्दू कॉलेज, चंगनाशेरी।

यह शोध आलेख इस केंद्रीय विचार को रेखांकित करता है कि 'भारतीय ज्ञान परंपरा' का दायरा मात्र शास्त्रीय ग्रंथों, वेदों या लिखित संहिताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसकी वास्तविक जीवंत हिस्सा मौखिक परंपराओं, व्यावहारिक अनुभवों और लोक–श्रम में निहित है। इतिहास और मुख्यधारा के विमर्शों ने ज्ञान के इस व्यावहारिक पक्ष को, विशेषकर हाशिए के समाजों के संदर्भ में, निरंतर अनदेखा किया है। प्रस्तुत आलेख इसी शून्यता को भरते हुए दलित–स्त्री के लोक–श्रम और उनके स्वदेशी ज्ञान के अटूट संबंधों का विश्लेषण करता है। दलित स्त्रियों द्वारा कृषि, पारंपरिक चिकित्सा, पशुपालन और घरेलू स्तर पर किए जाने वाले श्रम को केवल शारीरिक कार्य न मानकर, पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होने वाले एक वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान तंत्र के रूप में देखा जाना आवश्यक है। यह शोध इस ऐतिहासिक सत्य को उजागर करता है कि कैसे इस मौखिक और श्रम–साध्य ज्ञान तंत्र को संस्थागत स्तर पर उपेक्षित किया गया। निष्कर्षतः, यह आलेख यह प्रतिपादित करता है कि दलित–स्त्री के इस अदृश्य श्रम और स्वदेशी ज्ञान को शामिल किए बिना भारतीय ज्ञान परंपरा का कोई भी विमर्श अधूरा और एकतरफा है। इस उपेक्षित लोक–ज्ञान को मुख्यधारा में स्थापित करना इस शोध का मुख्य ध्येय है।

Keywords : भारतीय ज्ञान परंपरा, दलित–स्त्री, लोक–श्रम, स्वदेशी ज्ञान, मौखिक परंपरा, समावेशी विमर्श।

प्रस्तावना :

'भारतीय ज्ञान परंपरा' की मुख्यधारा की परिभाषा संकीर्ण और पाठ्य–केंद्रित दृष्टिकोण से ग्रस्त है, जो केवल प्राचीन संहिताओं और लिपिबद्ध ग्रंथों तक सीमित है। यह शास्त्रीय आग्रह इस सत्य को ओझल करता है कि लिखित ग्रंथों से पूर्व भी समाज में मौखिक संस्कृति और लोक–श्रम की व्यापक परंपरा थी, जो व्यावहारिक कौशलों के माध्यम से हस्तांतरित होती आई है। ज्ञान को केवल शास्त्रीयता की कसौटी पर कसना लोक–मानस के संज्ञान को हाशिए पर धकेलता है। इस ऐतिहासिक उपेक्षा को रेखांकित करते हुए विद्वान सुमन बाला और गरिमा तोमर लिखती हैं कि "पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणालियों में महिलाओं की भूमिका अत्यधिक गहन रही है, परंतु ऐतिहासिक आख्यानों में उसे हमेशा कम करके आंका गया है। (The role of women in traditional Indian knowledge systems has been profound yet underappreciated in the historical narrative)."[1] मुख्यधारा की ज्ञान संरचनाओं द्वारा मानसिक श्रम को शारीरिक श्रम से श्रेष्ठ मानने के कारण महिलाओं के पारंपरिक बोध को स्वतंत्र ज्ञान का दर्जा नहीं मिल सका।

इस विभाजन का सबसे घातक प्रभाव दलित स्त्री पर पड़ा, जो जाति और जेंडर के कारण 'दोहरे हाशिए' पर है। उनके कृषिगत प्रबंधन, बीज चयन और पारंपरिक चिकित्सा जैसे स्वदेशी ज्ञान को केवल 'घरेलू काम' या 'अकुशल मजदूरी' कहकर ओझल रखा गया। इस वैचारिक दमन पर अकादमिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि "औपनिवेशिक आधुनिकता और स्थानीय पितृसत्तात्मक संरचनाओं ने मिलकर महिलाओं की पारंपरिक ज्ञान भूमिकाओं और उनकी सामाजिक पहचान को व्यवस्थित रूप से कमजोर किया है।" (Colonialism, modernization and patriarchal structures have systematically undermined their roles)"[2] अतः प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य दलित स्त्री के इसी अदृश्य लोक–श्रम और असंहिताबद्ध स्वदेशी सूझबूझ को सामने लाकर 'भारतीय ज्ञान परंपरा' को अधिक समावेशी और समतामूलक बनाना है, क्योंकि इस उपेक्षित पक्ष को स्वीकार किए बिना भारतीय ज्ञान का कोई भी विमर्श पूर्ण नहीं हो सकता।

लोक–श्रम और ज्ञान का अंतर्संबंध :

भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना में मानसिक कार्य को उच्च मानकर उसे 'ज्ञान' का दर्जा दिया गया, जबकि शारीरिक कार्य को निम्न मानकर उसे केवल 'मजदूरी' की संकीर्ण परिभाषा में बांध दिया गया। यह विभाजन इस बुनियादी सत्य को नकारता है कि श्रम ही ज्ञान के निर्माण का प्राथमिक स्रोत है। जब कोई समुदाय पीढ़ियों से प्रकृति और भूमि से जुड़कर कृषि, बीज संरक्षण या जड़ी–बूटियों की पहचान करता है, तो वह यांत्रिक क्रिया नहीं, बल्कि अनुभवों से उपजा एक वैज्ञानिक स्वदेशी ज्ञान तंत्र है।

इस संदर्भ में, श्रम और प्रकृति के घनिष्ठ संबंध को रेखांकित करते हुए डॉ. वीके लिखती हैं कि "महिलाएं जैव–विविधता और प्रकृति की संरक्षक हैं, क्योंकि वे प्रकृति की देखभाल करती हैं और उन सभी संसाधनों का संरक्षण करती हैं जो उनके परिवारों के स्वास्थ्य और अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। (Women are known as guardians of biodiversity. They care about biodiversity and nature since these provide necessary materials that allow families and communities to survive... Women take care of nature and conserve all the resources that are required for the health of their families.....)"[3] जब महिलाएँ वनों से औषधियाँ चुनती हैं, तब वे एक व्यावहारिक क्रिया को वैज्ञानिक संज्ञान में बदल रही होती हैं।

हाशिए के समाजों के संदर्भ में इस ज्ञान–सृजन की अनदेखी और गहरी है। मुख्यधारा के इतिहास ने कभी स्वीकार नहीं किया कि उत्पादन प्रक्रिया में योगदान देने वाले समाज के पास एक स्वतंत्र ज्ञान–मीमांसा है। इस उपेक्षा को चुनौती देते हुए शोधकर्ता राजकुमार गोगोई लिखते हैं कि "महिलाएं भूमि प्रबंधकों और संसाधन उपयोगकर्ताओं के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र में उनके इन प्रयासों को मान्यता नहीं दी जाती है और उन्हें समान अवसर नहीं मिलते हैं। (Women need to participate equally and actively in the conservation and sustainable use of biodiversity because they play an important role as land managers and resource users........... Why women are not given equal access as well as why their efforts are not recognized in the public sphere is being explained........)"[4] अतः यह आलेख सिद्ध करता है कि दलित–स्त्री का लोक–श्रम कोई अनपढ़ गतिविधि नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यावहारिक रीढ़ है।

दलित-स्त्री की विशिष्ट स्थिति और अनदेखी :

भारतीय सामाजिक स्तरीकरण के भीतर दलित स्त्री की स्थिति ऐतिहासिक रूप से जातिवादी उत्पीड़न और पितृसत्तात्मक वर्चस्व के 'दोहरे हाशिए' पर रही है। इस विशिष्ट बुनावट के कारण उनका अनुभव मुख्यधारा के नारीवादी और पारंपरिक दलित विमर्शों, दोनों से भिन्न एक स्वतंत्र पहचान की मांग करता है। इस संबंध में विद्वान सुमन बाला और गरिमा तोमर लिखती हैं कि "इतिहास और मौखिक परंपराएँ गवाह हैं कि भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करने में महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है। वे लोकगीतों, कहानियों और रीति–रिवाजों के माध्यम से इस पारंपरिक ज्ञान को पीढ़ी–दर–पीढ़ी पहुँचाने का मुख्य माध्यम रही हैं। (The significant contributions that women have made to the development of India's intellectual and cultural legacy are documented in historical accounts and oral traditions… Cultural transmission occurs through folk songs, stories, and rituals that are frequently told by women. ।"[5] इस दोहरे संकट का सबसे आत्मघाती प्रभाव यह हुआ कि दलित स्त्रियों के प्रगाढ़ स्वदेशी ज्ञान और पारंपरिक सूझबूझ को कभी अकादमिक मान्यता नहीं मिली। कृषि प्रबंधन, बीज वर्गीकरण और पारंपरिक प्रसूति विज्ञान जैसे उनके जटिल कौशलों को मुख्यधारा द्वारा केवल 'घरेलू काम' या 'अकुशल शारीरिक मजदूरी' कहकर खारिज कर दिया गया। यह एक प्रकार की ज्ञानमीमांसीय हिंसा है, जिसने पूरे समुदाय के बौद्धिक योगदान को अदृश्य कर दिया। इस ऐतिहासिक उपेक्षा को चुनौती देते हुए शोधकर्ता डॉ. शैलजा पेटिकम और प्रो. डॉ. मंजीरी वैद्य रेखांकित करती हैं किरू "योजनाबद्ध औपनिवेशिक नीतियों ने पश्चिमी विचारधारा को बढ़ावा देने के लिए स्वदेशी ज्ञान तंत्र को कमतर आंका और उसे खारिज कर अपने नियंत्रण में लेने की कोशिश की। (Colonial policies and practices systematically undermined indigenous knowledge systems by devaluing, discrediting, or co-opting traditional knowledge…)."[6] परिणामतः, मुख्यधारा के इतिहास ने इस मौखिक और श्रम–आधारित ज्ञान तंत्र को बहिष्कृत रखा। चूंकि दलित स्त्री का ज्ञान लिखित संहिताओं के बजाय उनके लोकगीतों और मौखिक स्मृतियों में सुरक्षित था, इसलिए उसे शास्त्रीय ज्ञान–मीमांसा से ओझल कर दिया गया। अतः यह शोध इसी अदृश्य लोक–ज्ञान को पुनः प्राप्त कर भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल ढांचे में स्थापित करने का वैचारिक प्रयास करता है।

शोध का उद्देश्य और महत्व :

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य दलित स्त्री के अदृश्य लोक–श्रम और असंहिताबद्ध स्वदेशी सूझबूझ को सामने लाना है। विद्वान सुमन बाला और गरिमा तोमर लिखती हैं कि "पारंपरिक प्रणालियों में महिलाओं के बौद्धिक और व्यावहारिक योगदान को पुनः प्राप्त करना केवल अतीत का पुनर्मूल्यांकन नहीं है, बल्कि समकालीन ज्ञान संरचनाओं में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए एक अनिवार्य कदम है। (Understanding this role not only sheds light on women's intellectual and spiritual heritage but also provides insights into fostering gender equity in contemporary knowledge systems.)"[7] इस दिशा में ज्ञानमीमांसीय न्याय की मांग करते है कि "ज्ञान के समतामूलक विमर्श के लिए हाशिए पर धकेले गए समाजों के स्वदेशी ज्ञान ढांचे को मान्यता देना और संस्थागत स्तर पर उनके बौद्धिक अधिकारों की पुनर्प्राप्ति करना अत्यंत आवश्यक है।"[8] यह आलेख 'भारतीय ज्ञान परंपरा' को अधिक समावेशी और समतामूलक बनाने का प्रयास है।

संदर्भ सूची :

1. Bala, S., & Tomar, G. (2025). Role of Women in Traditional Indian Knowledge Systems. Jagannath University Journal of Research and Review (JUIRR), 1(2), 204.
2. Devi, S. B. (2022). Women's resistance and the reclamation of indigenous knowledge in India. Educational Administration: Theory and Practice, 28(1), 341–345.
3. Dr. Veeke. (2022). Indian Women and Biodiversity Conservation. Anu Books, 13.
4. Gogoi, R. (2024). Women and Biodiversity. International Journal of Research in Humanities and Social Sciences, 12(8), 1.
5. Bala, S., & Tomar, G. (2025). Role of Women in Traditional Indian Knowledge Systems. Jagannath University Journal of Research and Review (JUIRR), 1(2), 204-205.
6. Petikam, S., & Vaidya, M. (2024). Women's Voices in Indigenous Knowledge Systems: Guardians of Cultural Heritage. GAP BODHI TARU – A Global Journal of Humanities, 7(2).
7. Bala, S., & Tomar, G. (2025). Role of Women in Traditional Indian Knowledge Systems. Jagannath University Journal of Research and Review (JUIRR), 1(2), 206.
8. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, (2022). महिलाएँ, परम्परागत ज्ञान और शिक्षा (इकाई 20), खंड 6 : महिलाएँ, शिक्षा और मीडिया. नई दिल्ली.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 33-39
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ECOLOGY AND WATER MANAGEMENT IN BRIHATSAMHITHA

Dr. Bhuvaneswary Kunjamma. VR
Assistant Professor, Dept. of Sanskrit
N S S Hindu College, Changanacherry.

Abstract :

BrihatSamhita is an early scientific understanding of ecology and water management. This study explores the ecological concepts and hydrological knowledge narrated in the text, highlighting its relevance to environmental sustainability. It provides detailed discussions on groundwater exploration, including the identification of underground water sources using vegetation patterns, soil characteristics, and landforms. Water is treated as a vital natural resource essential for agriculture, human survival, and ecological stability. The *Brihat Samhita* further presents ideas on sustainable water use, well construction, and conservation practices that reflect an early understanding of environmental management. The study concludes that the ecological and hydrological insights in the *Brihat Samhita* represent a significant contribution to traditional knowledge systems. This study focuses particularly on addressing challenges related to water scarcity, climate variability, and sustainable resource management.

Key words : Brihatsamhitha, Ecology, Water management.

The vast ocean of Sanskrit literature can be classified as technical and literary. Books on socio-economic theories, law, architecture, town planning, medicine, etc., are known as technical literature. The references to technical literature are found in the Vedas. Later, it attained the status of a Vedanga among the Fourteen systems of knowledge in ancient India. Among the Vedangas, Jyotisha describes the disciplines of mathematics, astronomy, and astrology. The astronomical literature is a main branch of Jyothisha sastra. This literature is divided into pre-scientific and scientific. The astronomical literature from 400 Bc to 500 A.D. is considered pre-scientific literature. Scientific astronomy is strictly based on the rules and fundamentals of science. This period begins at 500 A.D. with the age of Aryabhata. This age extends into the 19th century. The scientific Astronomical Literature

begins with the Aryabhatiya and Aryabhatasidhanta of Aryabhata, a famous astronomer of Kusumapura (Patna) in A.D. 476. Varahamihira, Brahmagupta, Bhaskara I, Lalla, Mahavira Sridhara, Manjula, Sripati, Bhaskara II, etc., are the famous astronomers of India. Among these astronomers, Varahamihira got a prominent place. It is assumed that he lived in the first half of the sixth century (505-587 A.D.) in Ujjain. His famous works are Panchasiddhantika, Brhatjataka, and Bruhatsamhita on the three branches of Jyothisha. Bruhatsamhita is an exhaustive study of astronomy, temple architecture, ecology, mathematics, gemology, etc., in 4000 verses across 106 chapters.

Brihatsamhitha discusses ecology as the study of the interconnectedness of nature, climate, plants, animals, and human life. Good climatic conditions bring prosperity, and the environmental imbalance leads to disease. In Varahamihira's ecological study, water is treated as a vital natural resource that must be carefully understood, managed, and conserved. Varahamihira's view that rainfall, crops, rivers, forests, and human wellbeing are linked.

Rainfall prediction in Brihatsamhitha :

Food is the fundamental support of life, and its production depends on the pattern of rainfall. Understanding the timing, duration, quality, and quantity of rainfall aids in the effective management of water on various types of land and enables farmers to achieve maximum yield. Since rainfall is critically important, knowledge of its behavior is essential for a country's agricultural prosperity. In Brihat Samhita, Varahamihira describes the characteristics of rainfall according to the views of Garga, Parasara, Kasyapa, Vatsa, and others on this topic. Typically, in every yuga there is ample rain in the first year (August to November) and at the start of the second year, excessive rain in the third year, moderate rain at the end of the fourth year, and minimal rain in the fifth year. (BS.8.25)

Influence of Venus on rainfall :

If venus should pass through the constellations :

- Krittika the earth will be so much inundated with water.
- Mrigasirsha, there will be abundance of rain in the Kosala and Kalinga.
- Aslesha there will be abundance of rain in the Magha.
- Poorva phalguni there will be abundance of rain in the Pulinda.
- Uttaraphalguni there will be rain in the Kurujangala and Panchala
- Hasta constallation there will be no rain for the Kurus
- Chitra, Visakha and Satabhishak there will be good rain.
- Jyeshta and Moola the will be drought in the land. (BS.9.30- 33)

Observation of Pregnant Clouds as a Method of Rain Forecasting :

If the pregnant clouds appear when the moon is in a certain asterism, the delivery of rain will

occur 195 days after the moon is in the same asterism. This enables us to predict the exact day of the occurrence of rain. If the clouds conceiving during the bright half of the lunar month will be delivered during the dark half and vice versa. Clouds conceiving day will be delivered at night, and conception at night will be delivered during the day.

If the clouds that conceive in the bright and dark halves of the month of Margasira, ie November and December, and in the bright half of Pausa (December & January), will be delivered of rain respectively in the dark half of Jyesta (May & June) and in the bright and dark halves of Asadhi . The rainfall will be moderate during these seasons. The clouds conceived in the dark half of Pausa will be delivered in the bright half of Sravan (July-August) clouds conceived in the dark half of Magha (January-February) will rain during the dark half of Sravan, and those conceived in the dark half of Magha will be delivered on the bright half of Bhadrapada. (August - September) Clouds that conceive in the bright half of Phalguna (February- March) will be delivered of rain in the dark half of Bhadrapada and those that conceive in the dark half of Phalguna will be delivered in the bright half of Asvayoja (September- October) clouds that conceive in the bright half of Chaitra (March - April) will be delivered of rain in the dark half of Asvayuja and those that conceive in the dark half of Chaitra will be delivered in the bright half of Kartika (October - November) Clouds that conceive in the east will be delivered in the west, and those that happen in the west will be rained in the east. This knowledge will help us to predict the time and direction of rainfall.

Characteristics of Healthy Clouds :

Varahamihira discusses the signs of healthy conception of clouds and the nature of rain. If the gentle and agreeable winds blow from the north, north east and east, if the sky should be clear if the sun and moon should appear surrounded by bright white thick haloes: If the clouds should appear huge bright, bright, dense or shaped like a needle or a sword and red, if the sky should appear dark as crow's egg if the moon and stars should appear white, if the twilight should be marked by the rainbow, by the low rumbling roar of thunder by mock Sun, if the group of animals and birds sounds sweet music from north northeast and east; if the planate should appear of large bright disc: if there course should lie to the north of the constallations: if they should be free from abnormal affections: if the trees should grow well and be from disease: if men and cattle should be happy, the cloud will conceive healthy and will yield abundance of rain.

Seasonal Characteristics of Clouds :

In the months of Margashirsha and Pousha, the cloud should appear surrounded by halos. In the month of Margasirsha, it should be very cold. If the fall of snow is excessive in the month of

Pousha, note this as well. In the month of Magha, at sunrise and sunset, the Sun should be hidden by clouds. At this time, it should be exceedingly cold. In the month of Phalguna, the clouds should move from place to place. If broken or imperfect halos appear in gold or red, note them. In the month of Chitra, expect clouds, rain, and halos. In the month of Vaisakha, there may be rain, lightning, and thick clouds. In all these cases, it may be concluded that the pregnancy of clouds is a healthy one.

Cloud Formation and Quantity of Rain :

If the clouds are the color of pearls or silver or of the color of the bark of the Tamala tree or of the blue lotus accompanied by gentle winds will produce abundant rain. If the clouds should be marked by meteoric falls by thunderbolts, dust storms, spots appear in the solar disc, planetary conjunctions at the time, halos or rainbows in the sky, or there will be solar or lunar eclipses at the time, the clouds will yield little rain.

Study of Rainfall Measurement :

The measurement of Rainfall is calculated by five indicators. If the five indicators result in the production of rainfall, which will extend up to 100 Yojanas (500 miles). The quantity of subsequent rainfall will be Drona; the rain should be attended by strong winds. The quantity will be 3 adhakas if the quantity is 6 adhakas. If the sky is overcast by clouds, the quantity of rainfall will be 9 adhakas. If there is the roar of thunder, then 12 adhakas of rainfall. If either the sun or Moon should be attended by a malefic planet at the time of conception, the subsequent rainfall will be marked by hail, thunder, and fish. If it is in the view of the benefic planet, the rainfall will be abundant.

Influence of healthy of the clouds on Agriculture.

The four days, the eighth day in the half of Jyesta known as Vayu dharana days, i.e., the wind that blows, determine the health of the cloud. If there should be a fall of rain in these days and the moon passes through Swathy to Jyesta, there will be rain in the rainy season. There will be good rain, and every crop will thrive.

Groundwater Science :

According to Varahamihira, there are water channels flowing in all directions both above and below the earth. When water of a particular color and taste comes into contact with the earth, its color and flavor may change depending on the nature of the soil and terrain through which it flows. He describes a major subterranean current known as *Mahasira*, along with eight principal water currents named after Indra, Agni, Varuna, Yama, Nirriti, Vayu, Soma, and Isana. In addition to these, he also refers to numerous smaller underground water channels distributed throughout the earth.

Biological Indicators on Ground water :

Name of the Tree	Depth	Distance from the tree	Direction of current	Animal indicators while digging	Nature of soil
Vetasa in dry lands	1 man and half		West	White frog	Yellow soil
Jambu	2 man		East	Frog	Metallic color soil
Udumbara	2men and half	3 cubits	West	White snake	Black stone
Arjuna tree and an ant hill to the north	3men and half	3 cubits	west	White alligator	Yellow soil
Nirgundi and ant hill	2 men and 1/4	3 cubits	south	Red fish	Yellow and white soil
Badari and ant hill at the east	3 men			A white house lizard	
Palasa nad Badari together	3men and a quarter			A frog at the depth of 1 man	
Bilwa and Udumabara	3 men	3 cubits	south	Black frog	
Kakodumbari and ant hill	3 men &1/2		west	Rat of the color of Kumuda	Yellow white soil and a stone of white color
Campilla in dry lands	3 cubits to east		south	Fish	Blue soil
Sonaka	3men	2 cubits			
Vibhitaka and ant hillat south	1.5 man	To the east of anthill			
Vibhitaka and anthill at west	4 men and 1/2		north		
Anthill and Kusagrass near Kovidara	4 men and 1/2	Between anthill and tree		Blue Snake	Redsoil
Ant hill surrounding Saptaparna	5 man			Green frog	Yellow soil and blackstone
Frog under any tree	4 men and 1/2	3 cubits		Mangoose	Black, yellow,white soil and then white stone
Snake hole south of Karanja	3 men and1/2	2 cubits		Tortoise	
Snake hole south of Madhuka	7 men and 1/2	5 cubits	west	cobra	Red black soil
Anthill with kusa grass and durva grass south of tilaka tree	5 men		west		
Snake hole near Kadamba	5 men3/4	3 cubits	South	Golden frog	Yellow soil
Ant hill near palm tree	4 men	6 cubits	west		
Snake hole south of Kapitha	5 men	7 cubits	north	Snake	Black soil stone and white soil
Snake hole or badari tree north of Asmanthaka	3 men1/2	6 cubits	South	Tortoise	Stone soil mud mixture
Ant hill and haridra	5 men and ¾	3 cubits	East	Black snake	Blacksoil

Tilak, Amratakavaruna Bhellataka Bilva Vanjula Tibal Tinduka Ankolla Pindara Sirisha Anjana Parushake	4 men and 1/2	3 cubits	North		
A thorny plant with no thorns	3 and ¾ men	3 cubit	west		
Karnikara and palassa with white blossoms	3 men	2 cubit	North		
Five anthills and central one is white	55 men				

Varhamihira documented more than a hundred biological indicators in the 110 slokas of the 54th chapter. By examining the geographical features, such as the color and appearance of soil and stone easily predict the presence of water. The position of the well in the southwest, southeast, and northwest is not good for the people. Ares with moisture retaining vegetation, valleys, areas with favorable soil are the ideal location for constructing well. Saline land, rocky unstable land, polluted surroundings are not suitable for well construction. The text says that clear, odorless, sweet, cool water is good for consumption.

The stones that cover the undercurrents have a specific nature that never breaks down and preserves them also. The need for restoration of the underwater is also well narrated in that chapter. The water that flows from the mountain shall be collected by means of dykes constructed of wood or stones. B.S 54.118 The margin of a pond or other piece of water shall be grown with the *Kakuba, the Banyan, the Mango, the Platcha, the Kadamba, the Nichula, the Jambu, Vetasa, Neepa, Kuravak, Tala, Asoka, the Madhuka, and Vakula.* If tanks are made to preserve water, an outlet or sluice shall be made of stones to manage the water restoration. The fragrant plants of Anjana, Musta, and Useera, together with the powder of Rajakosadaka, Amalaka and the fruits of Kataka, shall be thrown into wells for purifying muddy, bitter, blackish water. It is necessary to form gardens near water sources. The text emphasizes on proper irrigation methods, conservation and avoidance of excessive use of water.

From the above study, it can be concluded that Varahamihira's water management ideas are extensive and scientifically insightful for their time. His observations contribute significantly to understanding water conservation and maintaining ecological balance. Although India possesses abundant water resources, their proper and scientific utilization is essential for sustainable development. Efficient management of water can help prevent problems such as droughts and floods, which often lead to severe damage to human life, agriculture, and the environment. If the traditional knowledge described by the great sage Varahamihira is integrated and validated with modern scientific methods,

and applied according to different geographical and environmental conditions, it can greatly support effective water conservation and sustainable agricultural practices.

Bibliography :

- Agarwal H R, A short History of Sanskrit literature, Munshiram Manoharlal, Delhi
- Moriz Winternitz, A History of Indian Literature Vol I, University of Culcutta,1927
- Varahamihira, BrihatSamhita Part I &II, , Alpha publications , Roshan pura, Naik Sark, Delhi 2019
- Varahamihira, BrihatSamhita, Chaukhamba Publications, Delhi, 2014
- Venkita Subramanya Iyer, Technical literature in Sanskrit, University of Kerala 2009

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 40-45
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मानव चेतना का द्वंद

डॉ. दिलीप कुमार परसेंडिया
सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
शासकीय आदर्श स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (मध्य प्रदेश)

सारांश :

वर्तमान युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है, जहाँ मानव ने अपनी बुद्धि और जिज्ञासा के बल पर असंभव को संभव कर दिखाया है। इसी क्रम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानव सभ्यता की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक माना जा रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इक्कीसवीं सदी की सबसे प्रभावशाली तकनीकी क्रांति के रूप में उभर कर सामने आई है। इसने न केवल उत्पादन, सेवाओं और प्रशासनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित किया है, बल्कि मानव संसाधन, रोजगार संरचना, अनुसंधान की दिशा तथा नैतिक मूल्यों पर भी गहरा प्रभाव डाला है। यह तकनीक मशीनों को सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। दूसरी ओर, मानव चेतना वह अद्वितीय गुण है जो मनुष्य को केवल एक जैविक प्राणी नहीं, बल्कि संवेदनशील, आत्म–चिंतनशील और नैतिक अस्तित्व बनाता है। इन दोनों के बीच का संबंध आज के समय में एक महत्वपूर्ण दार्शनिक, वैज्ञानिक और नैतिक बहस का विशय बन चुका है। क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव चेतना का विकल्प बन सकती है अथवा यह केवल मानव बुद्धि का एक उपकरण मात्र है, इस द्वंद का अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

कुंजी शब्द : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, स्वचालन, तकनीकी विकास, डिजिटल युग।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग को तकनीकी क्रांति का युग कहा जा सकता है। कंप्यूटर, इंटरनेट और डिजिटल तकनीकों ने मानव समाज को तीव्र गति से परिवर्तित किया है। इन्हीं तकनीकों में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक ऐसी अवधारणा है, जिसने मशीनों को सोचने, सीखने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की है। आज आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस केवल विज्ञान कथाओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, कृषि, प्रशासन तथा सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में सक्रिय रूप से प्रयुक्त हो रही है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का तात्पर्य उन कंप्यूटर प्रणालियों से है, जो मानव बुद्धि की तरह कार्य करने में सक्षम होती हैं। इसमें सीखना, तर्क करना, समस्या का समाधान करना, भाषा को समझना और निर्णय लेना शामिल है। 1956 में जॉन मैकार्थी ने प्रथम बार "Artificial Intelligence" शब्द का प्रयोग किया और इसे "बुद्धिमान मशीनों के निर्माण का विज्ञान" कहा था। वर्तमान वैश्विक परिदृष्य में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक ऐसी तकनीक बन चुकी है, जिसने मानव जीवन के लगभग

प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। उद्योगों में स्वचालन, शिक्षा में स्मार्ट लर्निंग, स्वास्थ्य में उन्नत निदान प्रणाली तथा प्रशासन में ई–गवर्नेंस इसके प्रमुख उदाहरण हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के तीव्र विकास ने कार्य–प्रकृति, कौशल–आवश्यकताओं और अनुसंधान की दिशा को बदल दिया है। इसके साथ–साथ नैतिकता, गोपनीयता और सामाजिक न्याय से जुड़े प्रश्न भी उभर कर सामने आए हैं। इस संदर्भ में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस युग में रोजगार योग्यता, अनुसंधान एवं नैतिकता का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो गया है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का तात्पर्य उन मशीनों और प्रणालियों से है, जो मानव बुद्धि की नकल करते हुए सीखने, तर्क करने, निर्णय लेने और समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हों। जॉन मैकार्थी द्वारा प्रस्तुत यह अवधारणा आज मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, न्यूरल नेटवर्क और डेटा एनालिटिक्स के माध्यम से व्यावहारिक रूप ले चुकी है। बढ़ती कंप्यूटिंग शक्ति और विशाल डेटा उपलब्धता ने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को अनुसंधान और रोजगार दोनों के लिए महत्वपूर्ण बना दिया है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कई उन्नत तकनीकों पर आधारित है, इन तकनीकों के माध्यम से मशीनें डेटा का विश्लेषण कर बुद्धिमान व्यवहार प्रदर्शित करती हैं, जिनमें प्रमुख हैं – मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, न्यूरल नेटवर्क, नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग एवं कंप्यूटर विज़न। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है– संकीर्ण आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस : यह किसी विशेष कार्य के लिए विकसित की जाती है, जैसे वॉइस असिस्टेंट, चेहरा पहचान प्रणाली आदि। सामान्य आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस : यह मानव जैसी बुद्धि रखती है और विभिन्न प्रकार के कार्य करने में सक्षम होती है। वर्तमान में यह शोध और विकास के चरण में है। सुपर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस : यह मानव बुद्धि से भी अधिक सक्षम मानी जाती है, फिलहाल यह एक सैद्धांतिक अवधारणा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ पाई जाती हैं –

- **सीखने की क्षमता :** मशीनें डेटा और अनुभव के आधार पर स्वयं में सुधार करती हैं।
- **तर्क और निर्णय क्षमता :** परिस्थितियों का विश्लेषण कर उचित निर्णय लेना।
- **समस्या समाधान :** जटिल समस्याओं के लिए समाधान प्रस्तुत करना।
- **भाषा समझने की क्षमता :** मानव भाषा को समझना और उसका उत्तर देना।
- **स्वचालन :** बिना मानवीय हस्तक्षेप के कार्य करना।

शोध पत्र के उद्देश्य :

- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एवं मानव चेतना का अध्ययन करना।
- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से भविष्य की चुनौतियाँ एवं संभावनाओं का अध्ययन करना।
- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और अनुसंधान के नए आयामों का अध्ययन करना।

अनुसंधान पद्वति :

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक स्रोत से एकत्र किए गए समंकों पर आधारित है, इसमें विभिन्न संस्थानों की रिपोर्ट, वेबसाईट, समाचार पत्रों एवं पुस्तकों से प्राप्त तथ्यों को संकलित एवं विश्लेषण कर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एवं मानव चेतना का एक सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मानव चेतना का रहस्य :

मानव चेतना वह जटिल अवस्था है, जिसमें व्यक्ति स्वयं के अस्तित्व, विचारों, भावनाओं और परिवेश के

प्रति जागरूक होता है। यह केवल सूचना प्रसंस्करण नहीं है, बल्कि अनुभव, आत्मबोध और संवेदनशीलता का समन्वय है। चेतना के प्रमुख आयाम है – आत्म–जागरूकता : मैं कौन हूँ? का बोध होना। भावनाएँ : प्रेम, क्रोध, करुणा, भय आदि व्यक्त करना। नैतिकता : सही और गलत का निर्णय लेना। स्वतंत्र इच्छा : निर्णय लेने की स्वतंत्रता होना। वैज्ञानिक अब तक चेतना को पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं। यह केवल मस्तिष्क की जैव–रासायनिक क्रियाओं का परिणाम है या कुछ और गहरा, यह अभी भी रहस्य बना हुआ है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मानव चेतना के बीच तुलना करते समय कई महत्वपूर्ण अंतर सामने आते हैं :

(क) अनुभव बनाम गणना : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस डेटा और एल्गोरिद्म के आधार पर निर्णय लेती है, जबकि मानव अनुभव और भावनाओं के आधार पर सोचता है। उदाहरण के लिए, एक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस डॉक्टर बीमारी का विश्लेषण कर सकता है, लेकिन मरीज के दर्द को महसूस नहीं कर सकता।

(ख) भावनात्मक बुद्धिमत्ता : मानव में भावनात्मक बुद्धिमत्ता होती है, वह सहानुभूति, प्रेम और संवेदना व्यक्त कर सकता है। जबकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इन भावनाओं की नकल कर सकती है, परंतु वास्तव में उन्हें महसूस नहीं कर सकती।

(ग) रचनात्मकता : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अब कविता, संगीत और चित्र बना सकती है, लेकिन उसकी रचनात्मकता डेटा के पुनर्संयोजन पर आधारित होती है। मानव की रचनात्मकता मौलिक अनुभवों और कल्पनाओं से उत्पन्न होती है।

(घ) नैतिकता और मूल्य : आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस नैतिक निर्णय नहीं ले सकती जब तक उसे प्रोग्राम नहीं किया जाए। मानव अपने अनुभव, संस्कृति और मूल्यों के आधार पर नैतिक निर्णय लेता है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के तीव्र विकास ने यह प्रश्न उठाया है, कि क्या मशीनें कभी मानव चेतना के स्तर तक पहुँच सकती हैं। यह द्वंद कई स्तरों पर दिखाई देता है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यदि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अत्यधिक उन्नत हो गई, तो यह मानव अस्तित्व के लिए खतरा बन सकती है। सुपरइंटेलिजेंस की अवधारणा इसी डर को दर्शाती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के कारण कई नौकरियाँ स्वचालित हो रही हैं, जिससे मानव श्रम की आवश्यकता कम हो रही है। इससे सामाजिक असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। यदि मशीनें सोचने और निर्णय लेने लगें, तो मानव की विशिष्टता पर प्रश्न उठता है। क्या मानव केवल एक उन्नत मशीन है। यह सबसे विवादास्पद प्रश्न है। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि यदि मस्तिष्क एक जैविक मशीन है, तो उसी तरह की संरचना बनाकर चेतना उत्पन्न की जा सकती है। दूसरी ओर, कई दार्शनिक मानते हैं कि चेतना केवल भौतिक प्रक्रियाओं का परिणाम नहीं है, बल्कि इसमें अनुभव और आत्मबोध जैसे तत्व शामिल हैं, जिन्हें मशीनों में उत्पन्न करना संभव नहीं है। ट्यूरिंग टेस्ट जैसे प्रयोग यह जांचने का प्रयास करते हैं कि क्या मशीन मानव जैसी बातचीत कर सकती है, लेकिन यह चेतना का प्रमाण नहीं है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और अनुसंधान के नए आयाम :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने अनुसंधान की प्रकृति को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आज शोध केवल सैद्धांतिक न होकर डेटा–आधारित और अंतःविषयक बन गया है। बड़े डेटा का विश्लेषण, पूर्वानुमान आधारित शोध, स्वास्थ्य, कृषि एवं जलवायु अनुसंधान। भारत में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अनुसंधान को बढ़ावा देने हेतु राष्ट्रीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता रणनीति, डिजिटल इंडिया और शैक्षणिक संस्थानों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता केंद्रों की स्थापना

की गई है। इससे रोजगारोन्मुखी अनुसंधान को गति मिल रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास के साथ अनेक नैतिक प्रश्न उत्पन्न हो रहे हैं, जिनका समाधान आवश्यक है। डेटा गोपनीयता और सुरक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियाँ विशाल मात्रा में व्यक्तिगत डेटा का उपयोग करती हैं, जिससे गोपनीयता हनन का खतरा बढ़ता है। निर्णय में पक्षपात, कृत्रिम बुद्धिमत्ता यदि डेटा पक्षपातपूर्ण हो, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता निर्णय भी भेदभावपूर्ण हो सकते हैं, जो सामाजिक असमानता को बढ़ा सकते हैं। मानव नियंत्रण और उत्तरदायित्व, कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा लिए गए निर्णयों की जिम्मेदारी किसकी होगी यह एक महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्न है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोजगार और नैतिकता में परस्पर संबंध है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, रोजगारयोग्यता और नैतिकता आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं। यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास नैतिक मूल्यों के अनुरूप किया जाए, तो यह रोजगार सृजन और अनुसंधान दोनों के लिए सकारात्मक सिद्ध हो सकता है।

भविष्य की चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास से बेरोजगारी की आशंका, कौशल असमानता, नैतिक एवं कानूनी अस्पष्टता की चुनौतिया सामने आ रही है। भविष्य की संभावनाओं में मानव–कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास से सहयोग आधारित रोजगार, अनुसंधान में नवाचार और समावेशी डिजिटल विकास संभव हो सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग और उन्नत एल्गोरिदम के माध्यम से, खतरों का पता लगाने, उनसे निपटने और उन्हें रोकने की क्षमताओं को मजबूत करके साइबर सुरक्षा को काफी हद तक बढ़ाती है। विशाल डेटासेट के विश्लेषण और सुरक्षा प्रणालियों को स्वचालित करने में क्रांतिकारी लाभ प्रदान करने के साथ–साथ, एआई नए और जटिल जोखिम भी पैदा करता है। इनमें एआई–संचालित हमलों की संभावना और एआई के नैतिक उपयोग से संबंधित चुनौतियाँ शामिल हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता साइबर सुरक्षा परिदृश्य को पूरी तरह से बदल रही है, शक्तिशाली रक्षात्मक क्षमताओं के साथ–साथ नए आक्रमण के तरीके भी प्रस्तुत कर रही है। सुरक्षा संचालन में इसका एकीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है, जिससे संगठन अभूतपूर्व दक्षता के साथ आधुनिक साइबर खतरों के पैमाने और जटिलता का मुकाबला कर सकते हैं। हालांकि, यह क्रांतिकारी तकनीक दुर्भावनापूर्ण तत्वों को भी सशक्त बनाती है, इसलिए इसके अंतर्निहित जोखिमों की व्यापक समझ आवश्यक है। सुरक्षा विशेषज्ञों के लिए एआई की दोहरी प्रकृति को पहचानना सर्वोपरि है– यह एक ढाल और एक संभावित हथियार दोनों के रूप में कार्य करता है। साइबर सुरक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का महत्व इसकी विशाल मात्रा में डेटा को संसाधित और विश्लेषण करने की क्षमता से उपजा है, जो मानवीय क्षमताओं की तुलना में कहीं अधिक कुशल और सटीक है। इससे खतरे की बेहतर पहचान, स्वचालित प्रतिक्रिया तंत्र और सक्रिय रूप से कमजोरियों की पहचान संभव हो पाती है। साथ ही, कृत्रिम बुद्धिमत्ता की वह शक्ति जो इसे एक दुर्जेय रक्षा प्रणाली बनाती है, उसका दुरुपयोग भी किया जा सकता है, जिससे अधिक परिष्कृत और छलावरणीय हमले हो सकते हैं, साथ ही नए नैतिक दुविधाएँ और परिचालन संबंधी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। अपार लाभों और जटिल जोखिमों दोनों को ध्यान में रखते हुए संतुलित दृष्टिकोण अपनाना, प्रभावी और भविष्य के लिए उपयुक्त साइबर सुरक्षा समाधानों की रणनीति बनाने के लिए आवश्यक है। साइबर सुरक्षा में ए.आई. का एकीकरण अवसर और कठिनाइयाँ दोनों प्रस्तुत करता है। एक ओर, ए.आई. खतरे का पता लगा सकता है और प्रतिक्रिया को स्वचालित कर सकता है, विसंगतियों की पहचान करने के लिए बड़ी मात्रा

में डाटा का विश्लेषण कर सकता है और यहाँ तक कि भविष्य के हमलों की भविष्यवाणी भी कर सकता है। हालांकि, एआई–संचालित टूल का उपयोग हमलावरों द्वारा परिष्कृत साइबर हमले शुरू करने, सोशल इंजीनियरिंग के लिए डीपफेक बनाने और मैलवेयर विकास को स्वचालित करने के लिए किया जा सकता है। भारत को अपने विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक संदर्भ के कारण कई अन्य विशिष्ट साइबर सुरक्षा चुनौतियों का सामना करना पड़ता है –

- **व्यापक डिजिटल विभाजन :** आबादी के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से के पास डिजिटल साक्षरता और जागरुकता तक पहुँच का अभाव है जिससे वे फिशिंग हमलों और ऑनलाइन घोटालों के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं।
- **खंडित साइबर सुरक्षा बुनियादी ढाँचा :** साइबर सुरक्षा की जिम्मेदारी अक्सर विभिन्न सरकारी एजेंसियों और निजी संस्थाओं को दी जाती है जिससे समन्वय और व्यापक रणनीतियों की कमी होती है।
- **डाटा गोपनीयता संबंधी चिंताएँ :** डाटा सुरक्षा और व्यक्तिगत जानकारी का संभावित दुरुपयोग डिजिटल भुगतान के लिए चिंता का कारण हो सकता है।
- **कौशल की कमी :** भारत को योग्य साइबर सुरक्षा पेशेवरों की कमी का सामना करना पड़ रहा है जिससे प्रभावी खतरे का पता लगाने और प्रतिक्रिया क्षमताओं में बाधा आ रही है।
- **चुनौतियों का समाधान करना अनुसंधान और विकास में निवेश :** सुरक्षित ए.आई. समाधानों के अनुसंधान और विकास में निवेश करना महत्त्वपूर्ण है। इसमें सी.ई.आर.टी. इन जैसी सरकारी योजनाओं को मजबूत बनाना, सार्वजनिक–निजी भागीदारी को बढ़ावा देना और हितधारकों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना शामिल है।
- **जनता को शिक्षित करना :** एक लचीले डिजिटल समाज के निर्माण के लिए साइबर स्वच्छता, ऑनलाइन घोटालों और डाटा गोपनीयता प्रथाओं के बारे में जनता को शिक्षित करना आवष्यक है। प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करके और क्षेत्र में प्रतिभा को आकर्षित करके कौशल की कमी को दूर करना दीर्घकालिक साइबर सुरक्षा तैयारियों के लिए आवश्यक है। सुरक्षित बुनियादी ढाँचे का विकास : भारत को साइबर अपराधों को रोकने, महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे की रक्षा करने और डाटा गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिए मजबूत साइबर सुरक्षा कानूनों और विनियमों की आवश्यकता है।
- **अंतरराष्ट्रीय सहयोग :** दुरुपयोग और पूर्वाग्रह को रोकने के लिए पारदर्शिता, जवाबदेही और मानवीय निरीक्षण महत्त्वपूर्ण हैं। सीमा पार से आने वाले साइबर खतरों से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। जानकारी साझा करने, सर्वोत्तम अभ्यास और विशेषज्ञता से वैश्विक साइबर सुरक्षा तैयारी मजबूत होगी।

निष्कर्ष :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मानव चेतना का द्वंद केवल तकनीकी बहस नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व, पहचान और भविष्य से जुड़ा हुआ प्रश्न है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव की बुद्धि का विस्तार है, लेकिन यह अभी तक मानव चेतना की गहराई और जटिलता को प्राप्त नहीं कर पाई है। मानव चेतना की विशेषता उसकी संवेदनशीलता, आत्मबोध और नैतिकता में निहित है, जो उसे मषीनों से अलग बनाती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास निश्चित रूप से मानव जीवन को बेहतर बना सकता है, लेकिन इसे मानव मूल्यों और नैतिकता के अनुरूप नियंत्रित

करना आवश्यक है। अंततः, यह द्वंद प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि संतुलन और सह–अस्तित्व का होना चाहिए। यदि मानव बुद्धिमत्ता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का समन्वय सही ढंग से किया जाए, तो यह मानव सभ्यता के लिए एक नए स्वर्णिम युग की शुरुआत कर सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास न तो पूर्णतः वरदान है और न ही अभिशाप, बल्कि इसका प्रभाव इसके उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है। यदि नीति–निर्माता, शिक्षाविद् और उद्यमी मिलकर नैतिक और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाएँ, तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधुनिक समाज के लिए अत्यंत उपयोगी तकनीक है। यह विकास, दक्षता और नवाचार को बढ़ावा देती है। किंतु इसके साथ जुड़ी चुनौतियों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। अतः आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास का विकास और उपयोग मानव–कल्याण, नैतिकता और सामाजिक संतुलन को ध्यान में रखते हुए किया जाए।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधुनिक मानव सभ्यता की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह न केवल जीवन को सरल और सुविधाजनक बना रही है, बल्कि भविष्य की विकास यात्रा को भी दिशा प्रदान कर रही है। आवश्यकता इस बात की है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग मानव कल्याण, नैतिक मूल्यों और सामाजिक संतुलन को ध्यान में रखते हुए किया जाए। यदि इसका विवेकपूर्ण और संतुलित उपयोग किया जाए, तो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस मानव समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है।

संदर्भ सूची :

- Russell, S. & Norvig, P. *Artificial Intelligence: A Modern Approach.* https://www.sanskritiias.com/hindi/current-affairs/cyber-security-challenges-in-the-age-of-artificial-intelligence
- Nilsson, N. J. *The Quest for Artificial Intelligence.*
- भारत सरकार : राष्ट्रीय *AI* रणनीति दस्तावेज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 46-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोकगीतों में रची बसी सनातन संस्कृति

जयन्त कुमार बोरो
साहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, कोकराझार विश्वविद्यालय, कोकराझार, असम।
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मणिपुर अन्तराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर।

सारांश :

सनातन संस्कृति भारतवर्ष की मूल संस्कृति है। साधारणतः सनातन का संबंध हिन्दु धर्मीय रीति–नीत से है। यह एक प्राचीन, शाश्वत और एक ऐसी जीवन पद्धति का द्योतक करती है जिसका न आदि एवं अंत है। 'सनातन' शब्द का अभिप्राय है जो सदा से विद्यमान हो और जिसमें धार्मिकता को कर्तव्य, सदाचार, नैतिकता, आदर्श का रूप स्वीकरा किया गया है। सनातन पद्धति में एकेश्वरवाद और बहुदेववाद दोनों के रूपों को तथा ईश्वर के सगुम व निर्गुण रूपों को स्वीकारा गया है। प्राचीन काल से यह धर्म वदों, उपनिषदों, पुराणों में विर्णत आत्मा, परमात्मा तथा मोक्ष जैसे विषयों को अंगीकार करता है। भारत वर्ष में सभी समुदायों की लोकसंस्कृति सनातन संस्कृति से प्रभावित है। यह कहने की आवश्कता नहीं है कि भारत के लिए सनातन परंपरा कोई नई बात है। यह देश सदियों से सनातन परंपरा से आवद्ध है तथा सभी नीति–नियम, खान–पान, रहन–सहन इत्यादि सनातन पद्धति द्वारा परिचालित है। देवी–देवताओं से लेकर अन्य सामाजिक मान्याताओं तक सभी क्षेत्रों में सनातन रची–बसी हुई है जिसकी स्पष्ट छवी लोकगीतों में मिलती है। भारतीय संस्कृति में प्रायः सभी जातियों के लोकसंस्कृति में राम का स्वरूप को देवता के रूप में पूजा जाता है। विवाह के अवसर में गाये जाने वाले मांगलिक गीतों में राम को आदर्श पति एवं बेटा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसीलिए विवाह परक गीतों में राम का स्वाभाविक वर्णन मिलता है।

बीज शब्द – सनातन, संस्कृति, धर्मीय, देवता, राम, विवाह इत्यादि।

विषय प्रतिवेदन :

प्रस्तुत आलेख में लोकगीतों में रची बसी सनातन संस्कृति में राम के स्वरूप को आधार के रूप में लिया गया है। भारत के सभी जाति एवं उपजाति में देवी–देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है जिसमें राम प्रमुख रूप से आते है। पूजा–अर्चना में राम को देवता व परमात्मा के रूप में माना गया है और विवाह जैसे सामाजिक व मांगलिक कार्यों में आदर्श पुरूष के रूप ग्रहण किया जाता है। राम का स्वरूप सभी समुदायों में एक–सा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की सभी संस्कृतियों में सनातन की परंपरा रची बसी हुई है। लोकगीत भारतीय संस्कति का एक अभिन्न अंग है। हमारे देश की असली पहचान गाँवों और लोकगीतों में मिलता है। लोकगीत आम जन–जीवन की शैली है जिसमें साधारण जीवन का रूप झलकता है।

अवधी भाषा के लोकगीतों में राम का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। जैसे :–

राम नाम मुख बोल रे भाई, छोड़ चतुराई।
जग चतुराई बहुत दुख पइहौ, बार-बार पछिताई।
राम नाम बहुतै सुख पइहौ, जिउ कै जरनि नसाई।
अन्त समउ तुम्हरी बनि जइहै, सुख ते नयन मुँदि जाई।
राम नाम मुख बोल रे भाई, छोड़ चतुराई।।
जग चतुराई बहुत दुख पइहौ, बार-बार पछिताई।
राम नाम बहुतै सुख पइहौ, जिउ कै जरनि नसाई।
अन्त समउ तुम्हरी बनि जइहै, सुख ते नयन मुँदि जाई।[1]

मैथिली की "सम्मरि शैली" के लोकगीतों में स्वयंवर प्रसंग में राम का वर्णन मिलता है। इसके अंकर्गत तत्कालीन विवाह संस्कति की छवी मिलती है। मैथिली के निम्न लोकगीत में सीता–स्वयम्बर का वर्णन मिलता है :–

राजा जनक जी यज्ञ कियो सखि
धनुषा बेल धराय
जे भूप इहो धनुषा तोरय
सिया विञ्इव ताहि
-भला सिर मटुकी शोभय लाल ध्वजा।
सिया स्वयम्बर पाँती फिरि गेल
सब जग राजमंझार
राम लछन यग पूरन कारन
चले मुनी के साथ
- भला कठ किमकिम झिमझिम बाज रहे।[2]

भोजपुरी के लोकगीतों में भी राम का वर्णन होली खेलने के प्रसंग में मिलता है। जैसे :–

अवध में होरी खेलैं रघुबीरा
केकरा हाथ कनक पिचकारी,
केकरा हाथ अबीरा।
राम नाम के हाथ कनक पिचकारी,
सीता के हाथ अबीरा।।[3]

भोजपुरी प्रांत के विवाह संस्कार में राम का उल्लेख मिलता है जिसका एक मात्र उद्देश्य राम को आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित करना है। राम सिर्फ आदर्श रूप में ही नहीं अपितु मर्यादा में रहकर समस्त मानव का कल्याण करने वाले है। निम्न गीत में राजा जनक के द्वारा आयोजित सीता स्वयंवर में धनुष उठाने का वर्णन मिलता है। जैसे :–

ओहो रामा, राजा नक जी कठिन प्रन ठाने हो रामा।

देसे देसे लिखि पतिया पठाने में हो राम।

देसे देसे।।

ओहो रामा, देस रे विदेसवा के भूप सभ अइले हो रामा।

केहूँ नाही संकर चढ़ावे हो रामा।।

केहू नाहीं।।

आहो रामा, अजोध्या बसेले राजा दशरथ हो रामा।

उनहुँ के राजा कुवँर दोऊ भइया आये हो रामा।

उनहुँ के।।

ओहो रामा, एक हाथे राम धेनुहा उठावे हो रामा।

दूजे हाथे क्रीट मुकुट सहिरावे हो रामा।

दूए हाथे।।[4]

कनौजी भाषा के लोकगीतों में भी राम वर्णन मिलता है। एक गीत में राम के सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। जैसे :–

देखउ सखी, राम आज बन्ना बने।

सिर बन्नी के मउर सोहाई,

कानन सोहइँ कुण्डल, गले मइँ गजरा, देकउ।।

जबरे राम की बनी बराइत,

झुकि आए इंद्र उमड़ आये बदरा देखउ।।

चारउ भाई जनकपुर सोहइँ

वस्त्र बने एक बरना, देखउ।।[5]

असम प्रांत के बोड़ो समुदाय के लोकगीतों में राम का वर्णन मिलता है। इस समुदाय के विवाह विषयक गीतों में मांगलिक कार्यों में राम वर्णन मिलता है। निम्न गीत में राम नाम के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। इसमें यह उल्लेख किया गया है कि नव दम्पतियों को नव जीवन में प्रदार्पण करने से पूर्व राम नाम का स्मरण करना चाहिए। जैसे –

राम बुन नामाथि मना जथुं सथि रामा राम।

राम बुङाबोला मना आला जाला राम राम।

थांनांगोन जेखालि मन आइलि जालि रामा राम।

बिदा फंबाय आइ–आफा रावबो आंनि नंङा।

खुलायबो थांलागोन फाफ फुन्यबो।

थांपागोन राम राम।[6]

(अर्थात् हे प्रिय बहनों! इस शुभ अवसर में हृदय और पूर्ण आत्मा से राम नाम की स्मरण करो। वहीं देवों में सर्वोत्म है। इस संसार की सभी जीवित वस्तुएँ नश्वर है। हम सब को एक दिन इस नश्वर संसार को त्याग कर जाना होगा। कोई भी सगे सम्बन्धी, भाई–बहन राम के समान के हमारे निकट नहीं है। इसलिए इस शुभ

घड़ी में राम का नाम लेते हुए उसकी प्रार्थना करनी चाहिए।)

असमिया भाषा के लोकगीतो में भी राम नाम भक्ति भाव के साथ लिया जाता है। एक गीत में जीवन के आसार भाव को देखकर भक्त जन यह कहते है कि हमने यह क्या कर दिया। जीवन भर हमने राम का नाम नहीं लिया। इस गीत में यह राम नाम का महत्त अर्थ व्यक्त हुआ है। राम नाम ही जीवन का एक मात्र सार तत्व से परिपूर्ण है। एक उदाहण दृष्टव्य है :–

राम नाम नलेलो
हरिर नाम नलेलो
कि काम करिलौं
आमि उ राम राम
कि काम करिलु
आमि उ राम राम।[7]

उपसंहार :–

उपर्युक्त भाषाओं के लोकगीतों में राम नाम का उल्लेख मिलना भारतीय परिवेश में सनातनी संस्कृति का मुख्य आधार है। अवधीय भोजपुरीय कनौजीय बोड़ोय असमिया आदि के लोकगीतों में राम का वर्णन भक्ति भाव के साथ वर्णित हुआ है। उक्त गीतों को मात्र उदाहरण स्वरुप लिया गया है। लोकगीतों में रामकथा के प्रसंग सहज भाव से मुखरित हुआ है। राम सिर्फ देवता ही नहीं अपितु सनातन संसकृति की आत्म है। समग्र भाषाओं के लोकगीतों में देवी–देवताओं के प्रसंग भरे पड़े हैं। लोकगीतों में देवी–देवताओं का वर्णन मिलना ही सनातन संस्कृति की पहचान है। भारत के सभी समुदायों के लोक पर्वों में देव–देवी की पूजा अर्चना की जाती है। इसका प्रमाण यही है कि सनानत संस्कृत हमारी मूल धरोहर है। पूर्व से लेकर पश्चिम; उत्तर से लेकर दक्षिण तक सनातन क प्रभाव है। सनातन परम्परा और संस्कृति ने भारत की साम्प्रदायिक भावना को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया है। यही हमारी साम्प्रायिक सद्‌भावना की पहचान है। हमारे देश के अलग–अलग हिस्सों में सदियों से जाति–जनजातियों बसे हुए है। एक ही प्रकार की भौगोलिक सीमाओं में रहने के कारण एक दूसरे की भावनाओं और भक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है और यही भावना लोकगीतों में दिखाई देती है। हिन्दी प्रदेशों में राम का वर्णन मिलना एक आम बात हो जाती है परन्तु अन्य भाषाओं में मिलना सनातन संस्कृति का बसा हुआ रूप है। वर्तमान समय में यदि सच्चे अर्थों में देश को एक सूत्र में पिरों कर रखना है तो 'सनातन' शब्द को व्यापक अर्थ में लेना होगा। यदि किसी वर्ग विशेष तक इसे सिमट कर रख दिया जाए तो सनातन का अर्थ संकीर्ण हो जाएगा। आज भी भारत में कई ऐसी जातियाँ है जो अपने को सनातन संस्कृति से अलग मानती है। उनका मानना है कि उनकी जाति का उद्‌गम स्थल भारत भूमि से इतर है। ऐसे अर्थ में वे अपने को सनातन संस्कृति से अलग रखने का प्रयास करते है। उन्हें भी बिना किसी भेदभाव के साथ इसके अन्तर्गत सम्मिलित कर लेना चाहिए। तभी व्यापक अर्थ में सार्थक हो सकेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. अवस्थी, महेशप्रताप नारायण, सम्पादक. "हिंदी के लोकगीत" . प्रकाशक – सत्यवती प्रज्ञालोक, 2002 ई.

पृष्ठ 219.
2. सिंह 'राकेश', श्री रामइकबघल. संग्रहकर्ता एवं संपादक "मैथिली लोकगीत". हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रया, 2012 ई., पृष्ठ–102.
3. अवस्थी, महेशप्रताप नारायण, सम्पादक. "हिंदी के लोकगीत". प्रकाशक – सत्यवती प्रज्ञालोक, 2002 ई पृष्ठ –101.
4. वहीं, पृष्ठ–107.
5. वहीं, पृष्ठ–238.
6. ब्रह्म, मोहनि महन. "बरनि खुगा मेथाइ" (Folk Song of Bodos), पृष्ठ–28.
7. https://www.starmakerstudios.com/en/song/bonxidhar&das&ram&naam&nololu&r&aam&naam&nlailo&lyrics/611752105030412391, Dated-17.04.2026, Time- 2.33 PM.

सहायक ग्रंथ सूची :

1. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. भोजपुरी लोकगीत, भाग–1, इलाहाबादः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–12, सम्मेलन मार्ग, 1960 ई.
2. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. भोजपुरी लोकगीत, भाग–2, इलाहाबादः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–12, सम्मेलन मार्ग, 1999 ई.
3. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. भोजपुरी ग्राम गीत, इलाहाबादः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–12, सम्मेलन मार्ग, 2000 ई.
4. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. भोजपुरी लोकसाहित्य, वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, 2008 ई.
5. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. लोक संस्कृति की रूपरेखा, इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, 2009 ई.
6. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव. भोजपुरी लोकसाहित्य की भूमिका, इलाहाबादः साहित्य भवन प्रा. लि., 2008 ई.
7. सिंह 'राकेश', श्री रामइकबघल. मैथिली लोकगीत, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2012 ई.

ईमेल– jayantkok@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 51-55
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चित्रेषु मौनाभिव्यक्तिः साहित्ये च शबदाभिव्यक्ति : एकं तुलनात्मकं अध्ययनम्

Dr. Lakshmi C
Associate Professor, Department of Sanskrit, Payyanur College, Payyanur.

सारांश :

मानवजीवनस्य आध्यात्मिक–सांस्कृतिक–बौद्धिकविकासस्य आधारशिला भवति भारतीयविज्ञानपरम्परा । वेदोपनिषत्सु इतिहासपुराणादिषु अन्तर्निहितानि मूलतत्त्वानि भारतीयकलासु विविधरूपेण अभिव्यक्तानि जायन्ते। भारतीयविज्ञानपरम्परायां भारतीयसंस्कृतेः, दर्शनस्य, धर्मस्य मौलिक भावानां च प्रतिफलनाय सुशक्तं दृश्यप्रतिनिधित्वं वहति भारतीयचित्रकला। भारतीयचित्रकलायाः विकासे तथैव परिणामे च भारतीयज्ञानपरम्परायाः महत्प्रभावो दृश्यन्ते। अजन्ता–एलोरा प्राचीरचित्राणि, केरलीयानि भित्तिचित्राणि तथैव दरीचित्राणि, रजपुत्र शैलीचित्राणि, विशवविख्यात –रविवर्माचित्राणि च अस्यां परम्परायां कलात्मकाभिव्यक्तेः सांस्कृतिक प्रतिफलनस्य च प्रमुखानि उदाहरणानि भवन्ति। अस्मिन शोधप्रबन्धे भारतीयज्ञानपरम्परायां तथैव काव्येषु चित्रितानां मौलिकाभिव्यक्तीनां चयनं कर्तुं प्रयत्नीकरोति। वर्णनात्मक–विश्लेषणात्मकपद्धत्याः आधारेण काव्यप्रतिपादितानां विषयाणां संयोचनेन चित्रकलायां कथं सामूहिक सांस्कारिक मूल्यानि संनिहितमिति, एवमेव तेषां पारस्परिकसम्बन्धः अपि अत्र विवेचयितुं परिश्रमं करोति। पठनस्य परिणामो यत् भारतीयचित्रकला केवलं सौन्दर्याभिव्यक्तेः साधनं नास्ति, अपितु ज्ञानस्य, मूल्यबोधनस्य, सांस्कृतिकस्मृतेः प्रतिफलने प्रभावीमाध्यममपि भवति इति। अतः भारतीयज्ञानपरम्परायाः संरक्षणे प्रसारे च चित्रकलायाः योगदानम् अनन्यसाधारणम् अतिमत्वापुर्णं च इति निष्पद्यते।

मुख्यशब्दाः – भारतीयज्ञानपरम्परा, चित्रकला, संस्कृति, दर्शनम्, भित्तिचित्रम्, सौन्दर्यशास्त्रम्।

विश्वज्ञानपरम्परायां प्राचीनतमा पद्धतिर्भवति भारतीयज्ञानपरम्परा। वेद–उपनिषत्– इतिहास–पुराणादि शास्त्रग्रन्थेषु अन्तर्भूतं ज्ञानं तु केवलं आध्यात्मिकक्षेत्रे न सीमितम् भवति। किन्तु साहित्य–कला–विज्ञान–दर्शनादिषु विविधेषु क्षेत्रेषु अपि तस्य महान् प्रभावो द्रष्टुम् शक्यन्ते। भारतीयसंस्कृतेः समग्रता विविधासु भारतीय कलासु विशेषतया भारतीयचित्रकलायां सुव्यक्तं प्रकटितो भवति। भारतीयचित्रेषु धार्मिक–दार्शनिकविषयाणां अवतरणमपि चित्रकारैः प्राधान्यतया विरचितो भवति। रामायण–महाभारताश्रितानि पुराणाश्रितानि कृष्णबाललीला संबधीनि, शिवपुराण–देवीमहात्म्यकथाश्रितानि भगवत्गीताश्रितानि, विविधस्तोत्रकाव्याश्रितानि अनेकानि कथासन्दर्भानि भारतीयचित्रकलायां प्रमुखानि दृश्यन्ते। एतेषां चित्राणां उद्देश्यं केवलं सौन्दर्यप्रदर्शनं न, अपितु नैतिकमूल्यानां, धर्मस्य, भक्तेः तथा आध्यात्मिकतत्वस्य प्रसारणम् इत्यपि आसीत्। अशिक्षितजनाः अपि चित्राणां माध्यमेन

धार्मिकसांस्कृतिकज्ञानं संपादयितुं प्रभाविताः भवन्ति। केरलदरीद्वारचित्राणि, रजपूत्रचित्रशैली, पर्वतीयशिलाचित्राणि, मुगलानां लघुचित्राणि तथैव तञ्जावूरचित्राणि च भारतीयविज्ञानपरम्परायाः विविधतां अन्स्वरतां च प्रकटयितुं प्रभाविताः भवन्ति। केरलीयदरीद्वारचित्रेषु पौराणिककथानां विशेष चित्रणम् उपदर्शयितुं शक्यते, रजपुत्रपरिपूतचित्रेषु भक्तिः तथा श्रृङ्गारभावः, मुगलचित्रेषु ऐतिहासिकता तथा प्रकृतिनिरीक्षणम्, तञ्जावूरचित्रेषु देवोपासनायाः गौरवम् इत्येवं अनेकानि धार्मिकतत्त्वज्ञानविशयाणां अवगमनाय प्र्योक्तानि भवन्ति। चरित्र गवेषण कुतूहलिन्यः जनाः तेषां गवेषणविषयाणां दत्तशेखरणाय एतानि चित्राणि प्राथमिकदत्तकरूपेण स्वीकुर्वन्ति।

चित्रकला इत्यनया माध्यमेन मानवस्य भावानां चिन्तनानां च दृश्याभिव्यक्तिं साधयितुं प्रभवन्ति। भारतीयचित्रकलायां धार्मिक–दार्शनिक–अध्यात्मिक – सामाजिकजीवनमस्य – प्रकृतिसौन्दर्यस्य – च समष्टिः निरूपितो विद्यन्ते। अजन्तागुहाचित्राणि, केरलीयभित्तिचित्राणि, राजपूतशैलीचित्राणि, तञ्जावूरचित्राणि च भारतीयविज्ञानपरम्परायाः कलात्मकप्रकाशनस्य नितन्तदृष्टान्तत्वेन स्वीक्रियते चारित्रगवेशकैः। अतः भारतीयज्ञानपरम्परायाः चित्रकलायाः च परस्परसम्बन्धितस्य विषयस्य अध्ययनं भारतीयसंस्कृतेः मूलतत्त्वानां बोधनाय अत्यन्तम् उपकारकम् भवति। अस्मिन् शोधलेखे भारतीयज्ञानपरम्परायाः स्वरूपं, तस्याः प्रतिफलानं प्रतिबिम्बनं च चित्रकलायां कथं भवति? तथैव उभयोः पारस्परिकसम्बन्धः समीक्षात्मकदृष्ट्या च विवेचयितुं प्रयतते स्म।

कला तु मानवानां सांस्कारिकविकास परिणामचारित्रे तस्य आत्माविष्कारस्य सुशक्तमाध्यमत्वेन अवतिष्ठते। तत्र चित्रकला तथा साहित्यं च परस्परपूरकत्वेन विद्यन्ते। एकमालोचनमृतं आलोकनामृतं अन्यदानन्ददायकं च। चित्रकारः विविधैः रेखाभिः नानावर्णैः रुपघटनाभिश्च आलिखितानि चित्राणि नयनानन्दकराणि तथैव हृदयाह्लादकानि च। तद्वत् विविधैः भाषासंकेतैः विविधानां आशयानां अनुभूतीनां जीवितानुभवानां च सृष्टिं काव्यमाध्यमेन विरचयन्ति क्रान्तिदर्शिभिः कविभिः। उक्तं च लीलाशुक प्रणीते श्रीकृष्णकर्णामृते–"चित्रं तदेतन्नयनारविन्दं[1]"– अत्र चित्रमितिपदस्य बहुवर्णयुक्तता , प्राकाशमानता, सौन्दर्यात्मकता, रसात्मकता इत्याद्यर्थे प्रयुक्तो भवति।

सहितयोः भावः साहित्यं– इति सामान्यतया साहित्यस्य निर्वचनमुच्यते काव्यालंकारिकैः। आनन्दवर्धनाचार्यस्य अभिमतानुसारं– "येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः[2]। ध्वन्यालोके अयं प्रसिद्धः वाक्यांशः प्रथमोद्योते अभिनवगुप्तकृतलोचनव्याख्यायाम् सहृदयलक्षणप्रसङ्गे प्रतिपादितो भवति। सहितत्वम् तथा तन्मयीभवनयोग्यता च कव्यस्यास्वादने चित्रस्यास्वादने च संपद्यते इति मे मतिः।

"चित्रं भावप्रकाशनम्" –चित्राणि तु साहित्य वर्णनामनुसरन्ति। तथैव ते भावानां दृश्याविष्करणं प्रदास्यन्ति।

अर्थात् भावाभिव्यक्तये आशयविनिमयाय च ते भाषां विनैव समर्थाः भवन्ति। साहित्ये कविना वर्णितानि मनोहराणि वर्णनानि चित्रकारेण चित्ररूपेण परिवर्तयति। अर्थात साहित्यानि तु चित्रकारस्य चित्राविष्करणाय प्रमेयं तथा प्रतिपाद्यविषयान् कथापात्रान् च प्रदास्यन्ते। तद्वत् चित्राणि साहित्यानां दृश्याविष्करणैः साकं आस्वाद्यतां नयन्ति। यथा कर्णभारे परशुरामस्य रङ्गप्रवेश वर्णना प्रसङ्गे –

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप–मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम्।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि[3]।।

'लोकेनानेन कविना अनुवाचाकानां मनसि परशुं धृत्वा स्थीयमानस्य क्षत्रान्तकस्य पराशुरामस्य गौरवं स्वरूपं प्रदरशयति। काव्ये कविवर्णितान्यंशाणि मनसि निधायैव चित्रकारेण कविकल्पितानुसारं चित्रलेखानं क्रियते। महाकवि

कालिदसविरचिते अभिज्ञानशाकुन्तले उपवर्णितं विद्यते –

विचिन्तयन्तीयमनन्यमानसा तपोनिधिं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमां कृतामिव।[4]

विश्वविख्यातेन चित्रकारेण राजा रविवर्मया श्लोकमिमं आश्रित्य प्रसिद्धं चित्रं आलिखितं भवति। तत्तु अद्यापि सर्वेषां मनसि अनश्वरतया स्थीयते।

साहित्यास्वादनाय अक्षरज्ञानं तथा भाषापरिज्ञानं च अनिवार्यो भवति, किन्तु चित्रकला भाषापाण्डित्यसीमां उल्लङ्घ्य जनानां मनसि आस्वाद्यतां रचयन्ति। साहित्य पठनेन सहृदयस्य चित्रकारस्य मनोमुकुरे संजातानि भावानि भाषावगतिं विना आस्वद्यकराणि जायन्ते। तत्तु दर्शनमात्रेणैव रेखाचित्राणां वर्णवैविध्यतया सचिन्मयानन्दं प्रदास्यते। तानि चित्राणि सामान्यावलोचकानां जनानां मनसि वैकारिकतां भावात्मकतां च जनियितुं समर्थाः भवन्ति। यतो हि भाषाविशेषपाण्डित्याभावेऽपि सामान्यजनाः चित्रेषु रसास्वादनं कर्तुं प्रभाविताः भवन्ति, तस्मात् चित्राणि काव्यास्वादनस्य प्रचारं व्यापकतां च संवर्धयन्ति। एकमेव चित्रं विभिन्नभाषाकवीनां कल्पनायाः आधारभूतं भवति। तस्य आधारेण विविधभाषासु नानाविधवर्णनसमन्वितानि तथा विविधालङ्कारभूषितानि काव्यानि निर्मीयन्ते च। तथैव एकस्यामेव भाषायामपि विभिन्नकविभिः तत् विषयं विविधभावस्तरेषु प्रस्तुतम् अपि कृतो विद्यते। उदाहरणतया –

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि।[5]

श्लोकोऽयं भागवतः वटपत्रशायिनः बालकृष्णस्य रूपवर्णनं प्रस्तुतीकरोति। एतत्तु श्रीकृष्णस्य वर्णनेष्वन्यतमं भवति। स्तुतिकाव्याधिष्ठित मुकुन्दाष्टके वर्णितं तथैव दैविक चित्रेषु च प्रख्यातोऽयं भगवतः भावोऽयं। अस्य काव्यस्य समानं चित्रणं श्रीकृष्णविलासकाव्येऽपि दृश्यते। तत्र कविः बालकृष्णस्य दिव्यसौन्दर्यं लीलामाधुर्यं च भावपूर्णया शैल्या निरूपितो भवति। भावोऽयं विश्वविख्यात कविना लीलासशुकेनापि श्रीकृष्णकर्णामृते अपि उपवर्णितं भवति। अयमेव भावतलः केरलीनेन सुकुमारकविना स्वीये श्रीकृष्णविलासकाव्ये मनोहरया गिरा उपवर्नितो भवति। यथा–

वदनं मधुसूदन कराभ्यां चारणाङ्गुष्ठमुपानयत् पिपासुः।
गलितेव सुरस्रवन्ती नखामुक्तामणि दीधितिछलेन।।[6]

भागवत पुराणेपि वर्णनेयं द्रष्टुं शक्यते –

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः।।[7]

भाषाभेदं विना चित्राणि सहृदयानां मनसि आशयाभिव्यक्तिं जनयति इत्यतः विश्वविख्यात चित्रकारेण लियानडो डाविंजि महाशयेन "विस्वभाषा" (Universal Language) इत्यनया रीत्या अभिव्यन्जितम्। चित्रकला मानवानां सर्वसामान्यानुभवान् भावान् तथैव सूक्ष्मभावान् च सजीवं प्रकटयान्ती वैज्ञानिकी भाषा भवति। तस्य मतानुसारं –

" Leonardo da Vinci] conceived painting as a universal mode of communication transcending linguistic and cultural barriers, since visual representation possess the capacity to communicate emotions and ideas directly to human perception".[8]

तेन एवमपि निरूपितं भवति –

"Painting is poetry that is seen rather than felt, and poetry is painting that is felt rather than seen."[9]

पौराणिके रोमासाम्राज्ये प्रशस्तकवितल्लजः तथैव साहित्यनिरुपाकः तत्वचिन्तकश्चासीत् हिरेस महाशयः। तेन चित्रस्य तथैव काव्यस्य च पारस्पर्यं प्रकटी करोति। "उत् पिक्चुरा पोइसिस" (Ut pictura poesis) इत्यनेने लाटिन् वाक्येन स्वीये "आर्ट् पोइटिअ" (Arts Poetica) इतयस्मिन् कृतौ सः व्यक्तीकरोति[10]। तेन चित्रकला काव्यं इतेतत् विभिन्नमाध्यमत्वेपि तेषां चरमं लक्ष्यं तु मानवहृदयेषु सौन्दर्यावबोधस्य सृजनं इत्येतदेव। अस्मिन् कृतौ आस्वाद्यवेदिकायाः तुलनाधिष्ठानं करोति। केचन चित्राणि दूरादेव सौन्दर्यस्य भावस्य च प्रकटने समर्थाः भवन्ति। केचन समीपवर्त्तित्वेन अवगतानि तथैव भावप्रकाशकानि जायन्ते। तथा काव्यानि अपि प्रासादगुणयुक्तानि केवल वाचनवेलायामेव चित्तद्रवीभावमयानि आह्लादकानि इतरे तु काव्यानुशीलनाभ्यासवशात् आन्दरिकार्थस्य व्यङ्यार्थस्य प्राकाशकानि च भवन्ति। तानि अर्थानि अङ्गनासु लावण्यमिव प्रसिद्दावयवातिरिक्तं विभाति[11] इति ध्वन्यालोके आनन्दवर्धनाचार्येण उक्तं सिद्दान्तमत्र स्मर्तुं शक्यते। कावयस्य परमप्रयोजनो भवति "सद्यपरनिर्वृतिः"[12] इति विस्वनाथ कविराजमतं। कव्यप्रयोजनमेत् चित्रकला–साहित्ययोः युगपत् संपद्यते। अर्थात् काव्यास्वादसमनन्तरमेव सहृदयानां मनसि अनिर्वचनीयानन्दं जनयति काव्यानि तद्वत् एव चित्रकारस्य सृष्टिरपि। चित्राणां तथा साहित्यानां पारस्पर्यं पुर्वमेवावतारिकायां प्रस्तुतो विद्यते।

मानवसंस्कारस्य प्रथमसृष्टेः प्रकटनेषु अन्यतमं भवति गुहाचित्राणि। भाषायाः परिपूर्णविकासात् प्राक् मानवः तस्य अनुभवानि, मनसि जायमानानि भयानि, विश्वासानि, मृगयाजीवितं इत्येवं तस्य जीवितानुबन्ध विषयाणि दृश्याविष्कारतां दत्वा गुहाद्वारेषु प्रकटीकृतमासीत्। एतानि हश्याविष्काराणि गुहाचित्राणि इति प्रसिद्धानि। एते गुहाचिताणि व्यवहारज्ञानाय सहायकानि भवन्ति। काव्य प्रयोजनावतरणसन्दर्भे एतदेव प्रयोजनं काव्यानामपि आमनन्ति काव्यशास्त्रकारेण विश्वनाथ कविराजेन स्वीये साहित्यदर्पणे व्यवहारविदे इत्यनेन प्रयोगेण।

काव्यपठनेन व्यवहारज्ञानं सिध्यति। व्यवहाराणां चित्रणं चित्रपटेषु प्रदर्शितवन्त कवयः काव्येषु चित्रायन्ति च। अस्य प्रकटोदाहरणं भवभूतेः उत्तररामचरिते प्रन्थमाङ्गे द्रष्टुं शक्नुमः। तत्र चित्रपटानां दर्शन वर्णनं क्रमानुगतत्वेन चित्रितो विद्यते। सीता स्वयंवरस्य शिवधनुर्भङ्गस्य च वर्णनं यथा –

महाकविना भारविना विरचिते उत्तररामचरिते प्रथमाङ्के चित्रदर्शनप्रसङ्गस्य विशेषमहत्त्वमधिगच्छति। प्रसङ्गोयं साहित्यस्य चित्रकलायाश्च परस्परसम्बन्धं प्रकाशयति। चित्रपटदर्शनप्रसङ्गे कविना भूतकालस्मृतिमाध्यमेन चित्रकलायाः महत्त्वं उपवर्णयति तथैव भावप्रकाशनेन तस्याः सामर्थ्यं अपि प्रदर्शयति। चित्रं न केवलं दृश्यवस्तु, अपितु भावानां स्मृतीनां च संवाहकमिति उत्तररामचरिते भवभुतिना स्पष्टतया प्रतिपादितम् च विद्यते। तत्र काव्ये–लक्ष्मणः रामं प्रति कथयति –"जयति जयत्यार्यः। आर्य! अर्जुनेनार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। तत्पश्यत्वार्यः" इति।[13] तथा रामः दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुं दर्शनोयं उपकरोतीति सूचयति। अत्र "अभिलिखितम्" इति पदेन चित्रकलायाः प्रयोगः सूचितो भवति। रामस्य जीवनवृत्तान्तः चित्ररूपेण प्रस्तुतो भवाति अस्मिन् कव्यसन्दर्भे। लक्ष्मणः पुनरपि आहकृयावदार्याया हुताशनशुद्धिः। अनेन सीतायाः अग्निपरीक्षापर्यन्तं घटनाचक्रं चित्रितमिति ज्ञायते। एतत् श्रुत्वा रामः शान्तं पापम् इत्युक्त्वा सान्त्वनपूर्वकं वदति– "उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्या पावनान्तरैः ..."[14]।

अनेन वाक्येन रामस्य अन्तःकरणे विद्यमान शोकः, करुणा तथा सीतां प्रति प्रेम च प्रकटयति। अत्र चित्रं केवलं दृश्यवस्तु न, अपितु स्मृत्याः भावानां च जागरणस्य साधनम् अस्ति। चित्रदर्शनप्रसङ्गः दर्शयति यत्

चित्रकला भूतकालीनानां घटनानां संरक्षणं करोति तथा पात्राणां मनोभावान् अपि प्रभावकरूपेण प्रकाशयति। रामः चित्रदर्शनेन स्वजीवनस्य विविधस्मृतयः पुनरनुभवति। अतः चित्रं भावाभिव्यक्तेः सशक्तमाध्यममिति सिद्ध्यति। भारतीयसौन्दर्यशास्त्रे प्रसिद्धमिदं वचनम्– 'चित्रं मूकं काव्यं, काव्यं च चित्रं वाचकम्"। अस्य प्रसङ्गस्य सन्दर्भे एतद्वचनं पूर्णतया सार्थकं भवति। यथा काव्यं शब्दैः भावान् प्रकाशयति तथा चित्रं वर्णरेखाभिः तानेव भावान् प्रकटीकरोति। अतः उत्तररामचरितस्य चित्रदर्शनप्रसङ्गः साहित्य–चित्रकलयोः अभिन्नसम्बन्धस्य उत्कृष्टमुदाहरणम् अस्ति। अयं प्रसङ्गः दर्शयति यत् चित्रकला स्मृतिसंवाहिका, भावप्रकाशिका, रसोत्पादिका च अस्ति। अत एव भारतीयकलापरम्परायां चित्रस्य महत्त्वं विशेषरूपेण प्रतिष्ठितमिति निष्कर्षः।

चित्रं हि नाम स्मृत्युद्बोधनस्य प्रभावकं साधनम्। चित्रं निःशब्दमपि भावान् प्रकाशयति, काव्यं तु शब्दमाध्यमेन तानेव भावान् सहृदयेषु संचारयति। चित्रकला दृश्यमाध्यमेन, काव्यकला शब्दमाध्यमेन च भावानां रसस्य च अभिव्यक्तिं वितन्वन्ति।

ग्रन्थसूचिका :

१. ध्वन्यालोकम्, आनन्दवर्धनाचार्यः, केरल भाषा इन्स्टिटुट्, २०२२.
२. काव्यप्रकाशः, मम्मटभट्टः–प्रथमोल्लसः।
३. उत्तररामचारितं, भवभूति, कृष्णदास अक्कदमि, वाराणसी, १६६०.
४. श्रीकृष्णविलासकाव्यम्, सुकुमारकविः, आर.एस्.वाद्यार –सोनस्, १६७८.
५. श्रीमत् भागवतम्, गुरुवार्यूदेवस्वम्, अवस. ८.
६. लीलाशुकः, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, गुरुवायू देवस्वम्, २०१८.
७. आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः, लोचानव्याख्या सहितः।
८. Leonardo da Vinci, Treatise on painting, Princeton University Press,1956.
६. Horace, Ars Poetica, V. 361; Ut Pictura Poesis.erit.

सन्दर्भ सूची :

- लीलाशुकः, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, १–८६ प–८४
- आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः, लोचानव्याख्या सहितः, प्रथमोद्योतः
- महाकवि भासः, कर्णभारम् : प–७.
- अभिज्ञानशाकुन्तलं, महाकवि कालिदासः ४–१, प.८०.
- मुकुन्दाष्टकं, स्तोत्रकाव्यम् – लीलाशुकः, श्रीकृष्ण कर्णामृतम् : २.५६, प–१३०
- श्रीकृष्णविलासकाव्यम्, सुकुमारकविः ३–२६, प–२७
- श्रीमत् भागवतम् : १२–६–२५, प–७५३, अवस.८
- Leonardo da Vinci, Treatise on Painting, Princeton University Press
- तत्रैव।
- Horace, Ars Poetica, V. 361; Ut Pictura Poesis. erit
- ध्वन्यालोकम्, आनन्दवर्धनाचार्यः : १–४, प–८.
- काव्यप्रकाशः, मम्मटभट्टः–प्रथमोल्लसः।
- उत्तररामचारितं, भवभूति– १–११.
- आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः, लोचानव्याख्या सहितः, प्रथमोद्योतः।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 56-61

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओडिसी संगीत एवं नृत्य : एक अध्ययन

के. माधवी
एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

सारांश :

भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है, जिसकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ अनेक रूपों में विकसित हुई हैं। इन विविधताओं के मध्य कला एक विशिष्ट एवं संगठित सांस्कृतिक तत्त्व के रूप में उभरती है। भारतीय नृत्य परंपरा इसी सांस्कृतिक समृद्धि का सशक्त उदाहरण है। नृत्य की विभिन्न शैलियाँ अपनी विशिष्ट संरचना, तकनीक तथा अभिव्यंजना के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करती हैं।

प्राकृतिक तत्वों 'जैसे वृक्ष, पुष्प, पक्षी, मेघ, आकाश तथा ऋतु–परिवर्तन' से प्रेरित भावाभिव्यक्तियाँ नृत्य में प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त होती हैं। जब इन स्वाभाविक अभिव्यक्तियों को शास्त्रीय अनुशासन, संरचना तथा तकनीकी नियमों के अंतर्गत व्यवस्थित किया जाता है, तभी कला का परिष्कृत रूप विकसित होता है। जैसे प्रकृति में प्रत्येक पुष्प का एक निश्चित आकार, रंग एवं सुगंध होती है, उसी प्रकार शास्त्रीय नृत्य की भी एक निश्चित संरचना, शैली और व्याकरण होता है। यह सुव्यवस्थित कलात्मक अभिव्यक्ति केवल बाह्य सौंदर्य का प्रदर्शन नहीं करती, बल्कि यह सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक आयामों को भी संप्रेषित करती है। ओडिसी नृत्य एवं संगीत इसी परंपरा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो अपनी विशिष्ट लय, मुद्राओं, भावाभिनय और संरचनात्मक सौष्ठव के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक विरासत को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है।

मुख्य शब्द –

ओडिसी नृत्य, संगीत, महारी सेवा, आध्यात्मिक साधना, गतियाँ, भंगिमाएँ, अभिनय चंद्रिका।

प्रस्तावना :

ओडिसी उड़ीसा (वर्तमान ओडिशा) प्रदेश में प्रचलित एक प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली है। ओडिशा भारत के पूर्वी तट पर स्थित एक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध राज्य है। यह नृत्य–शैली अपनी विशिष्ट अंग–संचालन पद्धति, त्रिभंगी मुद्रा, भावाभिनय तथा लयात्मक सौंदर्य के कारण भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपरा में विशिष्ट स्थान रखती है। ओडिसी का विकास मंदिर–परंपरा, देवदासी प्रथा तथा वैष्णव भक्ति आंदोलन से घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहा है।

ओडिसी संगीत पद्धति :

कोई भी जाति अथवा राष्ट्र अपनी सांगीतिक परंपरा को अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग मानता है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक जीवन में भोजन, वेशभूषा, शिल्पकला, स्थापत्य, आचार–विचार तथा अन्य जीवनोपयोगी तत्वों की भाँति संगीत भी एक आवश्यक सांस्कृतिक अवयव है। जब ओडिसी संगीत को शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में स्थापित किया जाता है, तब उसके उद्‌गम, परंपरा, स्वरूप तथा विकास–क्रम का सुव्यवस्थित एवं प्रामाणिक अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। किसी भी शास्त्रीय संगीत प्रणाली की विशिष्टता और प्राचीनता का सम्यक् आकलन तब तक संभव नहीं है, जब तक उसके ऐतिहासिक स्रोतों, प्राचीन ग्रंथों तथा शिलालेखों आदि का गंभीर अनुशीलन न किया जाए। ओडिसी संगीत की जड़ों का संबंध अत्यंत प्राचीन काल से माना जाता है, तथा इसका साहित्यिक एवं शास्त्रीय आधार विभिन्न प्राचीन काव्य–ग्रंथों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा ऐतिहासिक अभिलेखों में परिलक्षित होता है।

ओडिशा के विभिन्न शासकों, संरक्षकों, कवियों एवं संगीतज्ञों ने समय–समय पर ओडिसी संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप यह संगीत–पद्धति क्रमशः विकसित होती हुई एक सुदृढ़ और विशिष्ट स्वरूप में प्रतिष्ठित हुई।ओडिसी संगीत के विकास के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह माना जाता है कि 15वीं शताब्दी के पूर्व एवं पश्चात् ओडिशा के राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिसने संगीत की संरचना एवं प्रवृत्तियों को भी प्रभावित किया। इस प्रकार ओडिसी संगीत का विकास सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहा है।

ओडिसी संगीत का ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय स्वरूप :

जयदेव कृत गीतगोविन्द को ओडिसी संगीत की उच्च कोटि की काव्य–संगीतात्मक अभिव्यक्ति माना जाता है। यह ग्रंथ न केवल साहित्यिक दृष्टि से, अपितु संगीतशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। ओडिसी संगीत की अपनी प्राचीन परंपरा, विशिष्ट शास्त्रीय आधार, स्वतंत्र राग–तंत्र तथा ताल–व्यवस्था विद्यमान है। गीतगोविन्द, विभिन्न मंदिर–परंपराएँ, अभिलेखीय प्रमाण तथा क्षेत्रीय काव्य–रचनाएँ इसके शास्त्रीय स्वरूप की पुष्टि करती हैं। ओडिसी संगीत की कुछ प्रमुख विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम, इसकी गतिक संरचना एवं संगीतिक प्रवाह विशिष्ट प्रकार की भावप्रधानता लिए हुए हैं, जो इसे अन्य संगीत–पद्धतियों से पृथक् स्थापित करते हैं। द्वितीय, ओडिसी संगीत में गमकों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पंद्रह प्रकार के गमकों का प्रयोग पाया जाता है, जिनमें कम्पित, आंदोलित, उल्लसित तथा कूर्चित आदि प्रमुख हैं। इन गमकों का प्रयोग रागों की अभिव्यक्ति को सशक्त एवं प्रभावपूर्ण बनाता है तथा उच्च कोटि की संगीतिक सूक्ष्मताओं को उद्‌घाटित करता है। इस प्रकार ओडिसी संगीत अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, शास्त्रीय संरचना तथा विशिष्ट तकनीकी तत्त्वों के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत परंपरा में एक स्वतंत्र एवं समृद्ध स्थान रखता है।

ओडिसी संगीत की परंपरा एवं ऐतिहासिक साक्ष्य :

इतिहास–सम्मत विवरणों के अनुसार, एकादश शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक उत्कल (वर्तमान ओडिशा) में संस्कृत साहित्य एवं सांगीतिक परंपराओं का व्यापक विकास हुआ। स्कन्दपुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में इस क्षेत्र की धार्मिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि का उल्लेख प्राप्त होता है। उस कालखंड में देवदासी परंपरा

के अंतर्गत मंदिरों में नृत्य एवं गायन की विशिष्ट पद्धति प्रचलित थी, जिसमें वीणा जैसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी किया जाता था। इस संदर्भ में शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं, जो ओडिसी संगीत की प्राचीनता एवं संस्थागत स्वरूप की पुष्टि करते हैं। संस्कृत श्लोकों एवं अभिलेखीय प्रमाणों में 'गीति', 'गायनी सेवा' अथवा 'गायन सेवा' जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें मंदिर–परंपरा में संपादित सांगीतिक सेवा के रूप में देखा जा सकता है। 'गायनी सेवा' को 'महारी सेवा' के नाम से भी संबोधित किया जाता था। श्री पुरुषोत्तम (जगन्नाथ मंदिर) की परंपरा में विविध अनुष्ठानों एवं उत्सवों के अवसर पर भजन–गीत, स्तुति–गान तथा नृत्य का आयोजन किया जाता था। यह स्पष्ट करता है कि ओडिसी संगीत का विकास धार्मिक अनुष्ठानों एवं मंदिर–संस्कृति के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहा है।

मंदिर–परिसर में प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन सेवाओं के समय विशिष्ट रागों एवं गीतों का गायन किया जाता था। इस प्रकार संगीत और नृत्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति न होकर, धार्मिक उपासना का अभिन्न अंग थे। ओडिसी संगीत की यह परंपरा सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में गहराई से प्रतिष्ठित थी तथा कालांतर में एक सुदृढ़ शास्त्रीय प्रणाली के रूप में विकसित हुई।[1]

ओडिसी नृत्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि एवं शास्त्रीय आधार :

ओडिसी नृत्य अपनी भक्ति–प्रधान प्रकृति के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, अपितु एक आध्यात्मिक साधना का माध्यम भी है। इसकी विषयवस्तु मुख्यतः देवताओं, विशेषतः श्रीकृष्ण, राधा तथा वैष्णव भक्ति परंपरा से संबंधित कथाओं एवं भावों से प्रेरित होती है। इस नृत्य की तकनीकी संरचना भक्ति–रस की अभिव्यक्ति के साथ समन्वित रूप में विकसित हुई है।विष्णुधर्मोत्तर पुराण में एक उल्लेख प्राप्त होता है कि एक राजा ने एक महर्षि से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। महर्षि ने उत्तर दिया कि यदि चित्रकला का ज्ञान प्राप्त करना है, तो सर्वप्रथम नृत्य की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यह प्रसंग इस तथ्य को रेखांकित करता है कि प्राचीन भारतीय कला–दृष्टि में नृत्य को मूलभूत एवं समग्र कला के रूप में मान्यता प्राप्त थी। उक्त ग्रंथ में यह भी स्पष्ट किया गया है :

"विना तु नृत्यशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।"

अर्थात् नृत्यशास्त्र के ज्ञान के बिना चित्रकला का सम्यक् बोध संभव नहीं है।

इसी प्रकार नाट्यशास्त्र में नाट्य को एक समन्वित कला के रूप में वर्णित करते हुए उसे चारों वेदों का सार कहा गया है :

"चतुर्वेदोपनिष्कृष्टं नाट्यं भिन्नरूचेजनस्य।"

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि नाट्य एवं नृत्य भारतीय संस्कृति में लोकमंगल तथा जन–शिक्षा के प्रभावी माध्यम रहे हैं। इस प्रकार ओडिसी नृत्य केवल मनोरंजन का साधन न होकर, भारतीय दार्शनिक चिंतन, भक्ति–परंपरा तथा शास्त्रीय कला–दृष्टि का सशक्त अभिव्यक्ति–माध्यम है।[2]

ओडिसी नृत्य की तकनीकी संरचना एवं गतियाँ :

अभिनय चंद्रिका का संकलन 15वीं शताब्दी में श्री महेश्वर महापात्र द्वारा किया गया था। इस ग्रंथ में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि उस कालखंड में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्य–शैलियों का वर्णन मिलता है, जिन्हें मार्गी, देशी, चंडी, केलि, ओड्र–मगधी आदि नामों से संबोधित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि

ओडिशा क्षेत्र में नृत्य की एक सुसंगठित एवं विकसित परंपरा विद्यमान थी। शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित तीन प्रमुख करणों के आधार पर नृत्य की विशिष्ट तकनीकों का विकास हुआ, जिनका प्रभाव ओडिसी नृत्य में भी परिलक्षित होता है। करण मूलतः शारीरिक इकाइयाँ हैं, जिनके समुचित संयोजन से विविध नृत्य–गतियाँ एवं भंगिमाएँ निर्मित होती हैं। ये भरतनाट्यम तथा अन्य शास्त्रीय नृत्य–शैलियों की भाँति ओडिसी में भी तकनीकी आधार प्रदान करती हैं। ओडिसी नृत्य की गतियाँ प्रायः शरीर की संतुलित मुद्राओं, पद–संचालन तथा अंग–प्रत्यंग के समन्वित संचालन पर आधारित होती हैं। इसमें शरीर का भार कभी एक पैर पर, तो कभी दोनों पैरों पर संतुलित किया जाता है। पैरों, घुटनों, कटि एवं भुजाओं की समन्वित गतियों से नृत्य का लयात्मक सौंदर्य विकसित होता है। ओडिसी की कुछ प्रमुख गतियाँ निम्नलिखित हैं :

1. **भ्रमरी** – एक पैर को मोड़कर अथवा संतुलित रखते हुए दूसरे पैर के सहारे वृत्ताकार घूमना।
2. **उत्प्लवन (उल्लंघन)** – एक या दोनों पैरों के माध्यम से ऊपर की ओर उछलना।
3. **चालन/चारी** – चलने की विविध दिशाएँय जैसे आगे, पीछे, दाएँ एवं बाएँ संचलन।
4. **धावन/गति-भेद** – धावन अथवा तीव्र पद–संचालन की विविध गतियाँ।
5. **अतिभंग/संयोग मुद्रा** – एक घुटने को ऊपर उठाकर दूसरे पैर के साथ संयोजन की विशिष्ट मुद्रा।

इन गतियों के माध्यम से ओडिसी नृत्य में लय, संतुलन एवं सौंदर्य का अद्वितीय समन्वय स्थापित होता है। इस प्रकार ओडिसी नृत्य की तकनीकी संरचना शास्त्रीय आधार पर निर्मित होते हुए भी अपनी विशिष्ट भंगिमाओं एवं गतियों के कारण स्वतंत्र पहचान रखती है।

ओडिसी नृत्य में भंगिमाएँ एवं शरीर-स्थिति (Postural Techniques)

ओडिसी नृत्य के प्रत्येक अभ्यासक्रम में हस्त–मुद्राओं के साथ–साथ भुजाओं, कंधों तथा पीठ की लहराती एवं नियंत्रित गतियों का विशेष महत्व होता है। ये गतियाँ नृत्य की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति को सशक्त बनाती हैं।

(1) समभंग –

यह पूर्ण संतुलित अवस्था है, जिसमें शरीर किसी भी दिशा में झुका हुआ नहीं होता। इसमें स्थिरता एवं संतुलन की प्रधानता रहती है।

(2) अभंग –

स्थिति में शरीर का हल्का झुकाव एक ओर होता है। यह मुद्रा सौम्यता एवं कोमलता का बोध कराती है।

(3) त्रिभंग –

इसे 'त्रि–गुण झुकाव' भी कहा जाता है। इसमें शरीर तीन भागों 'गर्दन, कटि एवं घुटनों' में वक्रता ग्रहण करता है। विशेषतः कटि–प्रदेश की वक्रता इस मुद्रा का प्रमुख आधार है। यह ओडिसी नृत्य की सर्वाधिक विशिष्ट एवं प्रतिनिधि मुद्रा मानी जाती है।

(4) अतिभंग –

यह अत्यधिक वक्रता युक्त मुद्रा है, जो ओडिसी नृत्य की कुछ विशिष्ट नृत्य–रचनाओं में प्रयुक्त होती है। इसमें शरीर का ऊपरी भाग वक्राकार रूप से आगे या पार्श्व की ओर झुकता है, घुटनों में अधिक मोड़ लाया जाता है तथा भुजाओं को दोनों ओर विस्तार दिया जाता है। इस प्रकार ओडिसी नृत्य में भंगिमाओं की यह संरचना न केवल शारीरिक संतुलन एवं लयात्मकता को अभिव्यक्त करती है, बल्कि सौंदर्य, कोमलता तथा आध्यात्मिक

भावभूमि को भी सशक्त रूप से अभिव्यक्त करती है।

ओडिसी नृत्य की प्रस्तुति-प्रक्रिया –

ओडिसी नृत्य का प्रदर्शन एक सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध चरणों में संपन्न किया जाता है, जो उसकी शास्त्रीय परंपरा, शब्द–संरचना तथा शैलीगत विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। इसकी प्रस्तुति के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं –

- **मंगलाचरण** – ओडिसी नृत्य का आरंभ मंगलाचरण से होता है। यह नृत्य–प्रस्तुति का प्रारंभिक एवं अनिवार्य अंग है, जिसमें नर्तकी मंच पर प्रवेश कर देवता, गुरु तथा दर्शकों को प्रणाम करती है। सामान्यतः नर्तकी त्रिभंगी मुद्रा में प्रवेश करती है। ताल के आरंभ होते ही वह मंच–भूमि को स्पर्श कर पुष्प अर्पित करती है, जिसे 'भूमि–प्रणाम' कहा जाता है। इसके उपरांत विशिष्ट मुद्राओं एवं हस्त–व्यंजनों के माध्यम से देव–स्तुति की जाती है। मंगलाचरण में प्रायः किसी देवता (विशेषतः भगवान जगन्नाथ) की वंदना प्रस्तुत की जाती है। नर्तकी गायक द्वारा गाए जा रहे स्तुति–पदों को अपने अंग–संचालन एवं भावाभिव्यक्ति के माध्यम से साकार करती है। इस प्रकार मंगलाचरण नृत्य–प्रस्तुति को आध्यात्मिक एवं मंगलमय वातावरण प्रदान करता है।
- **बटु नृत्य** – मंगलाचरण नृत्य के उपरांत बटु नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। यह शुद्ध नृत्य (नृत्त) पर आधारित अंग है, जिसमें अभिनय की अपेक्षा लय, ताल एवं तकनीकी कौशल की प्रधानता होती है। इसमें नर्तकी विभिन्न शारीरिक विन्यासों एवं मुद्राओं के माध्यम से शास्त्रीय संरचना को अभिव्यक्त करती है। बटु नृत्य में वाद्य–प्रधानता तथा मूर्तिशिल्प–सदृश स्थिर मुद्राओं का विशेष महत्व होता है।इस प्रकार ओडिसी नृत्य की प्रस्तुति क्रमशः आध्यात्मिक आरंभ से तकनीकी कौशल की ओर अग्रसर होती है, जो इसकी संरचनात्मक समृद्धि एवं शास्त्रीय परंपरा को प्रमाणित करती है।
- **पल्लवी** – पल्लवी का अर्थ है "खिलना"। इसमें राग के अनुसार नृत्य की सुंदरता धीरे–धीरे विकसित होती है। यह भी शुद्ध नृत्य होता है, जिसमें लय, ताल और सौंदर्य का विस्तार होता है।
- **अभिनय** – इस भाग में नृत्य के माध्यम से कहानी या भाव व्यक्त किए जाते हैं। प्रायः गीत गोविंद की रचनाओं पर आधारित प्रस्तुति होती है।इसमें मुखाभिनय, हाथों की मुद्राएँ और भावनाएँ प्रमुख होती हैं।
- **मोक्ष नाट** – मोक्ष नाट ओडिसी नृत्य के मार्गम् का अंतिम एवं परिपूर्णता प्रदान करने वाला चरण है। यह नृत्य–यात्रा के समापन का सूचक होता है। इसमें नर्तक/नर्तकी शुद्ध नृत्य की गतियों तथा लयात्मक संरचनाओं के माध्यम से अपनी प्रस्तुति को पूर्णता प्रदान करता/करती है। इस चरण में नृत्य की गति, लय तथा चपलता का सशक्त प्रदर्शन किया जाता है, जिसे द्रुत लय में संपन्न किया जाना इसकी विशेषता है। इसके साथ ही हस्त–मुद्राओं तथा पद–संचालन के समन्वय द्वारा ताल–संरचना का सुसंगत संयोजन प्रस्तुत किया जाता है। मोक्षम् आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं आंतरिक शांति की अनुभूति का प्रतीक माना जाता है, जहाँ नृत्य अपने चरम सौंदर्य और आत्मिक तल्लीनता को प्राप्त करता है।[3]

उपसंहार :

भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपरा में नाट्य एवं नृत्य का विशेष महत्व है। नृत्य केवल शारीरिक क्रिया न होकर भाव, विचार तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इसके अंतर्गत आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक– इन चारों अभिनयों का समन्वित प्रयोग किया जाता है। विशेष रूप से आहार्य एवं सात्विक अभिनय

नृत्य की सौंदर्यात्मकता और प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं। इसकी संरचना, शास्त्रीय आधार, मुद्राएँ, पद–संचालन तथा अभिव्यक्ति की शैली इसे अन्य नृत्य–शैलियों से भिन्न बनाती हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि ओडिसी नृत्य केवल एक नृत्य–शैली नहीं, बल्कि भारतीय कला–संस्कृति, आध्यात्मिकता और जीवन–दर्शन का सजीव प्रतिनिधित्व है। यह अतीत और वर्तमान के मध्य सेतु का कार्य करते हुए भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता को बनाए रखता है।

संदर्भ :

1. गुरु, सुरभि. (2022). ओडिसी एवं हिंदुस्तानी संगीत का तुलनात्मक अध्ययन. खैरागढ़ : इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, पृ. 11
2. के. माधवी (2018). भरतनाट्यम् नृत्य विमर्श. नवी दिल्ली : नवनीत पब्लिकेशन्स, पृ. 226.
3. आजाद, तीर्थराम. (1980). कथक दर्पण. दिल्ली : नटेश्वर कला मंदिर, पृ. 204.

madhavinatyam@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 62-66
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान प्रणाली : उद्योग में बदलाव और विकास

डॉ. बी. मल्लिका
एम.ए., पी.जी.डी.टी., पीएच.डी.,
अतिथि शिक्षिका, हिंदी विभाग,
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्व विद्यालय), गांधीग्राम, तमिलनाडु।

बीज शब्द :-
प्रस्तावना – स्वास्थ्य एवं कल्याण उद्योग – कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण – वस्त्र एवं फेशन उद्योग – निर्माण एवं वास्तुकला – प्रौद्योगिकी एवं AI – रक्षा एवं विनिर्माण – शिक्षा एवं स्किल डेवलपमेंट।

प्रस्तावना :-

भारत एक विकासशील देश है। वैश्विक शिक्षा और रोजगार में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण है। युवाओं के भविष्य उज्जवल की ध्यान में रखकर रोजगार क्षमता बढ़ाने के लिए भारतीय शिक्षा में सुधार और परिवर्तन हो रहा है। यह आवश्यक भी है। NEP 2020 ने इतिहास के प्रारंभिक और उससे पहले के कालखंडों के ज्ञान–आधारित मुद्दों को वर्तमान समय के अनुरूप ढाला है। यह कार्यक्रम लोगों की मूलभूत और ज्ञान–आधारित आवश्यकताओं को बेहतर बनाने के लिए काम करता है। आज के युवा केवल पाठ्यपुस्तकों पर आधारित शिक्षा नहीं प्राप्त करते, बल्कि अपने भविष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को चयन करते हैं। उनके द्वारा चुना गया पाठ्यक्रम हमारी प्रारंभिक शिक्षा से किस प्रकार संबंधित है और वे कौन सी शिक्षाएँ हैं जो आज के रोजगार के अवसरों को बेहतर बनाती हैं? ये शिक्षाएँ भारतीय ज्ञान प्रणाली से किस प्रकार संबंधित हैं? मेरा लेख इसी विषय पर एक संक्षिप्त चिंतन है। भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) उद्योग में आज कैसे बदलाव ला रही है। यह बहुत महत्वपूर्ण और व्यावहारिक दिशा है। आज IKS केवल अकादमिक पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उद्योगों में नवाचार, स्थिरता (Sustainability) और आत्मनिर्भरता का आधार बन रही है। मुख्य बदलाव निम्नलिखित क्षेत्रों में दिख रहे हैं :

१. स्वास्थ्य एवं कल्याण उद्योग (Healthcare & Wellness) :-

मानव जीवन में स्वास्थ्य का बहुत महत्व है। प्राचीन काल में, घरेलू वस्तुओं का उपयोग करके छोटी–मोटी स्वास्थ्य समस्याओं के उपचार खोजने का तरीका मौजूद था। वे सर्दी–जुकाम, उल्टी और पेट दर्द के लिए हल्दी, काली कॉफी, पान के पत्ते का रस आदि का इस्तेमाल करते थे। इसीलिए कोरोना वायरस महामारी के बाद इसका महत्व और भी बढ़ गया है। रोजगार के इस अवसर के चलते आयुर्वेद और सिद्ध जैसे क्षेत्रों का विकास हुआ है और युवाओं में इनसे संबंधित अध्ययन और नौकरियों में व्यापक वृद्धि हुई है। इस मूलभूत प्राचीन

भारतीय बौद्धिक शिक्षा ने न केवल रोजगार के अवसरों में सुधार किया है बल्कि व्यापक स्तर पर रोजगार के अवसर भी सृजित किए हैं। प्राचीन औषधीय उत्पादों का निर्माण करने वाले कई बहुराष्ट्रीय व्यवसायों और संबंधित अध्ययनों ने वैश्विक स्तर पर भारत में मानकों को ऊंचा कर दिया है। देसी दवाई और दादी–नानी मां–घरेलु दवाई आदि कई रूप में आजकल उपलब्ध है।

- **आयुर्वेद का वैश्वीकरण :** पारंपरिक आयुर्वेदिक ज्ञान को अब आधुनिक फार्मा कंपनियाँ प्रोसेस्ड फॉर्मूलेशन (चूर्ण, तेल, कैप्सूल, स्किनकेयर) में बदल रही हैं। पतंजलि, डाबर, हिमालया, बैक्सन आदि के साथ–साथ कई स्टार्टअप (आयुर्वेदिक न्यूट्रास्युटिकल्स) उभरे हैं।
- **योग एवं माइंडफुलनेस :** कॉर्पोरेट कल्याण कार्यक्रमों में योग, ध्यान और प्राणायाम को अनिवार्य रूप से शामिल किया जा रहा है। वेलनेस टूरिज्म, योग रिट्रीट, और मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) स्टार्टअप्स में IKS आधारित समाधान तेजी से बढ़ रहे हैं।

२. कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण (Agriculture & Food Processing) :-

भारत एक कृषि प्रधान देश है और इसके पास मसालों और सुगंधित पदार्थों से लेकर सब्जियों और अनाज तक सभी प्रकार के प्राकृतिक संपत्ति मौजूद हैं, जो सभी स्व–विकसित हैं। प्रकृति द्वारा पोषित इन संसाधनों के आधार पर, आज की पीढ़ी के लिए बुनियादी रोजगार के अवसरों को बेहतर बनाने के लिए विभिन्न कृषि पाठ्यक्रम और नौकरियां सामने आई हैं। कृषि को आधार बनाकर, मिट्टी में होने वाले बदलावों से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक उत्पादों के उत्पादन से लेकर विपणन तक, कई प्रकार की नौकरियों के सृजन में अग्रणी भूमिका निभाई जाती है। इससे भारत की अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा मिलता है और कई देशों के साथ व्यापार संबंधी संबंध स्थापित होते हैं, जिससे भारत की पुरानी बुनियादी शिक्षा प्रणाली इससे जुड़ जाती है और कई रोजगार सृजित होते हैं।

- **प्राकृतिक खेती :** जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग (ZBNF), वृक्षायुर्वेद, और गौ–आधारित खेती की पद्धतियाँ उद्योग स्तर पर अपनाई जा रही हैं। कई एग्री–टेक कंपनियाँ जैविक उत्पादों को सप्लाई चेन से जोड़ रही हैं।
- **मिलेट्स (श्रीअन्न) क्रांति :** प्राचीन भारतीय आहार में शामिल बाजरा, रागी, ज्वार आदि को अब फूड टेक कंपनियाँ सुपरफूड के रूप में पैकेज्ड फूड, बेबी फूड, और प्रीमियम उत्पादों में बदल रही हैं। यह IKS आधारित पोषण विज्ञान का उद्योगीकरण है।

३. वस्त्र एवं फैशन उद्योग (Textiles & Fashion) :-

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र और निवास की जगह हैं। समय के साथ–साथ मनुष्य अपने वस्त्रों में भी बदलाव चाहता है। कपड़े चुनने का आधुनिक तरीका और कपड़े के विविध डिजाइन आदि पर ध्यान में रखते चयन और पसंद करते हैं। वह अपने कपड़ों का चयन और डिजाइन करते समय कपड़े के प्रकार और परिधान के प्रकार को आधार बनाना भी पसंद करता है। वह कपड़ों की डिजाइनिंग से लेकर कई देशों के फैब्रिक की मार्केटिंग तक, कई क्षेत्रों में आगे बढ़ना चाहता है। फैशन टेक्नोलॉजी, फैशन डिजाइनर, ट्रेंडिंग ड्रेसेस, प्राकृतिक सामग्री (जैसे बांस की साड़ी और केले के पत्ते की साड़ी) ऐसे कपड़े भी चुनता है।

जनसंख्या के अनुसार लोगों की इच्छाओं को पूरा करने वाले उप–क्षेत्रों की संख्या में भी कई क्षेत्रों में वृद्धि हुई है, जिनमें कपड़े बनाने से लेकर उनका विज्ञापन और विपणन करने, कपड़ों की डिजाइनिंग करने तक

रोजगार के कई अवसर उत्पन्न हुए हैं और उनमें वृद्धि हुई है। जैसे आज के घरेलू स्त्री घर में बैठकर एंब्रॉयडरी, आरी वर्क, डिजाइनिंग वर्क, प्रिंटिंग वर्क आदि कई काम करते हैं। इस प्रकार के औद्योगिक कार्यों में भी वृद्धि हुई है। पश्चिमी संस्कृति के लोग भी भारतीय वस्त्रों के डिजाइनों के प्रति आकर्षित हो रहे हैं, जो यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतिबिंबित हैं। इन कार्यों को उस समय के भारतीय ज्ञान से जोड़कर आगे बढ़ाया जा रहा है।

- **हैंडलूम, हथकरघा और प्राकृतिक रंग :** प्राचीन भारतीय बुनाई तकनीक (बनारसी, कांचीपुरम, इक्कत, अजरख) और वनस्पति आधारित रंग (Indigo, Manjistha) अब लग्जरी फैशन ब्रांड्स और सतत फैशन (Sustainable Fashion) का मुख्य हिस्सा बन रहे हैं। नीति आयोग और टेक्सटाइल मंत्रालय की पहल से इसे GI टैगिंग और ग्लोबल मार्केट से जोड़ा जा रहा है।

४. निर्माण एवं वास्तुकला (Construction & Architecture) :-

भोजन और वस्त्र के बाद, मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता निवास स्थान है। वह अपने रहने के स्थान को घर या इमारत नहीं मानता, बल्कि बुनियादी जरूरतों से भरे एक सुविधा का स्थान मानता है और अधिक चाहते भी हैं। वह उस युग के वास्तुशिल्प डिजाइन को इस युग की सुविधाओं के साथ जोड़ना चाहते हैं, जो यह वर्तमान में भारत में चलन में है। वह ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के माध्यम से भी इसका पूरक मार्गदर्शन करना चाहता है। वह प्राचीन चेरा, चोला और मुगल काल राजाओं की इमारतों और बांधों को देखकर (वास्तुकला : कुतुब मीनार, लाल किला, ताजमहल और बुलंद दरवाजा जैसे मुगल राजाओं स्मारकों का निर्माण।) चकित हैं, और इतना ही नहीं, वह उनकी तुलना उस युग की पश्चिमी शैली की इमारतों से भी शामिल कर रहा हैं। भारत की प्राचीन इमारतें न केवल भारत में बल्कि इंडोनेशिया और थाईलैंड जैसे देशों में भी लोकप्रिय हैं। इसलिए, वास्तुकला से संबंधित अध्ययन और नौकरियों की संख्या में वृद्धि हुई है। वे आज के फैशन के अनुरूप वास्तुकला का डिजाइन तैयार करते हैं। वास्तुकला, सिविल इंजीनियरिंग, इंटीरियर डेकोरेटिंग, वास्तुशास्त्र विशेषज्ञ आदि क्षेत्रों में इसका विकास प्राचीन ज्ञान प्रणालियों और जीवनशैली के आधार पर विकास हो रहा है। ये गतिविधियाँ वैश्विक स्तर पर भारतीय शिक्षा को बढ़ावा देती हैं और उसे बेहतर बनाती हैं।

- **वास्तुशास्त्र और सतत निर्माण :** आधुनिक आर्किटेक्ट प्राकृतिक वेंटिलेशन, जल संचयन, और स्थानीय सामग्री (लकड़ी, पत्थर, मिट्टी) के लिए वास्तुशास्त्र और स्थापत्य वेद के सिद्धांतों को अपना रहे हैं। ग्रीन बिल्डिंग और पैसिव कूलिंग की अवधारणाएँ प्ज्ञै से प्रेरित हैं।
- **हेरिटेज संरक्षण :** प्राचीन मंदिरों, किलों और बावड़ियों के संरक्षण के लिए प्ज्ञै की इंजीनियरिंग तकनीकों (जैसे बिना मोर्टार के निर्माण, धातुकर्म) को पुनर्जीवित किया जा रहा है।

५. प्रौद्योगिकी एवं AI (Technology & AI) :-

भारत एक बहुभाषी देश है, और आज के समय में इसकी प्राचीन भाषाओं को वैश्विक स्तर पर ले जाना और उनके गौरव और मूल्यों को उजागर करना आवश्यक है। तमिल और संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं की गहरी अवधारणाओं, संस्कृति और रीति–रिवाजों के कारण इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

प्रौद्योगिकी इसकी आवश्यकताओं को पूरा करने में भूमिका निभाती है और अपने कार्यों को करने के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयर और ऐप्स का लाभ उठाने में सक्षम है। इसलिए, इससे संबंधित रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हैं। इससे संबंधित अन्य नौकरियां भी उपलब्ध हैं, जैसे सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर के माध्यम से भाषाओं

का अनुवाद करना, टाइपिंग करना आदि। ये स्कूल के बच्चों के गृहकार्य और असाइनमेंट से लेकर शोध से संबंधित छात्रों तक, हर चीज में मदद करते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को आधुनिक बनाने के प्रयास में इस संबंध में विभिन्न रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं।

- **एआई और भाषा मॉडल :** संस्कृत, तमिल, प्राकृत आदि शास्त्रीय भाषाओं के लिए OCR, नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग (NLP), और मशीन लर्निंग मॉडल विकसित किए जा रहे हैं। भारत सरकार का भारतवाणी, अमृतभारती जैसे प्लेटफॉर्म IKS साहित्य के डिजिटलीकरण में मदद कर रहे हैं।
- **प्राचीन गणित का उपयोग :** पिंगलाचार्य के छन्दःशास्त्र (बाइनरी कोड), आर्यभट्ट के त्रिकोणमिति सिद्धांत, और केरल स्कूल के कैलकुलस कोड को आधुनिक एल्गोरिदम और क्वांटम कंप्यूटिंग अनुसंधान में समाहित किया जा रहा है।

६. रक्षा एवं विनिर्माण (Defense & Manufacturing) :-

हमारे देश में पाषाण युग से लेकर ताम्र युग तक के विभिन्न प्रकार के हथियारों को वर्गीकृत किया गया है। उस काल में शाही परिवार द्वारा इस्तेमाल की गई धातुएँ और हथियार भी आज तक मजबूत और जंग रहित हैं। हमारे राजाओं की ये वस्तुएँ आज भी अपरिवर्तित हैं। आज भी इस बात पर कई अध्ययन और शोध जारी हैं कि इसे कैसे बनाया गया था? यह किन सामग्रियों से बना था? और इसमें क्या रासायनिक मिश्रण था? प्राचीन खनिज झरनों के विकास और संचालन से संबंधित कई गतिविधियों में रोजगार के अवसर भी बढ़ रहे हैं। तांबे की प्लेटों पर उकेरे गए प्राचीन प्रतीक तांबे की प्लेटों पर लिखे, इससे संबंधित नौकरियां भी उपलब्ध हैं। इसके माध्यम से, हमारी सेना को युद्धकाल के दौरान कवच, भोजन, वस्त्र और प्रतिरक्षा जैसी विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तक पहुंच का लाभ मिलता है। हमें इसे उन सूचना को समय के अनुरूप ढाल रहे हैं। हमारा भारतीय ज्ञान प्रणाली इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए मदद कर रही हैं।

- **धातु विज्ञान :** प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों की धातु विज्ञान (वज्रभूमि, दमिश्क स्टील) की तकनीकों का अध्ययन रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) और इसरो (ISRO) द्वारा उच्च शक्ति वाली मिश्रधातुएँ बनाने में किया जा रहा है।
- **स्वदेशी नवाचार :** IKS से प्रेरित कई स्टार्टअप्स (जैसे आयुर्वेद आधारित बायो–शील्ड, प्राकृतिक रेशों से बने कवच) रक्षा क्षेत्र में आपूर्ति कर रहे हैं।

७. शिक्षा एवं स्किल डेवलपमेंट (Education & Skill) :-

शिक्षा रोजगार का स्रोत होनी चाहिए। शिक्षा छात्रों के लिए उनके सपनों की नौकरी पाने की कुंजी होनी चाहिए। आज के दौर में, अधिकांश लोगों को उनकी पढ़ाई के अनुरूप शिक्षा और वेतन नहीं मिल पाता है। NEP 2020 ने IKS के माध्यम से आज की जरूरतों के अनुरूप शिक्षा में बदलाव लाया है। इसके पहले चरण में, यह स्वरोजगार और बुनियादी स्वैच्छिक शिक्षा को एक सिद्धांत के रूप में महत्व देता है। इसके माध्यम से शिक्षित युवाओं के सपने और आकांक्षाएं आसानी से साकार हो जाती हैं।

- **NEP 2020 का प्रभाव :** उच्च शिक्षा संस्थानों (IIT, IIIT, केंद्रीय विश्वविद्यालय) में IKS विभाग स्थापित किए गए हैं। ये उद्योगों के लिए ऐसे छात्र तैयार कर रहे हैं जो IKS की अवधारणाओं को आधुनिक व्यवसाय, डिजाइन, और इंजीनियरिंग में लागू कर सकें।

- **कौशल विकास :** पारंपरिक कला, बुनाई, धातुकर्म, और आयुर्वेदिक फॉर्मूलेशन के लिए डैडम् मंत्रालय और कौशल विकास मिशन के तहत प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं, जिससे स्थानीय कारीगर उद्योग से जुड़ रहे हैं।

निष्कर्ष :–

भारतीय ज्ञान प्रणाली के अंतर्गत आयुर्वेदिक कौशल, योग प्रशिक्षण, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, लोक कला, हस्तशिल्प आदि को आधुनिक कौशल प्रशिक्षण के रूप में डिजाइन किया जा रहा है, जिससे नतीजा सीधा रोजगार और आत्मनिर्भरता बढ़ती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली अब उद्योगों में सतत विकास, स्वदेशी ब्रांडिंग, प्रौद्योगिकी नवाचार, और ग्लोबल एक्सपोर्ट का माध्यम बन चुकी है। यह केवल सांस्कृतिक गौरव की वस्तु नहीं, बल्कि एक आर्थिक क्षमता (Economic Opportunity) भी है। आने वाले समय में AI, बायोटेक, फार्मा, और डिफेंस जैसे उद्योगों में IKS का एकीकरण और गहरा होगा, जिससे भारत वैश्विक स्तर पर Vishwa Guru के अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।

Reference Books :-

1. भारत में प्रौढ़ शिक्षा – जे. सी. अग्रवाल – मिलिन्द प्रकाशन – नई दिल्ली।
2. राष्ट्रीय शिक्षा निति – जे सी अग्रवाल – प्रभात प्रकाशन – नई दिल्ली।
3. Rao. N (2002) the intellectual traditions of India. An overview, New Delhi, Oxford University.
4. Pallock. S (2001) the language of the God's in the world of men Sanskrit, culture and the power in premodern India, University of California press.
5. Implementing national education policy 2020 editor : Pankaj Mittal.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 67-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संगम साहित्य और सनातन महत्व

डॉ. बी. मल्लिका
एम.ए., पी.जी.डी.टी., पीएच.डी.,
अतिथि शिक्षिका, हिंदी विभाग,
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), गांधीग्राम, तमिलनाडु।

बीज शब्द :-
संगम साहित्य का परिचय – सनातन धर्म से संबंध – प्रमुख ग्रंथ – प्रमुख विशेष्ताएँ – वैदिक देवताओं का उल्लेख – मंदिर पूजा और रीति – अन्य सनातन प्रभाव – ब्राह्मण – वैंदिक संदर्भ – एतिहासिक महत्व

प्रस्तावना :-

संगम साहित्य प्राचीनतम तमिल साहित्य का संग्रह है, जो दक्षिण भारत के संगम काल (लगभग 300 ई. पू. से 300 ई.) से संबंधित है। हालांकि कुछ स्रोत 600 वर्षों की अवधि (ई.पू. 3 तक से ई. 3 तक शताब्दी) बताते हैं। यह तमिल कवियों की तीन संगम सभाओं (मदुरै में पांड्य राजाओं के संरक्षण में) में रचित रचनाओं का कोष है। यह चेर, चोल और पांड्य राजवंशों के संरक्षण में विकसित हुआ और मुख्य रूप से प्रेम (अकम) तथा युद्ध (पुरम) विषयों पर आधारित है।

संगम साहित्य का परिचय :-

संगम साहित्य तमिल कवियों की तीन संगम सभाओं से जुड़ा है, जिनमें तोल्काप्पियम (तमिल व्याकरण), एट्टुततोगै (आठ संग्रह), पत्तुप्पाट्टु (दस गीत) और पतिनेंकिल्कणक्कु (अठारह लघु कृतियां) प्रमुख हैं। तिरुक्कुरल को 'पंचम वेद' कहा जाता है, जो नैतिकता पर आधारित है। यह साहित्य कृष्णा–तुंगभद्रा नदियों के दक्षिण क्षेत्र की संस्कृति को दर्शाता है। यह साहित्य द्रविड़ संस्कृति का प्रारंभिक रूप है, जिसमें सामाजिक–आर्थिक जीवन का चित्रण है।

दक्षिण भारतीय साहित्य, विशेष रूप से संगम साहित्य, और सनातन धर्म का संबंध अत्यंत गहरा, बहुआयामी और परस्पर समृद्ध करने वाला है। संगम साहित्य सनातन धर्म के व्यापक दायरे का एक अभिन्न और जीवंत हिस्सा है।

सनातन धर्म से संबंध :-

"सनातन" शब्द से अक्सर वैदिक–ब्राह्मणिक परंपरा (सनातन धर्म) का बोध किया जाता है, जिसका मुख्य क्षेत्र प्रारंभ में उत्तर भारत था। संगम साहित्य में इस परंपरा के स्पष्ट हस्तक्षेप या संघर्ष के बजाय, धीरे–धीरे संभावित प्रभाव और सह–अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। संगम साहित्य में संस्कृत शब्दों का प्रयोग, आर्य

रीति–रिवाज, विवाह संस्कार, रस सिद्धांत और ब्राह्मण संबंधी उल्लेख मिलते हैं, जो वैदिक प्रभाव दर्शाते हैं। शिलप्पादिकारम में त्रिगुण, अग्नि पूजा और द्विज जैसे सनातनी तत्व मौजूद हैं। यह द्रविड़ संस्कृति को सनातन धर्म की मुख्यधारा से जोड़ता है।

संगम साहित्य मुख्यतः धर्मनिरपेक्ष है, लेकिन वैदिक देवताओं जैसे मुरुगन (कार्तिकेय), मयोन (विष्णु), इंद्र (वेंदन), वरुण और कोर्रवाई (दुर्गा रूप) की पूजा का उल्लेख मिलता है। शिलप्पादिकारम में त्रिगुण अग्नि, द्विज प्रकृति और ब्राह्मण विचारों का संदर्भ है, जो सनातन परंपराओं का प्रभाव दर्शाता है। यह द्रविड़ और वैदिक संस्कृतियों के संगम को प्रतिबिंबित करता है, जहां स्थानीय देवताओं का वैदिक देवों से एकीकरण हुआ।

प्रमुख ग्रंथ :–

संगम साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है : मेलकन्नक्कू (18 प्रमुख काव्य, जैसे एत्तुतोगाई–8 संकलन, पत्तुप्पाट्टु–10 इडिल्स) और किलकन्नक्कू (18 लघु काव्य)।

तोल्काप्पियम : व्याकरण ग्रंथ, प्राचीनतम उपलब्ध रचना।

महाकाव्य : शिलप्पादिकारम, मणिमेखल, जीवक चिंतामणि।

प्रमुख विशेषताएं :–

यह साहित्य अगम (प्रेम, आंतरिक भावनाएं) और पुरम (वीरता, युद्ध, बाहरी घटनाएं) में विभाजित है। प्रकृति, कृषि, व्यापार, समाज और नैतिक मूल्यों का चित्रण प्रमुख है। कविताएं सरल भाषा में रची गईं, जो तत्कालीन राजनीति, अर्थव्यवस्था और धार्मिक जीवन को उजागर करती हैं।

- **पौराणिक देवी–देवताओं का उल्लेख :** प्राचीन कवियों ने अपनी रचनाओं में भगवान विष्णु (तिरुमाल), शिव, मुरुगन, इंद्र, बलराम और कृष्ण जैसे देवताओं का वर्णन किया है, जो भक्ति परंपरा का आधार रहे।
- **वैदिक संस्कारों का पालन :** प्रमुख तमिल राजवंशों (पांड्य, चोल, चेर) ने अश्वमेध यज्ञ जैसे वैदिक अनुष्ठान किए, जिनका वर्णन कालिदास जैसे विद्वानों ने भी किया।
- **दार्शनिक अवधारणाओं का प्रतिपादन :** साहित्य में धर्म, कर्म और मोक्ष जैसे सनातन धर्म के केंद्रीय सिद्धांतों की चर्चा मिलती है। उल्लेखनीय है कि तिरुक्कुरल जैसे ग्रंथों ने कभी–कभी स्थापित मान्यताओं से हटकर वैकल्पिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किए।
- **धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण :** यह साहित्य उस युग का दस्तावेज है, जहाँ स्थानीय देवी–देवताओं की पूजा के साथ–साथ जैन और बौद्ध धर्म के विचार भी सह–अस्तित्व में थे।
- **आध्यात्मिक आधार :** 'तोलकाप्पियम' (Tolkappiyam) जैसे प्राचीनतम ग्रंथों ने रचना की शुरुआत में ईश्वर–वंदना का नियम बनाकर साहित्य को आध्यात्मिकता से जोड़ दिया।

यह संबंध किसी एक धारा का नहीं, बल्कि सनातन परंपरा की विविधता और समावेशी प्रकृति का प्रमाण है।

- **विषय :** प्रेम, युद्ध, प्रकृति और नैतिकता पर 2,381 कविताएं।
- **धर्म :** ब्राह्मणवाद, जैन–बौद्ध प्रभाव के साथ सनातन तत्व जैसे मंदिर पूजा और बलिदान।
- **समाज :** चार वर्ण (अरसर, अंडनार, वेनिगर, वेलालर) और वस्तु–विनिमय आधारित अर्थव्यवस्था।

संगम साहित्य मुख्यतः धर्मनिरपेक्ष है, लेकिन इसमें सनातन धर्म के वैदिक तत्वों का स्पष्ट प्रभाव दिखता है, जैसे स्थानीय देवताओं का वैदिक देवताओं से संनादन। यह द्रविड़ और आर्य संस्कृतियों के मिश्रण को दर्शाता

है।

वैदिक देवताओं का उल्लेख :-

संगम ग्रंथों में मुरुगन (कार्तिकेय/शिव पुत्र), मयोन (विष्णु), वेंदन (इंद्र), वरुण और कोर्रवाई (दुर्गा) जैसे देवताओं की पूजा का वर्णन है, जो पांच भूमि प्रकारों (कुरिंजी, मुल्लई आदि) से जुड़े हैं। तोल्काप्पियम में इनका प्रथम उल्लेख मिलता है। शिलप्पादिकारम में त्रिगुण अग्नि, द्विज प्रकृति, छह कर्तव्य और ब्राह्मण विचारों का संदर्भ सनातन दर्शन को इंगित करता है।

मंदिर पूजा और रीति :-

मंदिरों में शिव, विष्णु, मुरुगन, बलदेव आदि की पूजा का उल्लेख है, जिसमें फूल, चावल, मांस चढ़ाना और नृत्य शामिल थे। पाषाण प्रतिमाओं और लिंगम के प्रमाण पुरातात्विक हैं। चेर राजा सेंगानन को शिवभक्त बताया गया है। संगम साहित्य के भगवान का पूजा पाठ का रूपरेखा भी कई ग्रंथों में देखने मिलता है। उनका पूजा पाठ में सनातन धर्म का विवरण मिलता-जुलता है।

अन्य सनातन प्रभाव :-

ब्राह्मणों का समाज में प्रभाव, वैदिक यज्ञ (पांड्य राजाओं द्वारा), सपनों-ग्रहों में विश्वास और कुलदेवता पूजा सनातन परंपराओं को प्रतिबिंबित करते हैं। जैन-बौद्ध के साथ सह-अस्तित्व में शैव-वैष्णव का उदय संगम काल की विशेषता है। दक्षिण भारतीय साहित्य (विशेष रूप से संगम साहित्य) और "सनातन" (सनातन ध र्म/वैदिक परंपरा) के बीच संबंध सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक प्रभाव.विनिमय का है, न कि एक.दूसरे की सीधी नकल। संगम साहित्य दक्षिण भारत (विशेष रूप से तमिल क्षेत्र) का प्राचीन तमिल साहित्य.संग्रह है, जिसमें कविताएँ, ग्रंथ और महाकाव्य (जैसे शिलप्पादिकारम्, मणिमेखलै, तोलकाप्पियम्, तिरुक्कुरल आदि) शामिल हैं। यह समाज, आर्थिक जीवन, राजनीति, धर्म और नैतिकता की विस्तृत जानकारी देता है।

ब्राह्मण-वैदिक संदर्भ :-

शिलप्पादिकारम् जैसे ग्रंथों में "त्रिगुण पवित्र अग्नि", "द्विज प्रकृति", "छह कर्तव्य" और ब्राह्मणों से जुड़े विचारों का उल्लेख मिलता है, जो यह दर्शाते हैं कि वैदिक-ब्राह्मणिक विचार दक्षिण में पहुँच चुके थे।

सनातन और तमिल परंपरा का सम्मिश्रण :-

तिरुक्कुरल जैसे नैतिक ग्रंथ में धर्म, अर्थ और काम के विषय वैदिक दर्शन से मिलते.जुलते हैं, लेकिन भाषा, दृष्टांत और देवता-पृष्ठभूमि पूरी तरह तमिल वातावरण की है।

संघर्ष नहीं, सह-अस्तित्व :- बौद्ध-जैन और तमिल भक्ति परंपरा (ईसाई-बौद्ध समेत) के साथ-साथ वैदिक तत्त्व भी संगम काल में "बहु-धार्मिक वातावरण" का हिस्सा बन गए, जिसे आधुनिक सनातन धर्म की जड़ों में देखा जा सकता है।

ऐतिहासिक महत्व :-

यह साहित्य प्राचीन तमिल समाज की राजनीति, अर्थव्यवस्था, कृषि और धार्मिक जीवन की झलक देता है। संगम काल में चेर, चोल, पांड्य राजवंशों का वर्णन मिलता है, जो सांस्कृतिक समृद्धि दिखाता है। संगम साहित्य नैतिक मूल्यों जैसे साहस, प्रेम और कर्तव्य पर जोर देता है तथा जैन-बौद्ध प्रभाव के साथ हिंदू तत्वों का मिश्रण प्रस्तुत करता है। यह तमिलकम के इतिहास का प्राथमिक स्रोत है।

निष्कर्ष :–

संगम साहित्य लगभग 300 ईसा पूर्व से 300 ईसवी तक की रचनाओं का संकलन है, जिसमें कविताएँ, महाकाव्य जैसे सिलप्पथिकारम और तोल्काप्पियम शामिल हैं। यह मदुरै में पांड्य राजाओं द्वारा आयोजित सभाओं से जुड़ा है और तमिल भाषा की साहित्यिक नींव रखता है। संगम साहित्य दक्षिण भारत का प्राचीनतम तमिल साहित्य है, जो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से तीसरी शताब्दी ईसवी तक के काल को दर्शाता है। पांड्य, चेर और चोल राजवंशों का इस पर प्रभाव पड़ा। संगम साहित्य दक्षिण भारत की एक स्वतंत्र तमिल साहित्यिक परंपरा है, जो वैदिक–ब्राह्मणिक परंपरा से अलग शुरू हुई। समय के साथ "सनातन" धर्म के वैदिक विचारों और तमिल साहित्य के नैतिक–धार्मिक तत्वों में पारस्परिक प्रभाव और सम्मिश्रण दिखाई देता है, जिसने भारतीय सनातन धर्म की व्यापक और बहु–संस्कृतिक पहचान बनाने में योगदान दिया। संगम साहित्य प्राचीन तमिल सभ्यता की झलक देता है, जिसमें सामाजिक संरचना (योद्धा, किसान, व्यापारी), युद्ध और कला का वर्णन है। इसने तमिल भाषा की साहित्यिक परंपरा को मजबूत आधार प्रदान किया। संगम साहित्य प्राचीन तमिल साहित्य का प्रमुख संग्रह है, जो दक्षिण भारत की संस्कृति, समाज और जीवन को दर्शाता है। यह सनातन धर्म के वैदिक तत्वों से जुड़ा होने के कारण भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

REFERENCES BOOKS :-

1. Ekkala elakkiyam – publisher Amaravathi publication
2. Moovendar varalaru – publisher Annai publication
3. Tamil digital library
4. Ellakiya kani -Dakshina Bharat Hindi Prachar sabha publication
5. The Essential santana Dharma- Dr.R. Ganesh & Hari Ravikumar
6. Sanatan Dharma – Dr. Binoy Gupta
7. Pothi.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 71-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान में भारतीय ज्ञान परम्परा : चरित्र निर्माण एवं नैतिक मूल्यों का आधार

डॉ. (श्रीमती) ममता सिंह
सहायक अध्यापिका (बेसिक शिक्षा परिषद)
कुशीनगर, (उ0 प्र0)

भारत का दर्शन भोगवादी नहीं आध्यात्मिक है, यद्यपि चार पुरूषार्थों में अर्थ और काम भी है, तथापि उसे धर्म और मोक्ष की सीमा में रखा गया। हमारे उपनिषद "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" अर्थात त्यागपूर्वक भोग का संदेश देते है। भारत में शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण तथा नैतिक मूल्यों पर बल देने का रहा है। संस्कार श्रम शिक्षा ही शिक्षा मानी गई है। प्राचीन ऋषि–मुनियों ने "विद्या ददाति विनयम" का सूत्र दिया है। श्री विष्णु पुराण में विद्या की परिभाषा दी गई है– "सा विद्या या विमुक्तये"[1] अर्थात जो राग, द्वेष, अज्ञान–अंधकार, अहंता–ममता तथा जीवन–मरण के बंधन से मुक्त कराये वही विद्या है। इन गूढ विषयों को छोड़ भी दें तो भावी पीढ़ी संस्कारवान बने यही सभी चाहते है और यही हमारे भारतीय ज्ञान परम्परा का आधार भी है, जो कि समस्त विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध परम्परा रही है। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा सिर्फ दिखावा नही है, बल्कि इसका प्रमाणिक आधार भी है, जो वेद, पुराण, रामायण, उपनिषद, भगवद गीता, महाभारत जैसे ग्रन्थों में निहित है। हमारी इस समृद्ध तथा उन्नत ज्ञान परम्परा ने हमे जीवन जीने की कला के साथ हमारे मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित किया है। और बाद में विभिन्न दार्शनिकों और शिक्षाविदों ने इसे अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र की जीवन रेखा होती है क्यों कि मनुष्य के चरित्र निर्माण तथा नैतिक मूल्यों पर शिक्षा आधारित होती है और न्याय के साथ जीवन जीने की प्रेरणा शिक्षा से ही मिलती है। न्याय के बिना कोई राष्ट्र जीवित नही रह सकता है। न्याय का अर्थ है–कर्तव्य की यह भावना जो केवल शिक्षा के द्वारा ही विकसित की जा सकती है।

प्लेटों (428 ईसा पूर्व–347 ईसा पूर्व एथेन्स) ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में और बाद में अरस्तू 384–322 ईसा पूर्व एथेन्स) ने भी इसी अवधारणा को प्रतिपादित किया। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक शिक्षित व्यक्ति का किसी आदर्श या तत्व के प्रति दृष्टिकोण पूरी तरह से भिन्न होता है। मानव पूंजी शिक्षा को मानव संसाधन क्षमता के ज्ञान और उत्पादकता बढ़ाने का साधन मानती है। यह इस विचार पर आधारित है कि शिक्षा मानव कल्याण का अभिन्न अंग है, क्योंकि जब लोग पढ़ने लिखने और सीखने में सक्षम होते है, तभी वे एक सुखी और उपयोगी जीवन जी सकते है। शिक्षा के आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा

में किया गया कोई भी निवेश तब तक निष्फल है, जब तक वह व्यवसायिक ज्ञान प्रशिक्षण और आजीविका कमाने के साधनों को बढ़ावा नही देता। यह अवधारणा चाणक्य के साहित्य में भी मिलती है, लेकिन इसमें राज्य या अन्य धर्मार्थ संस्थाओं द्वारा शिक्षा के प्रयोजन का उल्लेख नही है। ऐसा माना जाता है कि उस समय शिक्षा अधिकतम निजी संस्थानों में शुल्क आधारित थी। उपलब्ध संदर्भों के अनुसार छात्र अपनी शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था स्वयं करते थे, जैसे स्वयं चाणक्य और उसके शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को तक्षशिला में अपनी पढ़ाई के लिए धन की व्यवस्था करनी पड़ी थी।

"धनहीनो न हीनऽच धनिकः स सुनिडिचयः।"
विद्यारत्नेन ये हीनः स हीनः सर्ववस्तुशु।।[2]

चाणक्य की दृष्टि में विद्या से बढ़कर संसार में कोई दूसरा धन नहीं है। वे इसके महत्व को स्वीकारते हुए कहते है कि धन वैभव से रहित व्यक्ति निर्धन नहीं होता, अपितु जो मनुष्य बुद्धि एवं विद्या से रहित होता है वही वास्तविक निर्धन है। धन कमाने का कार्य एक मूर्ख व्यक्ति भी कर सकता, लेकिन विद्यार्जन का सौभाग्य विरले को ही प्राप्त होता है। धन से परिपूर्ण होने पर भी मुर्ख अपने लिए मान–सम्मान अर्जित नहीं कर सकता। परन्तु एक विद्वान निर्धन होने पर भी समाज में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। इसलिए धनार्जन की अपेक्षा ज्ञानार्जन का अधिक महत्व है और मनुष्य को इसके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा आज की तरह औपचारिक नही थी, बल्कि पुस्तकें लिखने की कोई परम्परा नहीं थी, लेकिन ज्ञान का प्रसार हमेशा से होता रहा है। पश्चिमी जगत में प्लेटों तथा अरस्तू के विचार तथा शिक्षाएं पारम्परिक रूप में नहीं बल्कि प्रश्न–उत्तर के रूप में प्रचलित थी। चाणक्य ने उस काल में अपने विचारों को लिखित रूप में संकलित किया, जैसा कि हमें उनकी पुस्तक अर्थशास्त्र में मिलता है। ज्ञान, पत्रों कहानी सुनाने के रूप में या पुरातन आदेशों का विदेशी आगन्तुकों द्वारा लिखे गये संस्करणों पर अंकित रूप से विखरा हुआ था। 800 ई0पू0 से 300 ई0पू0 तक राज्य के अस्तित्व के लिए शिक्षा का बहुत महत्व था। यह वह समय था जब बौद्ध धर्म और जैन धर्म सहित विभिन्न धर्म विकसित हो रहे थे। बौद्धधर्म के अन्तर्गत सरल और गैर–भेदभावपूर्ण शिक्षा के कारण भी बौद्ध धर्म को अपनाया गया था। वैदिक काल में समितियों ने राष्ट्रीय अकादमियों की तरह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। छात्रों को चार वेद, 18 पुराण, दर्शन साहित्य, धार्मिक व देशभक्ति के पाठ सहित सीखने की सलाह दी जाती थी। यह चाणक्य काल में भी जारी रहा जहां छात्र विद्वान गुरूओं के संरक्षण में अपने साथियों के साथ इन सभी विषयों को सीखते थे। उस दौरान गुरूओ द्वारा छात्रों को विशेष विषय की शिक्षा देकर उनके जीवन को सही दिशा में ले जाने और उन्हें समाज एवं राज्य के लिए उपयोगी बनाने के उद्देश्य से शिक्षा देते थे। कालानुक्रमिक रूप से 500 ईसा पूर्व के आस–पास छात्रों को समूह में पढ़ाया जाता रहा और उन्हें संघो में रखा जाता था। बौद्ध मठ या बिहार शिक्षा के महान केन्द्र बन गये और ज्ञान की खोज करने वाले लोग वहां उमड़ पड़े और भिक्षुओं के चरणों में शिक्षा प्राप्त की।

इन विवरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शिक्षा विषयवस्तु आधारित, मूल्य आधारित थी और व्यक्ति एवं देश का कल्याण इसका मुख्य केन्द्र था। अर्थशास्त्र काल (325–300 ई0पूर्व) में संघो का उल्लेख मिलता है, संघ का अर्थ है जन एकता। संध के सदस्य धार्मिक, सरल और अपने समूह के प्रति समर्पित होते थे। इन संघों ने धीरे–धीरे गणतंत्र संविधान को अपनाया और विशिष्ट शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हुए। सिकन्दर के

समय में क्षुद्रक अपने दार्शनिक ज्ञान के लिए जाने जाते थे। उन्हें बुद्धिमान तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाला कहा जाता था। इसी प्रकार कथाकार उपनाश दर्शन और वैदिक ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे।

इन सभी विषयों पर विचार करने के लिए यह समझना भी आवश्यक होगा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सदियों से किस प्रकार विकसित नहीं हो पायी। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा पर विभिन्न स्रोत उपलब्ध है जिनका उल्लेख यहां किया गया है।

वैदिक युग में महिलाओं को शिक्षा से वंचित नही किया जाता था। वे भी उपनयन संस्कार करवाती थी और सहोदृहा के रूप में अध्ययन करती थी। जैसा कि वहां (वे महिलाएं जो विवाह तक अध्ययन करती थी) और वादिनी (वे महिलाएं जिनका विवाह नही होता था) वे जीवन भर अध्ययन करती थी। हलांकि वेदों का उनका अध्ययन केवल यज्ञ या अन्य अनुष्ठानिक कार्यों के लिए आवश्यक श्लोंको तक ही सीमित था। प्राचीन भारतीय इतिहास में विभिन्न प्रकार के शिक्षकों का वर्णन मिलता है जिनमें आचार्य उपाध्याय, गुरू, शिक्षक आदि शामिल है। गुरूकुल, परिषद, संगम, आश्रम, मठ, विहार, जैसे संस्थान प्रचलित थे लेकिन ये सामान्यतः राजकीय संस्थान नहीं थे। प्रसिद्ध संस्थानों में चाणक्य के काल विद्यमान तक्षशिला और नालंदा, बल्लभी, विक्रमशीला, उज्जैन, बनारस आदि जैसे अन्य संस्थान बाद के युगों में 10वीं शताब्दी ईसवी तक यानि मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने तक अस्तित्व में रहे।

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए हम कह सकते है कि वर्तमान युग की शिक्षा पद्धति को हमें भारतीय ज्ञान परम्परा से जोड़नें की सार्थक पहल करनी होगी। क्योंकि वर्तमान की भौतिक, मानसिक, सामाजिक, पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए हमारी वैदिक संस्कृति, कला, साहित्य, शिक्षा, अत्यन्त प्रासंगिक है। यह कोई पुरातन दर्शन नही है, बल्कि वैज्ञानिक तथ्यों की सत्यता पर आधारित एक जीवन जीने की कला है। अर्थात ऐसी शिक्षा जो केवल किताबों तक सीमित ज्ञान नहीं है बल्कि यह व्यक्ति के विचार, व्यवहार और व्यक्तित्व को आकार देने वाली एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया पर आधारित हो। जब शिक्षा के साथ हमारी पुरानी संस्कृति, परम्पराएं तथा नैतिक मूल्यों को जोड़ेंगे तब हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली और भी प्रभावशाली एवं सार्थक बन पायेगी। और इसके लिए हमे पुरातन भारतीय वैदिक शिक्षा चाहे वह आध्यात्मिक, तत्वमीमांसीय, दार्शनिक, आरम्भिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक, गणितीय, ऐतिहासिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्रीय या सामाजिक किसी भी विषय पर हो हमें अपनी इन प्राचीन धर्मशास्त्रों से अपनी शिक्षा व्यवस्था को जोड़कर देखना होगा। क्योंकि हमारे प्राचीनतम धर्मशास्त्रों में आध्यात्मिक तथा इहलौकिक ज्ञान का भंण्डार है। वेद अर्थात समस्त ज्ञान का स्रोत तथा असीमित कोष जो सारी मानव जाति के विकास की जितनी भी दिशाएं संभव है उनमें सर्वागीण सम्पूर्ण तथा आवश्यक सफलता के लिए आवश्यक ज्ञान का भण्डार है। और यदि हम वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्राचीन ज्ञान परम्परा को समाहित करेंगे तो हमारी शिक्षा व्यवस्था सर्वांगीण, सम्पूर्ण तथा परिपूर्ण होना चाहिए तथा उनमें ज्ञान के किसी भी साधक की किसी भी विषय पर संभाव्य जिज्ञासा पर आवश्यक प्रकाश डालने का सामर्थ्य होना चाहिए और इसके लिए हमे अपनी भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं को अपनी शिक्षा व्यवस्था का आधार बनाना होगा। क्योंकि भारतीय संस्कृति हमे सदियों से मानवता, सम्मान, सहिष्णुता, सत्य, करूणा, और कर्तव्य जैसे मूल्यों की सीख देती है।

यदि आधुनिक शिक्षा के साथ इन सांस्कृतिक मूल्यों का समन्वय किया जाये, तो व्यक्ति केवल ज्ञानवान ही नहीं बल्कि संस्कारी, जिम्मेदार और संवेदनशील भी बनता है क्योंकि जिस वृक्ष की जड़े मजबूत होती है वही

वृक्ष अधिक फलदायी तथा दीर्घजीवी होता है। हमारी संस्कृति तथा संस्कार भी वैसी ही जड़े है। इसके द्वारा चरित्र निर्माण संस्कारी, सोंच आत्मविश्वास, एकाग्रता और श्रेष्ठ जीवन की शुरूआत संभव है। भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित शिक्षा व्यवस्था हमारी भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की गहरी समझ, संस्कारों से युक्त श्रेष्ठ चरित्र निर्माण की क्षमता, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास तथा एकाग्रता, अनुशासन और सकारात्मक सोंच में वृद्धि भी करता है, जो हमारे जीवन को सफल तथा सार्थक बनाने की दिशा की ओर हमे अग्रसर करता है। इसलिए हमारे पुरातन वैदिक ज्ञान को सर्वतोमुखी, सम्पूर्ण और आदर्श होना चाहिए। हमारे वैदिक परम्पराओं के मूल्यांकन का सार यही है कि उसे तथ्यो की दृष्टि से न देखकर उसे आदर्श दृष्टिकोण से देखना चाहिए। नाम्ना भारत में वेदों को परम्परागत अर्थ में, सम्पूर्ण ज्ञान के संग्रह के रूप में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में स्थान देना चाहिए। और जो हमारे पास बचे है उन्हें सीमित अर्थ में न लेकर उस पर विस्तृत रूप से विचार करना चाहिए। वर्तमान शिक्षा में यदि भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिता की बात करे तो उसमें वेदों और उपनिषदों का महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि वेदों को सम्पूर्ण ज्ञान के खजाने के रूप में देखा जा सकता है। कोई विश्वास करे या न करे किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैदिक जाति मात्र पशुपालकों की अर्थ अथवा अपूर्ण संस्कृति तथा सभ्यता वाली जाति नही थी। वैदिक ऋषि कोरे काल्पनिक संसार में नही रहते थे। उन्होने अपने आपको व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक ज्ञान की सभी शाखाओं में सभी स्तर पर प्रवीण सिद्ध किया है।

हालांकि वर्तमान में नई शिक्षा नीति (NEP 2020) में भारतीय ज्ञान परम्परा के आधार को लेकर कई महत्वपूर्ण तत्वों को जोड़ा गया है ताकि शिक्षा का केवल व्यवसायिकरण न हो, बल्कि यह हमारी संस्कृति तथा नौतिक मूल्यों पर आधारित हो। इसलिए इसमें वेद, उपनिषद, योग, दर्शन, आयुर्वेद आदि को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन सारे विषयों को सिर्फ सैद्धान्तिक नही बल्कि व्यवहारिक रूप से यथार्थ के धरातल पर इसके सम्पूर्ण ज्ञान संग्रह को पाठ्यक्रम में लागू कर इसे सारी मानव जाति के सम्पूर्ण विकास हेतु संचालित करे क्यों कि इस पर आधारित हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली अपने सम्पूर्ण, सर्वागीण तथा परिपूर्ण मानी जायेगी क्योंकि मूल्य आधारित भारतीय शिक्षा प्रणाली हमें सत्य, अहिंसा, नैतिकता के मार्ग पर अग्रसर करेगी जिससे सम्पूर्ण मानव समाज में नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का प्रसार हो सकेगा। हमें अपनी मातृभाषा तथा स्थानीय भाषा का सम्मान करते हुए इसे उसी भाषा में पढ़ाने पर जोर देना चाहिए। हालांकि नई शिक्षा नीति में इन बातों को जोड़ने का प्रयास किया गया है, फिर भी इसे व्यवहारिक रूप से अभी और भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि तभी जाकर वास्तविक रूप में हमारी ज्ञान परम्परा तथा ऋषि–परम्पराओं की रक्षा होगी। और इस प्रकार हम एक खुशहाल, समृद्ध भारत व विश्व निर्माण करने में सहयोग करेंगे। हमारी भारतीय परम्परा पर आधारित शिक्षा व्यवस्था ही हमारे अंदर राष्ट्रभक्ति के महाभाव का उदय करायेगी और इस उदय से आत्मबल–सम्पन्न, राष्ट्रभक्ति–सपन्न करोडो भारतीयों के ह्रदय की कृतज्ञता का भाव हमारी सबसे बड़ी ताकत बनेगी।

आज के समय में तकनीकी तथा वैज्ञानिक शिक्षा बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है, जो हमारे विकास के लिए आवश्यक है। लेकिन यदि इस प्रगति के साथ हमारी संस्कृति और परम्पराओं का संतुलन बना रहे, तो यह समाज को एक सकारात्मक दिशा देता है। यह संतुलन व्यक्ति को अपनी जड़ों से जोड़े रखता है और उसे जीवन के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार शिक्षा का महत्व तब और बढ़ जाता है जब उसमें हमारी प्राचीन संस्कृति, नैतिकता और जीवन मूल्यों का समावेश होता है। आधुनिक ज्ञान और परम्परिक संस्कारों का यह सुंदर संगम ही एक आदर्श, जागरूक और श्रेष्ठ इंसार का निर्माण करता है, जो स्वयं के साथ–साथ समाज तथा देश के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संन्दर्भ सूची :–

1. परवर श्वेता : भारत का स्वर्णिम युक–चन्द्रगुप्त मौर्यः ट्रिडेंट पब्लिशर्स दिवली 2014 : पृ0 सं0–33–34
2. नंदराम शारदा : लेख बर्टजोर्ग नीदरलैण्ड : सामाजिक नवाचार, परिवर्तन और सम्पूर्ण प्रणालीगत उपचार का एक ग्लोबोट मॉडल : स्वास्थ्य तथा चिकित्सा में वैश्विक प्रगति : खण्ड–4, अंक–1 जनवरी–2015 पृष्ठ 40–44
3. जायसवाल के0 पी0 हिन्दू पॉलिटी कॉन्स्टीट्यूशनल सर्वे आफ द हिंदू रिपब्लिक इन ग्रीक राइटर्स (अध्याय–9) चौखंबा संस्कृति प्रतिष्ठान–2005 : पृष्ठ सं0–73

   वही पृष्ठ–49

   वही पृष्ठ–54
4. क्षमाशास्त्री, आर : नारायण। वी, कौटिल्य अर्थशास्त्र–सद्गुण समुद्देशः (सिक्स फोल्ड पालिसी) चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 2010 पृ0–523, 12, 16, 19
5. इतिहास गाइड "प्राचीन और मध्यकालीन यूरोपीय इतिहास पर व्याख्यान "–व्याख्यान 8 यूनानी विचार सुकरात, प्लेटो, अरस्तू।
6. डॉ0 ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम वाई. सुन्दर रोजन, भारत 2020, नवनिर्माण को रूपरेखा पृ0सं0–293,294
7. प्रभात पेपर वैक्स "चाणक्य नीति" संस्करण 2015 पृष्ठ सं0–10,11
8. जगद्गुरू स्वामी श्री भारती कृष्णातीर्थ जी महराज "वैदिक गणित, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड–दिल्ली।
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 76-78
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा और जयशंकर प्रसाद

डॉ. कुमारी मनीषा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जगलाल चौधरी महाविद्यालय, छपरा
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

भारत देश विविधताओं से भरा हुआ है। यहां सभी प्रकार के धर्म, जाति, परंपराओं के लोग रहते हैं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में वेद, उपनिषद, भगवतगीता, शिव और विष्णु पुराण, महाभारत, रामायण आदि के बारे में अंग्रेजी, हिंदी, संस्कृत, उर्दू, तमिल, मराठी, बंगाली आदि भाषाओं में लिखा गया । हिंदी के महाकवि जयशंकर प्रसाद ने सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'कामायनी' की रचना की। अपने महान ऐतिहासिक धरोहर को आधुनिकता से जोड़कर इन्होंने रचना की। भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण 'वसुधैवकुटुंबकम्' की कल्पना है, जिसका अर्थ है पूरी पृथ्वी ही एक परिवार है। अतः विश्व कल्याण, मानव कल्याण, देश प्रेम आदि को लेकर जयशंकर प्रसाद ने अपनी ओजस्वी लेखनी से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। यूं तो जयशंकर प्रसाद शिव के भक्त थे परंतु उनकी रचनाओं में भक्ति पंचमहाभूत, आत्मा–परमात्मा, अलौकिक प्रेम आदि विषय पर गहरा चिंतन–मनन दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने ज्ञान–भक्ति और कर्म को अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अपनाया।

प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत और गीता जैसे ग्रंथों में जीवन, मृत्यु, ईश्वर, आत्मा और मोक्ष जैसे गहन विषयों पर चिंतन किया गया है। भारतीय दर्शन के 6 प्रमुख शाखाएं हैं – सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत। इसके अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म ने भी भारतीय संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया है। जयशंकर प्रसाद का दर्शन शास्त्र में अटूट विश्वास था। जयशंकर प्रसाद महाकवि तुलसीदास से प्रेरित थे जिसका उल्लेख 'कानन कुसुम' में मिलता है – "राम छोड़कर और की जिसने कभी न आस की, राम–चरित–मानस–कमल जय हो तुलसीदास की।"[1]

आयरिश कवि डब्लू. बी. इट्स ने जब यह टिप्पणी की कि "भारतीय ज्ञान परंपरा और अनुभव–परंपरा एक बुझती हुई ज्योति है।"[2] उनकी यह टिप्पणी प्रसाद जी को चुभ गई, इसी बुझती हुई ज्योति को वे अजरामर ज्योति बनाना चाहते थे। प्रसाद की कामायनी अंतिम कृति है, उसमें श्रद्धा अपने जीवन को भगवान शिव के चरणों में अर्पित करना चाहती है। प्रसाद की कामायनी में भारतीय इतिहास में मनु को आदि पुरुष माना गया है। मनु का जिक्र हमें वेदों में मिलता है। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को उनके वंशज माना गया है। मानव सृष्टि का आरंभ मनु और श्रद्धा से हुआ है। प्रसाद के काव्य उनके सरल और सादा जीवन तथा उच्च विचार शक्ति का परिचय देते

हैं। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद मानवी मन, बुद्धि, हृदय के साथ भक्ति, आत्मा और परमात्मा को मिलवाने में सफल होते हैं। कामायनी के विषय में जयशंकर प्रसाद ने कहा है – "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा, इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"[3] प्रसाद वेदों के गहन अभ्यासक और गंभीर चिंतक थे। वे भारत का प्रथम सम्राट इंद्र को मानते थे। उन्होंने श्रद्धा, लज्जा, वासना, काम, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न सर्गों में नारी के सौंदर्य, आदर और सम्मान को लेखनी में शब्दबद्ध किया है। इतना ही नहीं प्रसाद ने भक्ति भावना और श्रद्धा को भी अपनी लेखनी में स्थान दिया है। चित्राधार में 'शारदीय महापूजन' कविता में देवी को सम्मान देते हुए विश्वधारिणी विश्वपालनी जयति जय विश्वशी कहा है। चित्राधार के विनय कविता में भी भगवान को सर्वव्यापक सबसे परे, सूक्ष्म और शक्तिमान मानते हैं "जो सर्वव्यापक तऊ सबसे परे है। जो सूक्ष्म पर तऊ वसुधा धरे है।"[4] आगे भी लिखते हैं "संसार को सदय पालत जैन स्वामी। वा शक्तिमान परमेश्वर को नमामि।"[5] कानन–कुसुम संग्रह की नमस्कार कविता में प्रसाद ऊंच–नीच के भाव से परे व्यक्ति को प्रणाम करते हैं। विश्व–कल्याण, मानव–कल्याण पर जोड़ देते हैं।

प्रसाद लहर में 'अशोक की चिंता' में कलिंग में विजय प्राप्त होने पर भी सम्राट अशोक को आनंद की अनुभूति नहीं हुई है। वहां पर हुए नरसंहार को देखकर उनका मन आत्मग्लानि और पीड़ा से बढ़ गया। वे विरक्ति की ओर चल पड़े और फिर उन्होंने कभी युद्ध नहीं किया। इसका चित्रण करते हुए लिखते हैं "इन प्यासी तलवारों से इन पैनी धारों से, निर्दयता की मारो से, उन हिंसक हुंकारों से नतमस्तक आज हुआ कलिंगा।"[6]

प्रसाद 'कानन कुसुम' के धर्म नीति में लिखते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचो तत्वों को वे आनंदित रखना चाहते हैं क्योंकि इन्हीं पांच तत्वों से बनता है दिव्य देह मंदिर और प्रसाद ने कानन कुसुम में मंदिर कविता में देह को मंदिर माना है।

प्रसाद चित्राधार में शांति, करुणा, प्रेम, श्रद्धा और भक्ति आदि को सहज और सरल शब्दों में चित्रित करते हैं। लहर में प्रसाद लिखते हैं "युग युग की नव मानवता को, विस्तृत वसुधा की विभुता को, कल्याण संघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी।"[7]

भारत में विभिन्न धर्म में आस्था रखने वाले लोग बड़े सौहार्द के साथ मिलजुल कर रहते हैं। भारत विभिन्न धर्म और आस्थाओं का देश है। यहां धर्म और आस्था का जीवन के हर पहलू पर गहरा प्रभाव है। प्रसाद जी भी धर्म निरपेक्ष थे। 'पेशाला की प्रतिध्वनि' कविता में देशप्रेम और भारत के गौरवशाली अतीत का बहुत ही मार्मिक और सशक्त चित्रण किया गया है। भारत की संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सहिष्णुता और एकता। यहां विभिन्न धर्म, जाति और भाषा के लोग एक साथ मिलजुल कर रहते हैं। 'कानन कुसुम' में मस्जिद, पागोडा, गिरजा, किसको बनाया तूने, सब भक्त–भावना के छोटे–बड़े नमूने, सुंदर वित्तान कैसा आकाश भी तना है, उसका अनन्त–मंदिर, यह विश्व ही बना है। प्रसाद ने भी स्वीकारा है कि सभी धर्म की भक्ति भावना को अलग–अलग नहीं बल्कि भक्ति करने का तरीका अलग है। प्रसाद ने 'लहर' काव्य में भारत को गौरवान्वित करते हुए गौतम बुद्ध के करुणा–संदेश तथा महाराणा प्रताप के देश–प्रेम को लिखा है।

प्रसाद जी का उद्देश्य सम्यक अनुशीलन करना है, उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से भारतीय उतुंग ज्ञान परंपरा को संरक्षित और विकसित करने का प्रयास किया। कितने आक्रांताओं और विघटनकारी शक्तियों के

आक्रमणों के बावजूद अपने जीवन मूल्य जीवित रखना एवं जतन करना इनका मूल उद्देश्य रहा है। हमारे आदर्श, रीति–रिवाज, परंपरा आदि मूल विचारों को खोजना है। अपने मन पर विजय प्राप्त कर भक्ति और ज्ञान से जोड़कर अलौकिक शक्ति, परमात्मा को पाना तथा अहिंसा, शांति, परोपकार, मानव कल्याण, विश्व कल्याण, मानवता जैसे मूल्यों को आगे ले जाना और बढ़ाना ही प्रसाद का उद्देश्य रहा है। भारत के ऐतिहासिक धरोहर को संजोए रखना, देश प्रेम, एकता बनाए रखना तथा ज्ञान और भक्ति को कर्म के साथ जोड़ कर एक सुदृढ़ भारत का निर्माण करना उनकी रचनाओं के मूल में है। पाश्चात्य जीवन शैली की ओर नई पीढ़ियों का आकर्षण कम करके उन्हें भारतीय संस्कृति, कला, आचार–विचार, रहन–सहन, वेशभूषा, संस्कार आदि को भली–भांति परिचित कराने, मार्गदर्शन बनाकर सही राह दिखाने का प्रयास किया। नई पीढ़ी तामसिक वृत्ति से परे सात्विक प्रणाली का अवलंब करें और लोगों में समाज–सुधार और जन–जागृति कर सके ऐसा प्रसाद जी का उद्देश्य रहा है।

'वसुधैवकुटुंबकम्', 'अतिथि देवो भव', भगवदगीता का ज्ञान' कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' फल की चिंता मत कर अच्छा कर्म करो, गीता का सार' परिवर्तन ही संसार का नियम है, जो आज तुम्हारा है वह कल किसी और का था, कल किसी और का होगा' ऐसे जीवन मूल्यों को प्रसाद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य किया। वेद, उपनिषद, श्लोक, पुराण, धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति, साहित्य, आदर्श राम की परिकल्पना रामायण–महाभारत, विष्णु और शिव पुराण, दशावतार, योग, आयुर्वेद, जड़ी–बूटियां का उपयोग आदि के बारे में संपूर्ण जानकारी हमें उनके काव्यों में मिलती है। पौराणिक कथा के माध्यम से प्राचीन काल को आधुनिक वर्तमान को जोड़ने का सुंदर प्रयास प्रसाद की रचना में दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि प्रसाद के कामायनी को छायावाद का उपनिषद कहा जाता है। कल्पनाओं का मुक्त संचार, भावनाओं का सूक्ष्म और सटीक चित्रण, प्रलब्ध ज्ञान भंडार, सांस्कृतिक और दार्शनिक जीवन का संगम, कला सौंदर्य का अद्‌भुत मेल, ज्ञान–कर्म–भक्ति का जोड़, प्रचंड आशावाद और जीवन जीने की दृष्टि आदि गुण इनके काव्यों में मिलते हैं जो भारतीय परंपरा, संस्कृति, संस्कार तथा ज्ञान का यथोचित दर्शन कराते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, 'प्रसाद का संपूर्ण काव्य', लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, तृतीय संस्करण 2008, पु. आवृत्ति 2023, पृ .सं. 202
2. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, जयशंकर प्रसाद मानवता के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 11
3. डॉ. उदयभानु सिंह, कामायनी लोचन–1 / व्याख्या चिंता से इड़ा सर्ग तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण 2011
4. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, 'प्रसाद का संपूर्ण काव्य, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ. सं. 2008, प्रथम आवृत्ति 2023, पृ.सं. 37
5. वही, पृष्ठ संख्या 51
6. जयशंकर प्रसाद, लहर, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2023, पृष्ठ संख्या 57
7. जयशंकर प्रसाद, लहर, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2023, पृष्ठ संख्या 27

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 79-82

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में वृद्धावस्था प्रबंधन : एक बहुविषयक अध्ययन

Manuja. K. Mani
Research Scholar, PG-Research Department of Hindi
NSS Hindu College, Perunna, Changanassery, Kerala.

भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल चेतना जीवन को टुकड़ों में नहीं, बल्कि एक अखंड और सातत्यपूर्ण इकाई के रूप में देखती है। जहाँ पाश्चात्य दृष्टि वृद्धावस्था को उत्पादकता के ह्रास और आर्थिक बोझ के रूप में रेखांकित करती है, वहीं भारतीय मनीषा इसे अनुभवों के परिपक्व स्वरूप और आत्मिक उत्कर्ष के स्वर्णिम काल के रूप में स्वीकार करती है। समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण वैश्विक स्तर पर वृद्धों में अकेलापन, अवसाद और अप्रासंगिकता का बोध तेजी से बढ़ा है। ऐसे समय में संसार को एक ऐसे संधारणीय मॉडल की आवश्यकता है, जो जीवन की गुणवत्ता और उसकी सार्थकता को अक्षुण्ण रखे। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय परंपरा के दार्शनिक ,वैज्ञानिक, सामाजिक और साहित्यिक संदर्भों को आपस में जोड़ते हुए एक बहुविषयक और व्यावहारिक वृद्धावस्था प्रबंधन का मॉडल प्रस्तावित करता है, जो वैश्विक उत्थान के लिए नितांत प्रासंगिक है।

प्रस्तावना :

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जेरोन्टोलॉजी या वृद्धावस्था विज्ञान के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल शारीरिक व्याधियाँ नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अलगाव हैं। पाश्चात्य देशों में एकल परिवार और व्यक्तिवादी सोच के कारण वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन वे वहाँ संवेगात्मक रूप से रिक्त जीवन जीने को विवश हैं। इसके विपरीत, भारतीय दर्शन ने मानव जीवन को संतुलित बनाने के लिए सौ वर्ष की आयु की कल्पना करते हुए चार पुरुषार्थों और चार आश्रमों की एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक संरचना तैयार की थी, जो वृद्धों को निष्क्रिय बनाने के बजाय समाज के परामर्शदाता के रूप में स्थापित करती है। इसके साथ ही, आयुर्वेद का 'रसायन तंत्र' और योग पद्धति वृद्धों को निरोगी जीवन प्रदान करते हैं, जबकि हमारा संयुक्त पारिवारिक ढांचा उन्हें नई पीढ़ी के लिए संस्कारों के जीवंत पुस्तकालय के रूप में प्रतिष्ठा देता है। अतः यह शोध पत्र नीतिगत स्तर पर आयुर्वेद, सामुदायिक शहरी नियोजन और शिक्षण संस्थानों में वृद्धों के अनुभवों को एकीकृत करने की वकालत करता है, ताकि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव के साथ बुजुर्गों को गौरवमयी व आनंदमय जीवन दिया जा सके।

वैश्विक स्तर पर वृद्धावस्था की वर्तमान चुनौतियाँ : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जेरोन्टोलॉजी या

वृद्धावस्था विज्ञान के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल शारीरिक व्याधियाँ नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अलगाव हैं। आधुनिक समाजशास्त्र जिस आयु बढ़ना के आधारित चर्चा करता है, उसने वृद्धों को हाशिए पर धकेल दिया है। पाश्चात्य देशों में एकल परिवार और व्यक्तिवादी सोच के कारण वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन वे वहाँ संवेगात्मक रूप से रिक्त और एकाकी जीवन जीने को विवश हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी आज उम्र बढ़ना यानी सक्रिय वृद्धावस्था की वकालत कर रहा है, परंतु उसकी नीतियां मुख्य रूप से भौतिक और बुनियादी चिकित्सा सुविधाओं तक सीमित रह जाती हैं। पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक और सामाजिक जुड़ाव की भारी कमी है जो किसी वृद्ध को यह महसूस कराए कि समाज को आज भी उसकी उतनी ही आवश्यकता है। जब तक वृद्धावस्था को केवल एक समस्या या बीमारी के रूप में देखा जाता रहेगा, तब तक इसका कोई स्थायी समाधान संभव नहीं है। यहीं पर भारतीय ज्ञान परंपरा का वह दृष्टिकोण प्रासंगिक हो जाता है जो वृद्धावस्था को जीवन की संध्या नहीं, बल्कि एक नए प्रभात की तैयारी मानता है।

भारतीय दर्शन ने मानव जीवन को संतुलित और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए सौ वर्ष की आयु की कल्पना करते हुए चार पुरुषार्थों और चार आश्रमों की एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक संरचना तैयार की थी। इसमें वानप्रस्थ और संन्यास, आश्रम की व्यवस्था शामिल हुई है। वानप्रस्थ का सीधा अर्थ है– अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक सीमाओं से ऊपर उठकर समाज के कल्याण के लिए काम करना। यह व्यवस्था वृद्धों को एकांतवास या निष्क्रियता की ओर नहीं धकेलती, बल्कि उन्हें समाज के परामर्शदाता के रूप में स्थापित करती है।

भारतीय परंपरा में जिसे सेवा और स्वाध्याय कहा गया है। जब एक वृद्ध व्यक्ति निष्काम कर्म के सिद्धांत को समझकर फल की चिंता और मोह का त्याग करता है, तो वह अवसाद और अकेलेपन से स्वतः मुक्त हो जाता है। वह परिवार के भीतर सत्ता के संघर्ष से हटकर समाज को अपना संचित अनुभव सौंपने लगता है, जिससे उसका आत्मसम्मान और सामाजिक प्रासंगिकता दोनों सुरक्षित रहते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अमूर्त दार्शनिक बातें नहीं करती, बल्कि शरीर को श्धर्म का पहला साधनश मानकर उसके भौतिक स्वास्थ्य की भी चिंता करती है। आयुर्वेद के आठ प्रमुख अंगों में से एक पूरा विभाग जरा चिकित्सा के लिए समर्पित है, जिसे 'रसायन तंत्र' भी कहा जाता है। रसायन चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य शरीर की धातुओं को पुष्ट करना, रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखना और वृद्धावस्था के कारण होने वाले शारीरिक एवं मानसिक क्षय की गति को धीमा करना है।

शारीरिक शिथिलता को रोकने और मानसिक संतुलन को बनाए रखने में योगा और ध्यान की भूमिका को आज आधुनिक युग के वृद्ध स्वीकार कर रहा है। सूक्ष्म व्यायाम, प्राणायाम मस्तिष्क में कोर्टिसोल के स्तर को कम करते हैं और मेलाटोनिन एवं एंडोर्फिन जैसे आनंददायी हार्मोन्स को बढ़ाते हैं। यह वैज्ञानिक पद्धति वृद्धों को बिना किसी गंभीर साइड–इफेक्ट के एक दीर्घायु और निरोगी जीवन प्रदान करने में सक्षम है।

भारतीय समाज की सबसे बड़ी शक्ति उसकी सामूहिक और पारिवारिक चेतना रही है। हमारी परंपरा में ज्ञान के हस्तांतरण की एक अनवरत श्रृंखला चलती आ रही है। दादा–दादी या नाना–नानी केवल परिवार के वरिष्ठ सदस्य नहीं होते थे, बल्कि वे नई पीढ़ी के लिए संस्कारों, कथाओं और लोक–साहित्य के जीवंत पुस्तकालय होते थे। इस व्यवस्था में बच्चों को जहाँ जीवन की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता और नैतिक मूल्य मिलते थे, वहीं वृद्धों को एक निश्छल स्नेह और व्यस्तता मिलती थी, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए किसी अचूक

औषधि से कम नहीं थी।

आधुनिक समाज में बढ़ते अकेलेपन का समाधान भारतीय सामाजिक पद्धतियों में छुपा हुआ है। सत्संग, कीर्तन, सामुदायिक उत्सव और सामूहिक स्वाध्याय जैसी संस्थाएं केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं हैं, बल्कि ये उच्च स्तर के सामाजिक जुड़ाव के साधन हैं। जब वृद्ध समाज के अन्य लोगों के साथ बैठकर वैचारिक और आध्यात्मिक विमर्श करते हैं, तो उनके भीतर का अकेलापन, मृत्यु भय, डर समाप्त हो जाता है, और वे स्वयं को एक वृहद परिवार का हिस्सा महसूस करने लगते हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और वह सामाजिक वास्तविकताओं को सबसे अधिक संवेदनशीलता के साथ हमारे सामने रखता है। हिंदी साहित्य के इतिहास को यदि हम देखें, तो जब तक भारतीय ज्ञान परंपरा के जीवन–मूल्य समाज में गहरे धंसे हुए थे, तब तक वृद्ध समाज के शीर्ष पर मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित थे। परंतु, आधुनिकता और पाश्चात्य प्रभाव के कारण जैसे–जैसे इन मूल्यों का ह्रास हुआ, साहित्य्य में वृद्धों की स्थिति दयनीय और उपेक्षित दिखाई देने लगी।

मुंशी प्रेमचंद की अमर कहानी 'बूढ़ी काकी' कहानी दिखाती है कि जब परिवार अपने पारंपरिक नैतिक मूल्यों और 'अतिथि देवो भवः' या 'वृद्ध देवो भवः' की भावना को भूलकर केवल भौतिक लाभ–हानि की गणना करने लगता है, तो अपनी ही संपत्ति देने वाली बूढ़ी काकी जैसी बुजुर्ग महिलाएं घर की चौखट पर उपेक्षित छोड़ दी जाती हैं।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में हम देखते हैं कि कैसे आधुनिकता की अंधी दौड़ में बूढ़ी माँ को एक 'असुविधाजनक वस्तु' मानकर मेहमानों की नजरों से छिपाने का प्रयास किया जाता है।

इक्कीसवीं सदी के अनेक उपन्यासों 'ममता कालिया' के 'दौड़', 'चित्रा मुद्‌गल' जी का 'गिलीगडू', 'कृष्ण सोबती' का 'समय सरगम' ,'गोविंद मिश्र' जी का 'शाम की झिलमिल', पाँच अंगनोंवाला घर, सूरज सिंह नेगी' द्वारा रचित 'वसीयत', निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य' आदि उपन्यास वृद्धावस्था पर आधारित हैं।

साहित्य का यह आयाम हमें संदेश देता है कि यदि हमें समाज को बचाना है, तो हमें पुनः अपनी उसी ज्ञान परंपरा और संवेदनशीलता की ओर लौटना होगा, जहाँ माता–पिता और वृद्धों की सेवा को ही सबसे बड़ा तीर्थ माना गया है।

उद्देश्य :

'समग्र वैश्विक उत्थान' का स्वप्न तब तक साकार नहीं हो सकता जब तक हमारी आबादी का एक बहुत बड़ा और अनुभवी हिस्सा वृद्धजन उपेक्षित और अस्वस्थ रहेगा। भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार वृद्धावस्था जो अवस्था है जिसमें शरीर, मन, समाज और आत्माकृचारों स्तरों पर वृद्धों का कायाकल्प करने की क्षमता रखता है। यह पाश्चात्य देशों के उम्र बढ़ने और अकेलेपन का एक अत्यंत मानवीय और व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत करता है।

वर्तमान परिदृश्य में, सरकारों अपनी वृद्ध–देखभाल नीतियां केवल वृद्धावस्था पेंशन और वृद्धाश्रम के निर्माण तक सीमित नहीं रखना चाहिए। नीतिगत स्तर पर निम्नलिखित पारंपरिक पद्धतियों को जोड़ना अनिवार्य है :

- राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशनों में प्राथमिक स्तर पर आयुर्वेद की 'जरा चिकित्सा' और योगा केंद्रों को अनिवार्य

रूप से एकीकृत किया जाए।

- शहरी नियोजन में ऐसे सामुदायिक केंद्रों और समाज के सभी लोगों के लिए 'पार्कों' का निर्माण किया जाए जहाँ बच्चे, युवा और वृद्ध एक साथ समय बिता सकें, जिससे ज्ञान और स्नेह का स्वाभाविक आदान–प्रदान हो सके।
- शिक्षण संस्थानों में वृद्धों के अनुभवों का लाभ लेने के लिए परामर्शदाता और मार्गदर्शक जैसी योजनाएं शुरू की जाएं ताकि उनका संचित ज्ञान राष्ट्र निर्माण में काम आ सके।

भारत का यह प्राचीन दर्शन कि पूरा विश्व एक परिवार है यानि वसुधैव कुटुम्बकम् तभी चरितार्थ होगा जब हम अपने परिवार के मूल स्तंभों यानी अपने बुजुर्गों को उनके जीवन के अंतिम पड़ाव में गौरव, स्वास्थ्य और आनंदमय परिवेश प्रदान कर सकेंगे। यही वैश्विक उत्थान का वास्तविक और संधारणीय मार्ग है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श दृष्टि और विचार – डॉ. वंदना गोसाई।
2. वृद्धावस्था जीवन की सांध्य बेला – वृंदा सिंह।
3. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में मानव मूल्य – डॉ. ओकेन्द्र।
4. Philosophical and Sociological bases of Education – Dr. N.K. Arjunan.
5. वृद्ध महिलाओं का समाज शास्त्र – डॉ. कुमुद सिंह।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 83-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और आधुनिक राजकोषीय नीति

डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप
प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)
शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जॉजगीर।

सारांश :

कौटिल्य का अर्थशास्त्र (4थी शताब्दी ईसा पूर्व) एक व्यवहारिक ग्रंथ है। जो मजबूत, राजकोषीय नीति, कराधान, कृषि और व्यापार के माध्यम से राज्य की समृद्धि और स्थिरता पर जोर देता है। यह आधुनिक कर प्रशासन, लोकवित्त और कल्याणकारी राज्य की अवधारणाओं से मिलता–जुलता है। जहॉ राज्य सरकार का मुख्य उद्देश्य प्रजा का कल्याण है। कौटिल्य ने न्यायसंगत कराधान का समर्थन किया, कर ऐसा होना चाहिए जो नागरिकों को बोझ न लगे, यह आधुनिक ''करदान क्षमता'' के अनुरूप है। प्रगतिशील कर को प्रोत्साहन दिया। कृषि, खदानों और व्यापार से राजस्व बढ़ाने पर जोर दिया, जिसे आज करों के आधार को व्यापक बनाना कहते है। राज्य का कर्त्तव्य केवल कर लेना नहीं बल्कि अनाथों, वृद्धों और जरूरत मंदो की देखभाल करना था, जो आधुनिक सामाजिक सुरक्षा नीतियों का मूल है। कौटिल्य ने भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करने के लिए कठोर दंड और पारदर्शी प्रशासनिक तंत्र की वकालत की जो आज की सुशासन नीति है। मुद्रा स्फीति को रोकने और आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए बाजार विनियमन के उपाए बताए। पूंजी का राज्य कार्य, निर्माण कार्य, व्यापार कृषि सुधार आदि कार्यो में उत्पादन के एक साधन के रूप में बड़ा महत्व है। पड़ोसी राज्यों की शक्ति और हितो के आधार पर संबंध स्थापित करने के लिए छः रणनीतियॉ बनाई – संधि (शांति) विग्रह (युद्ध) आसन (तटस्थता) यना (तैयारी) संसार (आश्रय लेना) द्वैधिभाव (दोहरी नीति)। कौटिल्य के अनुसार – ''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है।'' उन्होने सुव्यवस्थित राज्य के लिए सप्तांग सिद्धांत – स्वामी अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र दिया जो राज्य के सात प्रमुख अंग है। कृषि, पशुपालन, वन संसाधनों के संरक्षण को महत्व दिया। व्यापारियों के लिए राज्य द्वारा संरक्षण, सड़क निर्माण और बाजार के नियमन के कड़े प्रावधान थे। श्रमिकों के कल्याण के लिए नियम बनाए, वेतन का समय पर भुगतान, काम के घंटे निर्धारित करना, जो आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है। राजनीति को धर्म से स्वतंत्र कर व्यवहारिक बनाया। अत्यंत मजबूत कुशल गुप्तचर प्रणाली की स्थापना की, जो आर्थिक गतिविधियों पर भी नजर रखती थी। कौटिल्य का मानना था कि सेना और राज्य की शक्ति (धन) कोष से उत्पन्न होती है। बाजार में वस्तुओं की कमी को रोकने और उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए राज्य द्वारा उचित मूल्य और व्यापार नियंत्रण का सुझाव दिया।

कौटिल्य के आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि वे विकास, आत्मनिर्भर और लोक कल्याण के बीच संतुलन बनाते है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए आर्थिक व राजनीतिक सिद्धांतो का व्यवहारिक मिश्रण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द – अर्थशास्त्र के 15 अधिकरण, कौटिल्य के आर्थिक विचार, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और आधुनिक राजकोषीय नीति।

अध्ययन का उद्देश्य – कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आधुनिक राजकोषीय नीति में प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि – द्वितीयक समंको पर आधारित।

कौटिल्य के अर्थशा़स्त्र का स्वरूप –

इस ग्रंथ में कुल 15 अधिकरण है, 150 अध्याय तथा 180 प्रकरण है। इसी के साथ कुल 6000 श्लोक है। पद्रन्ह अधिकरण – 1. विनयाधिकारिक, 2. अध्यक्ष प्रचार, 3. धर्मस्थीयम, 4. कण्टक शोधन, 5. योगकृत, 6. मण्डलयोनि, 7. षाड्गुण्य, 8. व्यसनाधिकरण, 9. अभियास्यत्मर्क, 10. सांग्रमिक, 11. संद्यवृत्त, 12. आबलीयस, 13. दुर्गलम्भनम्, 14. औपनिषदिक, 15. तंत्रयुक्तिः

अर्थशास्त्र का मूल आधार भूमि है। कौटिल्य ने कृषि को अर्थशास्त्र का प्रमुख भाग माना।

अर्थशास्त्र के 15 अधिकरण –

प्रथम अधिकरण में राजा की शिक्षा तथा उसके कर्त्तव्यों का निर्देशन है। दूसरे अधिकरण में राज्य का कार्यभार संभालने वाले विभिन्न अध्यक्षों एवं अधिकारियों का विस्तार से वर्णन हुआ है। तीसरे अधिकरण में कानूनों का विस्तृत विवेचन है। चौथे अधिकरण में पुलिस द्वारा धोखाधड़ी करने वालों को पकड़ने तथा समस्त छल–कपट के कार्यो का वर्णन है। पॉचवे अधिकरण में अपकारी मंत्री से राजा के बचने तथा कर विधान एवं कोष में धनसंग्रह की विधियों का विवेचन है। छठें अधिकरण में राजनीति के सात अंगो का उल्लेख है। सातवें अधिकरण में शांति, युद्ध, तटस्थता, संधि, संदेहात्मक व्यवहार आदि के कारणों का उल्लेख है। आठवें अधिकरण में शिकार, जुआ, स्त्री, शराब, आग, पानी आदि द्वारा राजा को कैसी–कैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, इन सब बातों का वर्णन है। नवें अधिकरण में युद्ध का वर्णन है। दसवें अधिकरण में युद्ध विषयक शकुन आदि का वर्णन है। ग्यारहवें अधिकरण में स्त्री द्वारा शत्रु विनाश का वर्णन है। बारहवें अधिकरण में शत्रु पर विजय प्राप्त करने की अनेक युक्तियां बताई गई है। तेरहवें अधिकरण में राजा को अपने शत्रु के नगर को जीतने के लिए किस प्रकार अपने को सर्वशक्तिशाली घोषित करना चाहिए इन सभी साधनों का उल्लेख है। चौदहवें अधिकरण में कुछ असाधारण बातों का वर्णन है। जैसे– एक व्यक्ति एक माह तक बिना भोजन किए रह सकता है। पन्द्रहवें अधिकरण में कार्य योजना का विस्तृत वर्णन है।

कौटिल्य के आर्थिक विचार –

- **करारोपण –** भूमिकर कृषि के उत्पादन का छठा भाग होना चाहिए। बाहर से आने वाले माल पर आयात कर तथा शुल्क की व्यवस्था है। नदी तथा पुल के प्रयोग, सड़कों तथा वनों के प्रयोग पर कर का आदेश है। करों का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड का नियम बताया गया है। 'उदकभाग' सिंचाई कर का नाम था। धनिकों

पर कर निर्धारण ऊंची दरों से किया जाना चाहिए।

करारोपण से राज्य को अधिक आय प्राप्त होती थी, इसको 'राजकर' कहते थे। कर की दर का निर्धारण हिन्दू धर्म के आदेशो के अनुसार किया जाता था। प्रशासन व्यवस्था में परिवर्तन से करारोपण नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कौटिल्य के अनुसार– कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो प्रजा के लिए भारस्वरूप न हो। राजा को मधुमक्खी के समान कार्य करना चाहिए जो पौधों को असुविधा पहुंचाएं बिना शहद संचय कर लेती है। कौटिल्य ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में राजस्व को प्रमुख स्थान दिया है। प्राचीन समय में राजस्व का मुख्य उद्देश्य जनता को चारो पुरूषार्थों को संपन्न करने में सहायता प्रदान करना था। कर आय के 3 भाग – (1) देश के अंदर, उत्पन्न होने वाली वस्तुओं, पर कर से प्राप्त आय, (2) राजधानी में उत्पन्न वस्तुओं पर कर से आय, (3) आयात तथा निर्यातो से प्राप्त कर आय।

करारोपण के मुख्य सिद्वांत – एक कर को वर्ष में केवल एक ही बार लगाया जाए, धनी व्यक्ति पर भुगतान करने की योग्यता के अनुसार कर लगाया जाये। मौर्यकाल में मालगुजारी राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत था।

- **श्रम** – मजदूरी वस्तु के गुण तथा मात्रा के आधार पर होनी चाहिए। छुट्टियों के दिनों में अतिरिक्त वेतन मिलना चाहिए। मजदूरी लेकर काम न करने वाले का अंगूठा काट देना चाहिए। अन्य उद्योगों में सौदे के अनुसार मजदूरी की व्यवस्था है। कौटिल्य ने वृद्धावस्था की पेंशन, पुरस्कार, आदि के विषय में लिखा है। खेतिहर मजदूर को फसल का, व्यापारी को बिक्री की राशि का, पशुपालक को उत्पन्न धन का 1/10 भाग मजदूर को देना चाहिए। मजदूरी न देने पर जुर्माना होना चाहिए।

जीवन निर्वह मजदूरी देने के पक्षधर थे। महिला श्रम के पक्षपाती थे।

- **कृषि** – राज्य के सभी व्यवसाय निम्न 3 वर्गों में विभाजित है – कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, इनमें कृषि सबसे महत्वपूर्ण है। कृषि के सुधार के लिए राजा को बेकार भूमि पर किसानों को बसाना चाहिए। शून्य निवेश – इसका अर्थ नवीन भूमि पर कृषि से है। एक गॉव में 100 से 500 तक परिवार होने चाहिए। राजा को बीज तथा बैल आदि की सहायता देनी चाहिए। समय–समय पर करों की छूट भी आवश्यक है।
- **व्यापार** – राज्य का व्यापार पर नियंत्रण आवश्यक है। इसके लिए पण्डाध्यक्ष की नियुक्ति होनी चाहिए। वह मूल्यों का नियंत्रण करता है। देशी वस्तुओं पर 5% और विदेशी वस्तुओं पर 10% लाभ की व्यवस्था है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिश्रित अर्थव्यवस्था का विधान है। विदेशी व्यापार में भी राज्य का नियंत्रण होना चाहिए।
- **मुद्रा** – इसके निर्माण के लिए टकसाले थी और विशेष अधिकारी नियुक्त होते थे। जिन्हे "लक्षणाध्यक्ष" कहते थे। चॉदी के सिक्के 1 पण, 1/2 पण, 1/4 पण तथा 1/8 पण के होते थे। इन सिक्को में 11/16 चॉदी, 4/16 ताम्बा तथा 1/16 अन्य धातु होती थी। इसके अतिरिक्त तॉबे के सिक्के जो पण के मूल्य के क्रमश 1/16, 1/82, 1/64 होते थे।
- **उद्योग** – राजकीय और व्यक्तिगत उद्योग का वर्णन है। राज्य के वस्त्र उद्योग के लिए सूत्राध्यक्ष का उल्लेख है रथाध्यक्ष रथों का निर्माण करता था। सेल के हथियार सरकारी कारखाने में बनते थे।
- **सार्वजनिक वित्त** – राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए आय में वृद्धि आवश्यक है। अतः उन्होने

सार्वजनिक आय में वृद्धि के सुझाव दिए। आयातों को नियंत्रित करने के लिए आयात कर के पक्षधर थे। करारोपण में निश्चितता और न्याय के सिद्धांतो को अपनाने पर बल दिया। व्यय की मदों के क्रम–प्रतिरक्षा, प्रशासानिक सरकारी भंडारों की सुरक्षा। बजट बनाने के संबंध में उपयोगी विचार दिए। यदि राज्य का व्यय उसकी आय से अधिक है तो न्यूनता की पूर्ति ऋण लेकर की जानी चाहिए। यहां घाटे की वित्त व्यवस्था का संकेत मिलता है।

- **सामाजिक सुरक्षा** – कौटिल्य के अर्थशास्त्र का मुख्य लक्ष्य सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना था इसलिए उसने सरकार को सुझाव दिया कि न्यायोचित वितरण व्यवस्था लागू करे। मजदूरी की दरें समानता और योग्यता के अनुसार निर्धारित करें जिससे वर्ग संघर्ष में कमी हो। लोक कल्याण कार्यो पर अधिक व्यय किया जाए।
- **कल्याणकारी राज्य** – राज्य के कार्यो का निर्धारण नैतिक आदेशों के अनुसार होता था। मजदूरी का निर्धारण न्याय के आधार पर किया जाता था। भूमिपति तथा पूंजीपति शोषण नहीं करते थे। कौटिल्य का राज्य संबंधी विचार औद्योगिक आधारशिला पर आधारित था। राज्य के कार्य संचालन के 3 निर्देशक सिद्धांत होने चाहिए। (1) राज्य को उद्योग में भाग लेना चाहिए। (2) कृषि सूत कताई, बुनाई दस्तकारी, पशुपालन को व्यक्तियों के अधिकार में छोड़ना चाहिए। (3) उत्पादन, वितरण, उपभोग संबंधी क्रियाओं का संचालन कुशलता पूर्वक हो।
- **कीमतों का नियंत्रण** – इसका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को चालाक तथा बेईमान व्यापारियों की कुरीतियों से बचाना था। व्यापारी घरेलू वस्तुओं पर अधिक से अधिक 8 प्रतिशत और विदेशी वस्तुओं पर 10 प्रतिशत लाभ ले सकते थे।

निष्कर्ष –

आर्थिक नियमों एवं उनके प्रतिपादन हेतु कौटिल्य ने अपने समय में जिन तर्को, सिद्धांतो का उल्लेख किया है उनके अधिकतर सिद्धांत आज के आधुनिक युग में भी उतने ही उपयोगी है। कौटिल्य ने धर्म, अर्थ एवं काम तीनो ही पुरूषार्थों को एक सा महत्व देते हुए समान माना है। कौटिल्य के अनुसार जो भी व्यक्ति इन तीनों में असंतुलन पैदा करता है वह अपने दुख का कारण स्वयं बनता है।

कौटिल्य ने मिश्रित अर्थव्यवस्था दी। कौटिल्य व्यवहारिक और वास्तविकतावादी थे।

संदर्भ :

From Internet :

- अर्थशास्त्र (ग्रंथ) विकिपीडिया।
- कौटिल्य अर्थशास्त्र – आचार्य चाणक्य।
- आर्थिक विचारों का इतिहास – विकिपीडिया।
- कौटिल्य का अर्थशास्त्र।
- चाणक्य अर्थशास्त्र।
- कौटिल्य के आर्थिक विचार – प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारधारा की मुख्य विशेषताएं।

पुस्तकें -

- वैश्य एम.सी. – आर्थिक विचारो का इतिहास।
- गोदारा एच.आर. – आर्थिक विचारों का इतिहास।
- सिन्हा वी.सी. – आर्थिक विचारों का इतिहास।
- त्रिपाठी रामनरेश – प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार।
- चतुर्वेदी डॉ. महेश चन्द्र, चतुर्वेदी डॉ. मिथलेश चन्द्र – आर्थिक चिन्तन का इतिहास।
- पन्त जे.सी., सेठ एम.एल. – आर्थिक विचारों का इतिहास।

Mob.No. – 9584895167

Email – kashyapmanju6@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 88-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Controlling the patterns of mind for everlasting peace From Patanjali's Yoga Sutra's view (चित्तवृत्तिनिरोध और मानसिक शान्ति)

Dr. S. Narasimhan
Asst Professor in Sanskrit
DDGD Vaishnav College, Chennai, Tamilnadu.

Introduction :

From the time immemorial, deep study research is continuously getting conducted in many parts of the world on the different layers and functions of human mind, it's positive and negative influences on individual and about the causes for the growth and downfall. Many great philosophers from East and West have found one undeniable fact after many years of study that through thinking alone we have moved forward in evolution when compared with animals.

The beauty lies here that most of the researches are performed on animals for the welfare of the human, in connection with finding medicines for diseases. But the approach of Yoga and Ayurveda on curing the illness is totally different. The Evolution theory also reveals the same fact that through thinking alone many changes and transformations, inventions and discoveries have taken

place in the growth history of human society. That is why human beings are called as **Chetanas** in Sanskrit because of this thinking capacity.

Mind and it's nature :

The word **Chetana** comes from the root word **Chit** which means consciousness which makes one to think and act with discriminative power. This power is otherwise known by the term Buddhi. On the other hand, the animals do not have this ability of discriminating between the wright and wrong or good and bad as they are always on survival mode. The above statements clearly indicate that the study on the different functions of the mind has become a great revelation of an undeniable fact.

Puropose of knowing the nature of our mind :

Studying the real nature of one's deeper and unknown factors of the mind is not as easy as many think. That is why this statement is made by a great philosopher as – **"Mind is mysterious"- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः .** An interesting example can be taken from Mahabharata story where the young Abhimanyu did not hesitate to attack his rivals in battle field when he got a change, whereas the most experienced archer Arjuna who first ordered Srikrishna to take him in chariot to the war field started lamenting more before Sri Krishna just on seeing his opponents, saying that he is not ready to fight with his enemies for avoiding sin.

By taking this as a chance, Lord Srikrishna gave his Upadesha -advice through his Gita to him and to all of us on what is mind, Karma, Bhakti, wisdom, liberation, happiness etc.,. Mind may bring any such change to anyone, if not understood and managed well. That is why many great philosophers and Yogis strive hard to protect us in every era from the wrath of our own mind, which gets programmed wrongly through the outside stimulations.

The study of the mind in Maharshi Patanjali's Yogasutra :

Even after many technological advancements, the modern society struggles with lot more conflicts, confusions etc., as there is no proper guide about how to enjoy the life with happiness by not disturbing others. A great change took place through Maharshi Patanjali's contribution through his Yoga Sutra five thousand years before.

Maharshi Patanjali is one such great Yogi of this holy land whose study on Yoga is known as Raja Yoga, which is making a direct study of the deeper mind's functions and the outcomes. Maharshi Patanjali calls the mind with the term Chitta which is known as Consciousness in the western term. His Raja Yoga for studying the nature of consciousness and it's control is quite popular here and in many other parts of the West as well and Yogic researches are made even now in different wards of the society as study for betterment of the individual and society.

All his teachings on Raja Yoga are recorded in the form of Sutras. His entire work is divided into four chapters known as Samadhi Pada, Sadhana Pada, Vibhooti Pada and Kaivalya Pada with 196 Sutras or aphorism for explaining the Raja Yoga and it's efficacy. Raja Yoga's message to society is for enjoying the real happiness with the available resources.

In the second Sutra of Samadhipada itself Maharshi Patanjali clearly brings out the idea of what is Yoga through this Sutra – योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः – **Stopping the suppressing patterns arising in consciousness is Yoga.** Further Maharshi Patanjali discusses what are known as Vrittis or different blocking patterns of the mind as– वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः" – The blocking forces are five in number which are painful and non-painful. They are प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः wright knowledge-wrong knowledge-fancy-sleep and memory. Without cleansing the mind from these five forms of blocks, one cannot enjoy real happiness. But many do not know what is really meant by happiness. Because of this, the society started depending on outside factors

through sensorial diversion.

Yoga Sutra's guidance for enjoyment of peace :

The following quote from Bhagavadgita – अशान्तस्य कुतस्सुखम् clearly expounds that there is no place for that person to enjoy peace, who is disturbed inside. Nowadays the somatic disorders are as equal as phsycial level disorders in society. This inner peace is termed in Yoga Sutra as चित्तप्रसादनम् **quitening the mind**. Every human being is striving to be happy and peaceful alone through different actions and experiences.

But without a proper understanding of what gives real peace of mind, one cannot function properly. Selfish nature may misdirect the individual in different ways. That is why scriptures often advise us through Vedas, Upanishads, Puranas and Epics that **अहिंसा परमो धर्मः, आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्** - non-**violence is important. What gives us pain should not be faced by others**. We all have to understand this message thoroughly while enjoying peace and happiness in life.

The following Yoga Sutra of the great Yogi clearly indicates about what is the real nature of peace as –मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुख-दुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम् - **By cultivating the attitude of friendliness, compassion and gladness and by remaining detatched from people who cause pleasure or pain with a balanced state of mind, one can enjoy real peace.**

Through this Sutra, For giving a solid base to the mind for enjoying peace, Maharshi Patanjali has included Yamas and Niyamas as first two limbs of Eightfold Yoga system. Without knowing, practicing and following the first two Ashtanga Yoga paths which are Yamas and Niyamas, no practioner can achieve his goal which is to enjoy inner peace. According to Yoga's message, mind has to be turned in through Pratyahara, Dharana and Dhyana for enjoying

real peace.

Causes for the disturbance of peace :

The following Raja Yoga Sutra of Maharshi Patanjali expounds the different diseases which attack at the inner equilibrium level of a human and cause unhappiness, frustration., as

व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरति-भ्रान्तिदर्शन-अलब्धभूमिकत्व-अनवस्थितत्त्वानि-चित्तविक्षेपाः तेऽन्तरायाः

1.स्त्यानम् means mental dullness, 2. संशयः- Being doubtful in everything, 3. प्रमादः- Ignoring responsibility, 4. आलस्यम्- Physical dullness, 5. अविरतिः – Lustful nature towards worldly pleasures, 6. भ्रान्तिदर्शनं- Faulty knowledge, 7. अलब्धभूमिकत्वम्- Being unable to hold the state of Sadmadhi etc., in Yoga, 8. अनवस्थितत्वम् – Failing to keep the mind engrossed in Samaadhi, all these are treated as inner diseases and they disturb the inner peace of mind which results in frustration, angry etc.,. Yoga as a practice at inner and external level helps one to come out of these diseases completely. Asanas and Pranayama practices in Yoga help at the outer level and Pratyahara and Dhyana practices help to manage the inner imbalances known as impurities which disturb us from enjoying peace.

Actions and thought decide the state of peace :

Our actions which give results like pain, pleasure, attraction, repulsion etc., get routed deeply in the inner mind Chitta from where the different levels of responses come out in our lives. Our Rishis who are known as foreseers or Yogis have found the causes for these even before thousands of years through their intense meditation. To bring us out from such chaos, they have written many great works like Yoga Sutra, Yoga Vasishta, Bhagavadgita, Viveka Chudamani etc., through which we can certainly get guided well.

Six evils and their impact in our life :

Six evils in our nature are found as opposite forces to ruin our life.

Greed ruins the root of happiness by making someone to crave for more though the needful resource is available. The other five are – lust, anger, intoxication, arrogance and jealous. At the spiritual level or material level, these six evils are common and are to be erased from our mind slowly.

Solution :

Each and every evil has its own powerful and deeper impact in our life to ruin our happiness. To eradicate them from our mind, we are supposed to strengthen the opposite quality, through which we can enjoy inner peace forever. For greed – contentment, for lust- dispassion, for anger – calmness and balanced mind, for intoxication – inner clarity, for arrogance – simplicity and for jealous – togetherness should be developed as opposite quality by which one can definitely reach the state happiness forever.

सन्दर्भसूची

- Amrita Bindupanishad – Commentary by Swami Gurubhaktananda – Web Edition, Chinmaya International Foundation, www.chinfo.org, 2019.
- Padmapuranam – Hindi version – Gita press, Gorakhpur, **ISBN-13 :** 978-8128817489, January 2007 Edition.
- Patanjala Yogasutra – Four Chapters on Freedom, Patanjali Yoga Sutras with English Commentary, by Swami Satyananda Saraswati, Yoga Publications Trust, Munger, Bihar, India, ISBN: 81-85787-18-2, 2006 Edition.
- Panchatantram – With Sanskrit and Hindi Translation by Motilal Banarsidas – New Delhi, 2022 Edition.
- Srimad Bhagavadgita – Sanskrit Text, Gitapress, Gorakhpur, ASIN : B097YCK757, January 2016 Edition.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 94-99
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'प्रवासी साहित्य में झलकती भारतीय जीवन-दर्शन' संदर्भ : 'अखबार वाला' (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)

डॉ. नर्मदा. पी
असिस्टन्ट प्रोफेसर
एन.एस.एस. कॉलेज, ओट्टापलम, केरल।

'वह अनजान आप्रवासी
देश के अंधे इतिहास में ना तो उसे देखा था
ना तो गूंगे इतिहास ने
कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें
न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसकी चित्कारों को
जिसकी इस माटी पर वही थी पहली बूंद पसीने की
जिसने चट्टानों के बीच हरियाली उगाई थी
नंगी पीठ पर सहकार बेसन की बाउचेत
बार बहा बहा कर लाल पसीना
वह पहला गिरमिटिया इस माटी का बेटा
जो मेरा भी अपना था तेरा भी अपना।'[1]

अभिमन्यु अनत द्वारा लिखित कविता की अंतिम दो पंक्तियों से पर्चा शुरू करना उचित है क्योंकि यह हर प्रवासी की व्यथा है 'where to belong' वाली बात है। प्रवास, प्रवासी और प्रवासी साहित्य अब विमर्श का विषय बनता जा रहा है। प्रवासी और भारतवंशी ऐसे दो शब्द है जिनकी व्याख्या करना आसान नहीं है। देखिए उषा राजे सक्सेना के शब्दों को– 'प्रवासी शब्द प्रवास शब्द का विशेषण है। प्रवासी एक मनोविज्ञान है एक अंतर दृष्टि है, जिसे स्वतः फार्मूलेट होने में बरसों बरस लगते हैं।"[2] अपनी आजीविका के लिए नए–नए अवसर को खोजते हुए मजबूरी से ही लोग प्रवासी होते हैं। यही नहीं इतिहास गवाह है– विदेशी गोरे मालिकों के लिए लोगों को बहकाए जाकर ले गए कितनी विडंबनात्मक स्थित है कि कई कष्टों को झेलकर अपने रक्त की पसीना बहाकर जब गिरमिटिया किसी देश की चट्टानों में हरियाली लाती है तो वहां के लोगों के लिए वह विदेशी होते हैं और भारतीयों के लिए अप्रवासी।

हिंदी में प्रकाशित कुछ प्रवासी कहानियाँ :

दिव्या माथुर – पंगा और अन्य कहानियां तुम नहीं सुधरोगी, रूना, निशान, तमन्ना। **सुदर्शन प्रियदर्शिनी**

–आचार संहिता, अखबार वाला, देशांतर, सेंध। **नैना पॉल**–किश्तों का भुगतान, वापसी, पुराना पैकेज, वह एक पल। **तेजेंद्र शर्मा**–देह की कीमत, कब्र का मुनाफा, कल फिर से आना। **सुरेंद्र शुक्ला**– दुनिया झूठी है, मंजिल के करीब। **कृष्ण बिहारी** – जड़ों से कहने, नातूर। **सुषमा बेदी**–अवसान। **स्नेहा ठाकुर**– क्षमा। **कादंबरी मेहरा** –टैटू, अर्चना पैनुली–डेरिक की तीर्थ यात्रा, वह उसे क्यों पसंद करता है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी : रचनात्मक शैली और विषय विश्लेषण :

शैली :

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की लेखन शैली आत्मकथात्मक और यथार्थपरक है। वे सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को बहुत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करती हैं। उनकी भाषा सहज और मनोवैज्ञानिक गहराई लिए होती है, जो पाठकों को भावनात्मक रूप से जोड़ती है। उनकी कहानियाँ और कविताएँ जीवन के सूक्ष्म पक्षों को प्रस्तुत करती हैं, जिसमें प्रवासी भारतीयों के अनुभव, सामाजिक संघर्ष और मानवीय संवेदनाएँ प्रमुख हैं।

विषय क्षेत्र :

उनके लेखन के मुख्य विषयों में प्रवासी भारतीयों के जीवन मूल्य, सामाजिक असमानता, पारिवारिक और व्यक्तिगत संघर्ष, महिला अनुभव, सांस्कृतिक पहचान, तथा आधुनिकता के प्रभाव शामिल हैं। वे भारतीय प्रवास जीवन की जटिलताओं और सांस्कृतिक टकरावों को अपने उपन्यासों और कविताओं में गहराई से उकेरती हैं। उनके चित्रण में मानवीय संवेदनशीलता और सामाजिक सरोकार गहराई से देखे जा सकते हैं।

प्रमुख कृतियाँ :

उनकी प्रमुख कृतियों में 'बरहा', 'शिखंडी युग', 'यह युग रावण का', 'रेत के घर', और 'जलाक' शामिल हैं, जिनमें उपन्यास, कविताएँ और कहानियाँ हैं। उनकी रचनाएँ प्रवासी भारतीयों के जीवन के अनुभवों को केंद्र में रखकर भारतीय और वैश्विक सांस्कृतिक संदर्भों से संवाद स्थापित करती हैं। सारांश में, सुदर्शन प्रियदर्शिनी की रचनात्मकता में सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना, प्रवास जीवन की जटिलताएँ और सांस्कृतिक संवेदनशीलता की विशेष झलक मिलती है, जो उन्हें हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली लेखिका बनाती हैं।

विदेशी परिवेश में सालों रहकर भी अपने मूल यानी भारतीय संस्कृति को मजबूती से पकड़ कर रहने वाली जाया नामक औरत की मानसिक व्यथा की कहानी है सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 'अखबार वाला'। अपनी अमेरिका वास के सालों बाद भी खिड़की खोलने पर चिड़ियों की चह चाहट, चूल्हे से उड़ती उपलों का गंधित धुआँ आदि के एहसास उसको बराबर होती रहती है। साहित्य रचना चाहे जिस किसी भी विधा की हो उसमें साहित्यकार की व्यक्ति परिवेश के झलक जरूर हम ढूंढ पाएंगे। कहानी के जरिए जिस तरह जाया वहां के सड़क का सूनापन, सन्नाटे का जिक्र कर रही है वह मात्र विदेशी माहौल का बदौलत नहीं बल्कि नायिका के जीवन में व्याप्त सूनेपन का भी प्रतीक है। भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन दर्शन, संस्कृति के बीच के अंतर के स्पष्ट खुलासा कहानी में आद्यंत दर्शाया गया है। पश्चिमी सभ्यता के सालों आदि हो जाने पर नायिका भी अमेरिका की बंद कमरों वाली जिंदगी से एनकेन प्रकारेण जुगाड़ कर लेती है। जहां एक ओर भारतीय संस्कृति के ममत्व भावना वहीं दूसरी ओर अमेरिकी की उपभोक्तावादी संस्कृति य जिसमें जाया ग्राहक और दुकानदार जैसे रिश्ते को स्वायत्त करके बैठी है, जिनकी उसे आदत नहीं थी। कहानी में एक स्थान पर पड़ोसी स्मिथ के प्रसंग के जरिए इसी तथ्य की

तरफ लेखिका इशारा कर रही है – "मिस स्मिथ को वह समोसे खिलाती रहे, अच्छे–अच्छे हिंदुस्तानी शादियों की वीडियो दिखाती रहे तभी तक खुश है वरना तू कौन और मैं कौन"[3]। अपने आप पर केंद्रित समाज का ऐसा चित्रण जहां पर पड़ोसी की मृत्यु की खबर तक से सभी अनजान है। प्रवासी साहित्य में लेखक खासकर उन अंतर्विरोधो को सामने लाते हैं जो दो संस्कृतियों की तुलना में उभरती है– भारत की संस्कृति के तत्वों जैसे सम्मान, परिवार, त्याग सामूहिकता का नए परिवेश में कैसे पुनर्गठन होता है। भारतीय प्रवासी अक्सर सामूहिकता, परंपरा और सामाजिक संबंधों को महत्व देते हैं जबकि पश्चिमी देशों के लोग व्यक्तिगत पसंद ना पसंद आत्मनिर्भरता और मैं की भावना को अधिक प्राथमिकता से मानते हैं। प्रवासी भारतीय वैश्विक मंच पर भी भारतीय मूल्यों को बनाए रखने की कोशिश में रहते हैं। लेकिन पश्चिम के अहं की भावना बनाम अजनबेपन से अक्सर टकराती भी रहती है।

एक दिन अचानक अपनी खिड़की में से पड़ोसी के आंगन में खड़ी फ्यूनरल वान को देखकर जाया अंदर ही अंदर बहुत सी संवेदनाओं से कुलबुला जाती है। मरने वाले से इसका नाता सिर्फ रोज सुबह बाहर पड़ी अखबार को उठाने एक साथ निकलने तक सीमित था। रोज–रोज की इस मुलाकात से जया के मन में उसके प्रति एक अपनापन भर जाना भारतीय संस्कृति का उपज है। हम भारतीय ऐसे हैं कि सबके लिए अपने मन के द्वार खुला रखते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता कि सामने वाला एशियाई हों इटालियन हो या अमेरिकी। इस देश में अपने पड़ोसी की मृत्यु पर जया का विह्वल होना स्वाभाविक है। किसी की मृत्यु हो जाने पर उसके स्वास्थ्य, मृत्यु के कारण आदि के संबंध में पूछताछ करना हमारे लिए आत्मीयता का विषय है. लेकिन पाश्चात्य संस्कृति में यह दूसरों के व्यक्तिगत मामले में दखलंदाजी है जिसको वह बिल्कुल पसंद नहीं करते। रिक जो कहानी का एक अमेरिकी पात्र है, मरने वाले के नेक्स्टडोर पड़ोसी है। वह भी अपने पड़ोस में खतीत मृत्यु से अनभिज्ञ है। जय के "आपको मालूम था?" प्रश्न पर उसके पास सिर्फ यही जवाब था "नहीं अभी अभी पता चला"[4]।

दुखी होना व्यक्तिगत मामला है और दुख बांटने जाना व्यक्तिगत मामले में हस्तक्षेप करना है। यहां पर हमारे संयुक्त परिवार की संकल्पना की अहम भूमिका है। इसी से ही हमें सुख–दुख मिलकर बांटने की सीख मिली थी। भारतीय संस्कृति में एकत्व की भावना हम देखते हैं जिसके प्राण है सहानुभूति। इसी सहानुभूति के कारण ही बिना किसी भेदभाव के दूसरों की समस्याओं से हम जुड़ जाते हैं और मिलकर उन समस्याओं के समाधान ढूंढ निकालते हैं। हमारे मूल्य सत्य त्याग अहिंसा मानवता में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत कहानी से भारतीय दर्शन और संस्कृति से जुड़ी अनेक उदाहरण की कतार लगाए जा सकते हैं– "हमारे यहां भावनाओं का स्मृतियों का रिश्तो का रिवाजों का जैसे अंधड़ फूट पड़ता है। अपनी पूरी उद्दाम झलाङगों और छपाकों के साथ दहाड़ते समुद्र की बेसुध–पागल ज्वार भाटा से बेचैन लहरों सरीखा जिससे गली–मोहल्ला, घर–मकान व्यक्ति, अपने–पराए एक बार सभी डूब जाते हैं...।"[4] इससे रिश्तो की सार्वभौमिकता की बात उभरकर आ रही है। सभी के दुख में पूरी तरह सहभागी होने की आशा को हम प्रकट करते हैं। हमें सीख मिली है कि किसी के दुख में शामिल होने के लिए उन्हें जानना जरूरी नहीं है। इसे स्पष्ट करने के लिए लेखिका ने एक प्रसंग जोड़ी है 'जिस में 'जाया के के ससुर किसी अनजान की मृत्यु की खबर सुनकर उसके घर पहुंचता है और भूखे प्यासे तीन–चार घंटे बाद लौटते हैं'।'[5]

प्रियदर्शिनी ने कहानी में बहुत सूझ–बूझ के साथ ऐसे प्रतीकों के इस्तेमाल किए हैं जिनसे पाश्चात्य

सभ्यता व जीवन की कृत्रिमिता पूर्ण रूप से खुलकर खड़ा हो जाता है। 'यहां ताबूत गांव की तरह हुए साफ सुधरे घर, एक सन्नाटा में लिपटी हुई इमारतें जैसे धीरे–धीरे सुबकती रही हो बे आवाज।"[6] और 'बंद कमरों में बंद जिंदगी'[7] आदि ऐसे कुछ प्रतीक है जिससे यही सामने आता है कि जिस तरह उनके कमरे के दरवाजे बंद पड़े हैं उसी तरह उनके दिल के दरवाजे पर बंद है।

मरने वाले के प्रति आत्मीयता से जाया का पेश आना, उसकी बीमारी के संबंध में पूछताछ करना 'रिक' को अजीब सा लगता है और कुछ इस तरह से वह जया को दिखता है कि गांव की उज्जड गवार औरत हो। देखिए यहां पर हम सभ्यता को कैसे परिभाषित करें हम तो सभ्यता को मनुष्यता से जोड़कर देखते हैं किसी के साथ तादात्म्य या एकत्व की अनुभूति को आचार्य प्रसाद द्विवेदी (जो भारतीय संस्कृति के मनीष जी है) ने मनुष्यता से जोड़ दिया था। पर पाश्चात्य की दखलंदाजीवाली भावना उनके एक कृत्रिम आडंबर में लिप्त सभ्यता का प्रतीक है जिसमें कभी सामाजिकता का अभाव है और यहां पर कभी–कभी तो लगता है मनुष्य सामाजिक जीव तक नहीं। किसी आंगन में फ्यूनरल वैन को देखकर 'कुत्ते तक के ना भौंकने' की ओर की इशारा इस कृत्रिम सभ्यता पर की गई करारी व्यंग्य है।

आईए, अब हम थोड़ी सी चर्चा कहानी में निहित भारतीय आध्यात्मिकता पर करें, क्योंकि एक स्थान पर ऐसा चित्रण है जहां पर मृत व्यक्ति को बिना किसी संगत के जाना पड़ रहा है। न बेटे ने कंधा दिया ना ही किसी ने आंसू बहाई। अनजान होकर भी वह जय के मन में एक मानवीय आद्रता छोड़ जाता है। जया इस बात को पचा नहीं पा रही थी कि "कोई दुनिया छोड़कर चला जाए और कोई उसके लिए दो आंसू न बहाए"।[8] पाश्चात्य सभ्यता में देखिए किसी के मौत पर आंसू भी किसी विशेष हिसाब से निकलते हैं। जाया की सोच "कौन सी दर्शनिकता को ढोकर चलना जीव के प्रति सच्चाई है"[9] बिल्कुल जायज है, और सार्वजनिक समस्या है। हम सदियों से जिस दर्शनिकता–आध्यात्मिकता को आत्मसात किए हैं वह कुछ इस तरह है।

> **"नैनम छिंदन्ति शासत्राणी**
> **नैनम दहती पावक**
> **न चौवं क्लेदयन आपो**
> **न शोषयति मारूतः।"**[10]

आत्मा से संबंधित प्रस्तुत श्लोक का दो तरह से व्याख्या करने की कोशिश करेंगे। एक–आत्मा की अमरत्व की व्याख्या और दूसरी है आत्मा की ईश्वर तत्व की। दूसरों के प्रति स्नेह या राग कैसे उत्पन्न होते है? सब जीव में निहित आत्मा तत्व ईस्वार है। इसी जानकारी से प्रत्ये में ममत्व की भावना विकसित होती है। भारतीय दर्शनिकता मर्म भी इसी तथ्य पर है। हमारे जो 9 दर्शन है इस में 6 (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा) ईश्वर की उपस्थिति को मानते ही जिसे संस्कृत में आस्तिकम् कहते है, और बाकी तीन (जैन, चार्वाक, बौद्ध) जो है वह नास्तिक। ये आस्तिक और नास्तिक अंततः परम सत्य की सत्ता को खोजते है। आस्तिक जो है वे आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान प्रज्ञा, अदि संज्ञा से उस परम सत्य को अभिहित करते है–जैसे–अयं आत्मा ब्रह्मा, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्वमसी। तो हमारे लिए ईश्वर आत्मा तत्व है, लेकिन पाश्चात्य में ईश्वर का अस्तित्व अपने पृथक है, यानि बाहर उनकी उपस्थिति है। जो भी हो भारतीय इस दर्शन से पृथक नहीं हो पाते। यह आत्म तत्व अग्नि से अस्त्र–शस्त्र से छिन्न होने वाला नहीं, वह ईश्वर स्वरूप है। सभी से ममता से पेश आने की बात हमारे

जीवन दर्शन में लीन हो गया है। स्नेह की जो कीमत है वही सबसे महत्वपूर्ण है। हरि नाम कीर्तन में अहं की चिंता न होने की बात कही है :–

"आनंद चिन्मय हर गोपिका रमन।"[11]

अहं की भावना का जागृत होना मतलब विनाश के कगार की तरफ बढ़ना और अगर अहं की भावना जागृत होती भी है तो वह अखंड स्वरूप अहं होना चाहिए। तभी यह स्नेह सार्वभौमिक हो जाएगा तभी हम संकल्पना कर पाएंगे –

"सर्वे भवंतु सुखिनः।
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मां कश्चिद्दुःख भाग्भवेत्।"[12]

जाया के माध्यम से लेखिका ऐसा क्यों कह रही है कि "हमारे सदियों से आत्मसात की हुई दर्शनिकता, आध्यात्मिकता "नैनम छिंदन्ति शासत्राणी नैनम दहती पावक' धरी की धरी रह जाती है"?[13] क्योंकि आए दिन भारतीय भी हमारे आध्यात्मिकता की मर्म को समझ नहीं पा रहे हैं या समझने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। कभी–कभी हम भी सुविधानुसार भूल जाते हैं कि स्नेह का अखंड स्वरूप ही ईश्वर है, वही स्नेहा ज्ञान है। अपने आप को ढूंढने की यानि आत्मा तत्व को खोजने की प्रवृत्ति ही वस्तुतः ज्ञान है। क्या इसी आत्मज्ञान की खोज में ही भारत के मनीषियो, आध्यात्मिक गुरुओं, जैसे आदिशंकराचार्य ने आध्यात्मिक अन्वेषण की अलौकिक याताएँ की, जो मानव जीवन के सार को उद्‌घाटित करने वाली अमूल्य धरोहर है। अपने आपको ढूँढने की यानि आत्मा तत्व को खोजने की प्रवृत्ति यही वस्तुतः ज्ञान है, जिसे प्रेमतत्व की संज्ञा दी जा सकती। प्रसिद्ध मलयालम कवि कुमारण आशन ने लिखा है –

'स्नेहमानखिल सारामूषिइल
स्नेहसारमिह सत्यमेकमाम्
मोहनम् भुवनसंगमिङतिल
स्नेहमूलममले, वेडिन्जु न्यान।'[14]

भक्ति का कई रूप है चाहे– वह दया की हो करुणा का या प्रेम का। सब उस परमात्मा का अन्यान्य रूप है। भगवत गीता (जिसे प्रज्ञानत्रय के अंतर्गत रखा गया है) के सांख्य योग में आत्मतत्व पर प्रकाश डाला गया है। इस आत्मतत्व को समझाने की कोशिश कहानी के आद्यंत व्याप्त है। आत्मा जो अमर है उसके मर्म को समझना सबके बस की बात नहीं है। हमारे दर्शन, संस्कृति सभी मनुष्य के समचित्त होने, एकाग्र होने और स्वार्थ से मुक्त होने की बात पर जोर देते हैं। जब तक प्रेम तत्व की सीख नहीं मिलती तब तक मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए ही **"हमारी मुक्ति न होने"**[15] वाली बात लेखिका को तड़पाती है हमेशा पार्थक्य की, स्वार्थ की धुरी पर घूमने वाली संस्कृति जीवन को कोरा जीवन समझ कर जीने की पाठ ही सिखाएगी ना! लेखिका की चिंता है– "जहां जीवन को केवल जीवन समझ कर जिया जाता है वह भी अब पहले अपने लिए केवल अपने लिए"[16]। पाश्चात्य सभ्यता मैटेरियलिस्टिक है। भौतिक सुख से संपन्न जिंदगी वहां के लोगों के लिए वरेण्य है। बाकी सब मिथ्या। हमारे दर्शन संस्कृति ही नहीं साहित्य तक हमें सिखा रही है सामाजिक चिंता के अभाव में जीवन सार्थक

नहीं हो सकती, और इस जीवन–दर्शन में भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता कूट–कूट कर भरी हुई है।

केवल लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी ही नहीं समस्त प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं में भारतीयता गूंजती है। प्रवास के जीवन को भारतीय होने के नजरिए वे आँकती हैं। अपनी प्रवासी जिंदगी में जहां एक तरफ उन्हें वहां के तौर–तरीकों, कानून और उनकी जिम्मेदारियों को निभाने पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर मन–मस्तिष्क से पूरा भारतीय होने की गरिमा को वे बांट रही हैं। इन दुविधाओं से गुजर रही अपनी दशा और पीड़ा को ही प्रवासी साहित्यकार अपने साहित्य के जरिए व्याख्यान करते हैं। प्रवासी साहित्यकार गिरमिटिया साहित्यकार कहे जाने वाली स्थिति का बोझ और देश की सोंधी महक, माटी की चाह को अपने धड़कन में समा के जी रहे इन साहित्यकारों से क्या हम न्याय कर पा रहे हैं इनको खेमों में कैद करना गलत बात नहीं? और क्या हमें अब भी भारत के सम्पन्न परंपरा, आध्यात्मिकता और दार्शनिक सिद्धांतों को नजरंदास कर के पाश्चात्य संस्कृति के पीछे भागदौड़ करना चाहिए? ये ऐसे कुछ सवाल है जिस पर विचार करना आने वाले कल के लिए प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गगनानचल–वर्ष 40 अंक 1–2 जनवरी–अप्रैल –2017
2. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 1
3. ऊषा राजे सक्सेना / प्रवास में /Page No:14
4. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 5
5. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 2
6. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 3
7. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 3
8. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 7
9. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 4
10. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No : 4
11. भागवत गीत–अध्याय 2 सांख्य योग, श्लोक 23
12. https:/en.wikipediaorg>Harinaama keerthanam-ezhuthachhan
13. Sarve Bhavantu Sukhinaa : is a shanti mantra, a slightly altered version of the full sloka can be foubd in puranic texts like Garudapuraana (2.35.51) and Bhavishya purana (3.2.35.14)
14. http:/gadyakosh.org/gk / सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला / Page No :2
15. कुमारनाशान : poem / नलिनी
16. http:/gadyakosh.org/gk/सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला/Page No : 4
17. http:/gadyakosh.org/gk/सुदर्शन प्रियदर्शिनी / अखबारवाला/Page No : 5

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 100-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

योग और चित्त वृत्ति : चेतना से न्यूरॉन तक की यात्रा

डॉ. नेहा प्रधान
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास
कॅरियर पाइंट यूनिवर्सिटी कोटा, राजस्थान।

मानव मस्तिष्क एक अत्यंत जटिल एवं गतिशील तंत्र है, जिसकी गतिविधियाँ विभिन्न प्रकार की मस्तिष्क तरंगों (Brain Waves) के रूप में व्यक्त होती हैं। ये तरंगें 'जैसे अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा' हमारी मानसिक अवस्था, एकाग्रता, भावनात्मक संतुलन तथा चेतना के स्तर को नियंत्रित करती हैं। आधुनिक विज्ञान, विशेष रूप से न्यूरोसाइंस, यह स्वीकार करता है कि इन मस्तिष्कीय तरंगों में परिवर्तन हमारे व्यवहार और स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है। प्राचीन भारतीय परंपरा में योग और ध्यान को मन एवं चेतना के परिष्कार का प्रभावी साधन माना गया है। योग के विभिन्न अंग, विशेषकर ध्यान (Meditation), मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को संतुलित करते हुए शांति, एकाग्रता और मानसिक स्पष्टता को बढ़ाते हैं। हाल के वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि नियमित ध्यान अभ्यास मस्तिष्क की तरंगों में सकारात्मक परिवर्तन लाता है— जैसे अल्फा और थीटा तरंगों की वृद्धि, जो विश्राम और गहन एकाग्रता की स्थिति को दर्शाती हैं। इस प्रकार, योग और न्यूरोसाइंस के बीच एक गहरा संबंध उभरकर सामने आता है, जहाँ प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान एक–दूसरे की पुष्टि करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी अंतर्संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास है, जिसमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि ध्यान कैसे मस्तिष्क तरंगों को प्रभावित कर मानसिक स्वास्थ्य और समग्र कल्याण को सुदृढ़ करता है। यह अध्ययन योग एवं ध्यान के मस्तिष्क तरंगों पर प्रभाव को समग्र रूप से समझने का प्रयास करता है। मानव मस्तिष्क विभिन्न प्रकार की तरंगों 'अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा' के माध्यम से अपनी गतिविधियाँ व्यक्त करता है, जिनमें प्रत्येक तरंग की विशिष्ट भूमिका होती है। बीटा तरंगें सामान्य जागरूकता, चिंतन और समस्या–समाधान से जुड़ी होती हैं, जबकि अल्फा तरंगें मानसिक शांति, विश्राम और संतुलन की अवस्था को दर्शाती हैं। थीटा तरंगें गहन ध्यान, रचनात्मकता और अवचेतन मन की सक्रियता से संबंधित होती हैं, वहीं डेल्टा तरंगें गहरी नींद और पूर्ण विश्राम की स्थिति को प्रकट करती हैं। योग एवं ध्यान के नियमित अभ्यास से इन मस्तिष्क तरंगों में संतुलन स्थापित होता है, जिससे बीटा तरंगों की अत्यधिक सक्रियता (जो तनाव और चिंता का कारण बनती है) में कमी आती है और अल्फा एवं थीटा तरंगों में वृद्धि होती है, जो मानसिक शांति और एकाग्रता को बढ़ाती हैं। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार, तनाव में कमी, भावनात्मक स्थिरता तथा स्मरण शक्ति और ध्यान क्षमता में वृद्धि देखी जाती है। इस प्रकार, यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि योग और ध्यान न केवल आध्यात्मिक साधन हैं, बल्कि आधुनिक न्यूरोसाइंस के दृष्टिकोण से भी

मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले प्रभावी वैज्ञानिक उपाय हैं, जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण करते हैं।

ध्यान करने वाले और न करने वाले व्यक्तियों की तुलना :

ध्यान (Meditation) का प्रभाव समझने के लिए प्रायः दो समूह बनाए जाते हैं– (i) नियमित ध्यान करने वाले व्यक्ति (Meditators) और (ii) ध्यान न करने वाले व्यक्ति (Non-meditators)। इन दोनों समूहों के बीच तुलना करने से स्पष्ट होता है कि ध्यान मस्तिष्क और व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करता है। ध्यान करने वाले व्यक्तियों में सामान्यतः मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और बेहतर एकाग्रता देखने को मिलती है। उनका मस्तिष्क तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी अपेक्षाकृत स्थिर प्रतिक्रिया देता है। शोधों में यह पाया गया है कि ध्यान करने वालों में तनाव हार्मोन (जैसे cortisol) का स्तर कम होता है, जिससे चिंता और अवसाद की संभावना घटती है। इसके विपरीत, ध्यान न करने वाले व्यक्तियों में तनाव, चिड़चिड़ापन, और ध्यान भंग होने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

संज्ञानात्मक (Cognitive) दृष्टि से भी अंतर स्पष्ट होता है। ध्यान करने वाले व्यक्तियों की स्मरण शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता और समस्या–समाधान कौशल बेहतर होते हैं। उनके मस्तिष्क में न्यूरोप्लास्टिसिटी अधिक सक्रिय होती है, जिससे वे नई परिस्थितियों के अनुकूल जल्दी ढल पाते हैं। इसके विपरीत, ध्यान न करने वाले व्यक्तियों में मानसिक थकान और एकाग्रता की कमी अधिक देखी जाती है। व्यवहारिक स्तर पर, ध्यान करने वाले व्यक्ति अधिक सकारात्मक, सहनशील और आत्म–नियंत्रित होते हैं, जबकि गैर–ध्यान करने वालों में प्रतिक्रियात्मक (reactive) व्यवहार अधिक होता है। इस प्रकार, यह तुलना स्पष्ट करती है कि ध्यान केवल मानसिक शांति का साधन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व और मस्तिष्कीय कार्यप्रणाली को विकसित करने का प्रभावी माध्यम है।

EEG तकनीक (Electroencephalogram) द्वारा मस्तिष्क तरंगों का मापन :

EEG (Electroencephalogram) एक वैज्ञानिक तकनीक है, जिसका उपयोग मस्तिष्क की विद्युत गतिविधियों (Electrical Activity) को मापने के लिए किया जाता है। इसमें सिर की त्वचा (Scalp) पर छोटे–छोटे इलेक्ट्रोड लगाए जाते हैं, जो मस्तिष्क के न्यूरॉन्स द्वारा उत्पन्न विद्युत संकेतों को रिकॉर्ड करते हैं। यह तकनीक पूरी तरह सुरक्षित, गैर–आक्रामक (Non-invasive) और अत्यंत संवेदनशील होती है। EEG के माध्यम से मस्तिष्क की विभिन्न तरंगों 'बीटा, अल्फा, थीटा और डेल्टा' को मापा जाता है। जब व्यक्ति सामान्य जागरूक अवस्था में होता है, तब बीटा तरंगें अधिक सक्रिय होती हैं। ध्यान या विश्राम की स्थिति में अल्फा तरंगों की वृद्धि होती है, जो मानसिक शांति का संकेत देती हैं। गहरे ध्यान या रचनात्मक अवस्था में थीटा तरंगें प्रमुख हो जाती हैं, जबकि गहरी नींद में डेल्टा तरंगें दिखाई देती हैं।

ध्यान के दौरान EEG अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नियमित ध्यान करने वाले व्यक्तियों में अल्फा और थीटा तरंगों की तीव्रता एवं स्थिरता अधिक होती है, जो गहन विश्राम और आंतरिक जागरूकता को दर्शाती है। इसके साथ ही, मस्तिष्क के विभिन्न भागों के बीच बेहतर समन्वय (Brain Connectivity) भी देखा जाता है। EEG तकनीक की विशेषता यह है कि यह मस्तिष्क की गतिविधियों को रियल–टाइम (Real-time) में रिकॉर्ड करती है, जिससे ध्यान के प्रभावों को तुरंत और सटीक रूप से समझा जा सकता है। शोध में EEG डेटा का विश्लेषण करके यह जाना जाता है कि ध्यान अभ्यास मस्तिष्क के किन क्षेत्रों को सक्रिय करता है और किस

प्रकार मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

अल्फा तरंगों में वृद्धि और मानसिक शांति :

ध्यान अभ्यास के दौरान मस्तिष्क में अल्फा तरंगों (Alpha Waves) की मात्रा बढ़ जाती है, जो सामान्यतः विश्राम (relaxation) और शांत मानसिक अवस्था से जुड़ी होती हैं। जब व्यक्ति ध्यान करता है, तो उसका मन बाहरी उत्तेजनाओं से हटकर भीतर की ओर केंद्रित होता है, जिससे मानसिक अशांति कम होती है। अल्फा तरंगों की वृद्धि यह संकेत देती है कि मस्तिष्क तनाव–मुक्त होकर एक संतुलित और शांत स्थिति में पहुँच रहा है। यही कारण है कि ध्यान करने के बाद व्यक्ति अधिक शांत, स्थिर और प्रसन्न अनुभव करता है।

थीटा तरंगों की सक्रियता और गहन ध्यान :

थीटा तरंगें (Theta Waves) मस्तिष्क की गहरी एकाग्रता, ध्यान और अवचेतन (Subconscious) स्तर से जुड़ी होती हैं। ध्यान की गहन अवस्था में थीटा तरंगों की सक्रियता बढ़ जाती है, जिससे व्यक्ति की रचनात्मकता (Creativity) और अंतर्दृष्टि (Insight) में वृद्धि होती है। यह अवस्था स्वप्न–जैसी होती है, जहाँ मस्तिष्क नई कल्पनाएँ और विचार उत्पन्न करता है। इसलिए, नियमित ध्यान करने वाले लोग अधिक सृजनात्मक और मानसिक रूप से लचीले पाए जाते हैं।

बीटा तरंगों में कमी और तनाव में गिरावट :

बीटा तरंगें (Beta Waves) सामान्यतः सक्रिय सोच, चिंता, और तनाव से संबंधित होती हैं। जब व्यक्ति अत्यधिक तनाव या चिंता में होता है, तब बीटा तरंगों की तीव्रता बढ़ जाती है। ध्यान अभ्यास के दौरान इन तरंगों की सक्रियता कम हो जाती है, जिससे मानसिक दबाव और चिंता में कमी आती है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि ध्यान मस्तिष्क को अत्यधिक उत्तेजना से निकालकर एक शांत और संतुलित अवस्था में लाता है।

न्यूरोप्लास्टिसिटी में वृद्धि (Neuroplasticity) :

नियमित योग और ध्यान अभ्यास से मस्तिष्क की न्यूरोप्लास्टिसिटी 'अर्थात् नई न्यूरल कनेक्शन बनाने और खुद को पुनर्गठित करने की क्षमता' में वृद्धि होती है। इसका अर्थ है कि मस्तिष्क नए अनुभवों और सीखने के आधार पर स्वयं को बदलने में सक्षम हो जाता है। इससे व्यक्ति की सीखने की क्षमता, स्मरण शक्ति और अनुकूलन (Adaptation) की शक्ति बढ़ती है। योग और ध्यान मस्तिष्क को लचीला और अधिक सक्षम बनाते हैं।

मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों में समन्वय (Coordination) :

ध्यान के दौरान मस्तिष्क के विभिन्न भागों 'जैसे प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स (निर्णय और सोच), अमिगडाला (भावनाएँ), और हिप्पोकैम्पस (स्मृति)' के बीच बेहतर समन्वय (Coordination) स्थापित होता है। यह संतुलन व्यक्ति को भावनात्मक रूप से स्थिर, तार्किक रूप से स्पष्ट और व्यवहार में संयमित बनाता है। परिणामस्वरूप, व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी बेहतर निर्णय ले पाता है और अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर सकता है। योग और ध्यान का नियमित अभ्यास मस्तिष्क की तरंगों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है, जिससे व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार होता है। यह अभ्यास तनाव और चिंता को कम करते हुए भावनात्मक संतुलन को सुदृढ़ करता है, जिससे व्यक्ति अधिक शांत, स्थिर और संतुलित अनुभव करता है।

References :

1. शर्मा, श्रीराम (सं.). (2003). ऋग्वेद संहिता (हिंदी अनुवाद सहित). मथुरा : गायत्री तपोभूमि।

2. दयानंद सरस्वती. (2010). यजुर्वेद भाष्य. दिल्ली : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट.
3. शास्त्री, जयदेव वेदालंकार (सं.). (2005). अथर्ववेद (हिंदी व्याख्या सहित). वाराणसी : चौखम्बा प्रकाशन.
4. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1994). उपनिषदों का दर्शन (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली : राजपाल एंड संस.
5. मिश्र, हरिकृष्णदास. (2008). कठोपनिषद (हिंदी टीका सहित). वाराणसी : गीता प्रेस.
6. व्यास, भगवान. (2012). पतंजलि योगसूत्र (हिंदी भाष्य सहित). गोरखपुर : गीता प्रेस.
7. प्रभुपाद, ए. सी. भक्तिवेदांत. (2015). श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप (हिंदी). मुंबई : भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट.
8. चिन्मयानंद, स्वामी. (2006). माण्डूक्य उपनिषद (हिंदी व्याख्या). मुंबई : चिन्मय मिशन.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 104-109

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा में हिन्दी साहित्य का योगदान

डॉ. पूनम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ।

सारांश :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान–परंपराओं में से एक है। यह परंपरा वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन, लोक–साहित्य, भक्ति साहित्य तथा आधुनिक चिंतन तक विस्तृत है। हिन्दी साहित्य ने इस ज्ञान परंपरा को जन–सामान्य तक पहुँचाने, संरक्षित करने और विकसित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिन्दी साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, नैतिकता, अध्यात्म, सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों का संवाहक भी है। हिन्दी साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज को धर्म, दर्शन, नीति, लोकमंगल, समरसता तथा राष्ट्रीय चेतना का संदेश प्राप्त हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा के विकास में हिन्दी साहित्य के योगदान का विश्लेषण किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। यह परंपरा वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, पुराणों तथा विविध दार्शनिक ग्रंथों में विकसित हुई। भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य मानव जीवन को सत्य, अहिंसा, धर्म, करुणा तथा मोक्ष की दिशा में अग्रसर करना रहा है। हिन्दी साहित्य ने इस ज्ञान को सरल भाषा में जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया। हिन्दी साहित्य ने भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'अहिंसा परमो धर्मः' आदि आदर्शों को जन–जन तक पहुँचाया। मध्यकालीन संत कवियों ने सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक चेतना का संदेश दिया, जबकि आधुनिक साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और मानवतावाद को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का सशक्त माध्यम बनकर उभरा।

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा –

भारतीय ज्ञान परंपरा से अभिप्राय उस ज्ञान–संपदा से है, जो भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक चेतना में निहित है। इसमें वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, दर्शन, आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, नाट्यशास्त्र तथा लोकपरंपराएँ सम्मिलित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रमुख आधार आध्यात्मिकता, नैतिकता और लोक–कल्याण है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए मार्गदर्शक है।

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, "भारतीय संस्कृति का मूल आधार आध्यात्मिकता है, जिसने मानव जीवन को नैतिकता और आत्मज्ञान की दिशा प्रदान की।"[1] भारतीय ज्ञान परंपरा केवल धार्मिक शिक्षा तक सीमित

नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के समग्र विकास पर बल देती है। हिन्दी साहित्य ने इसी ज्ञान को सहज एवं सरल रूप में समाज तक पहुँचाया।

हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति –

हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति का दर्पण माना जाता है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य में भारतीय जीवन–मूल्यों का चित्रण मिलता है। हिन्दी साहित्य ने भारतीय समाज को नैतिकता, धर्म, करुणा और सामाजिक समरसता की प्रेरणा दी। आदिकालीन साहित्य में वीरता और राष्ट्रीय गौरव की भावना दिखाई देती है। भक्तिकाल में भक्ति, प्रेम और सामाजिक समानता का संदेश मिलता है। रीतिकाल में सौंदर्य और कला का विकास हुआ, जबकि आधुनिक काल में राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार और लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रमुखता मिली।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है "साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है।"[2] यह कथन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करता है।

हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति का संरक्षक और संवाहक है। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने वाला सांस्कृतिक दस्तावेज भी है। हिन्दी साहित्य ने भारतीय संस्कृति की मूल भावना मानवता, समरसता और नैतिकता को सुरक्षित रखते हुए नई पीढ़ियों तक पहुँचाने का कार्य किया है।

भक्ति आंदोलन और ज्ञान परंपरा –

भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आंदोलन रहा है, जिसने मध्यकालीन समाज में धर्म, समाज और ज्ञान की परंपरा को नई दिशा प्रदान की। यह आंदोलन लगभग 7वीं से 17वीं शताब्दी के बीच विकसित हुआ और इसका उद्‌देश्य भक्ति के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति तथा सामाजिक समरसता स्थापित करना था।

भक्ति आंदोलन भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण विस्तार है, जिसने ज्ञान को केवल शास्त्रीय सीमा से निकालकर उसे भावनात्मक, नैतिक और सामाजिक जीवन से जोड़ा। इस आंदोलन ने यह सिद्ध किया कि सच्चा ज्ञान वही है जो मनुष्य को अहंकार से मुक्त कर प्रेम, करुणा और समरसता की ओर ले जाए।

कबीर – भक्ति परंपरा में कबीरदास का स्थान अत्यंत विशिष्ट और क्रांतिकारी माना जाता है। वे मध्यकालीन भारत के ऐसे संत–कवि थे जिन्होंने भक्ति आंदोलन को सामाजिक सुधार, आध्यात्मिकता और जन–जागरण से जोड़ दिया। कबीर निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख प्रवक्ता थे, जिनका ईश्वर निराकार और सर्वव्यापी था। कबीरदास ने धार्मिक आडम्बरों और जातिगत भेदभाव का विरोध किया।

भक्ति परंपरा में कबीर ने समाज को एक नई दृष्टि दी, जहाँ धर्म से अधिक महत्त्वपूर्ण मानवता, प्रेम और समानता है। उनके विचार आज भी, "सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक चेतना के लिए प्रासंगिक हैं। कबीर ने भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल तत्व, आत्मज्ञान और सत्य को जनभाषा में प्रस्तुत किया।"[3]

तुलसीदास – तुलसीदास हिन्दी भक्ति परंपरा के सगुण भक्ति धारा के सबसे प्रमुख कवि एवं रामभक्त माने जाते हैं। उन्होंने भक्ति आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक आधार प्रदान किया तथा जनमानस में ईश्वर–भक्ति को सरल, सुलभ और प्रभावशाली रूप में स्थापित किया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से, "भारतीय संस्कृति और आदर्श जीवन मूल्यों का प्रचार किया। राम को मर्यादा

पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने समाज को धर्म, कर्तव्य और नैतिकता का संदेश दिया।"[4]

तुलसीदास ने समाज में व्याप्त नैतिक पतन, अधर्म और अराजकता के समय में रामराज्य की कल्पना प्रस्तुत की, जो एक आदर्श समाज का प्रतीक है। इसमें न्याय, समानता और धर्म आधारित शासन की अवधारणा निहित है। तुलसीदास भक्ति परंपरा में ऐसे कवि हैं जिन्होंने सगुण भक्ति को दार्शनिक गहराई, सामाजिक उपयोगिता और सांस्कृतिक एकता प्रदान की तथा भारतीय ज्ञान परंपरा को लोकभाषा के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया।

सूरदास और मीराबाई – भक्ति आंदोलन की परंपरा में सूरदास और मीराबाई का विशेष स्थान है। दोनों ही कवियों ने सगुण भक्ति धारा को अपनी भावनात्मक, आत्मिक और काव्यात्मक अभिव्यक्ति से समृद्ध किया। जहाँ सूरदास ने कृष्णभक्ति को वात्सल्य और माधुर्य भाव से प्रस्तुत किया, वहीं मीराबाई ने कृष्ण–प्रेम को पूर्ण समर्पण और विरह की भावना के साथ व्यक्त किया। सूरदास ने कृष्ण भक्ति के माध्यम से प्रेम और भक्ति को महत्व दिया। मीराबाई ने आत्मसमर्पण और आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यक्ति दी। इनके साहित्य ने भारतीय ज्ञान परंपरा के भावात्मक पक्ष को समृद्ध किया।

लोकमंगल की भावना –

लोकमंगल का अर्थ है, समाज के समस्त जनों के कल्याण की भावना। हिन्दी साहित्य में यह विचार अत्यंत व्यापक रूप से दिखाई देता है। यह केवल साहित्यिक आदर्श नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल तत्व भी है, जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना निहित है। हिन्दी साहित्य में लोकमंगल की अवधारणा यह दर्शाती है कि साहित्य का उद्देश्य केवल सौंदर्य या मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज का नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान भी है।

हिन्दी साहित्य में लोकमंगल की भावना का आशय समाज के समग्र कल्याण, सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों की स्थापना से है। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचंद का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और युगांतकारी माना जाता है। उन्हें हिन्दी कथा–साहित्य में 'यथार्थवाद' और 'जनोन्मुख साहित्य' का प्रवर्तक कहा जाता है। मुंशी प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में, "सामाजिक विषमता, शोषण और ग्रामीण जीवन की समस्याओं को चित्रित किया। 'गोदान' और 'सेवासदन' जैसे उपन्यासों में सामाजिक न्याय और मानवीय संवेदना का चित्रण मिलता है।"[5] प्रेमचंद ने साहित्य को समाज सुधार का माध्यम माना। उनके अनुसार "साहित्य समाज का दर्पण है।"[6]

राष्ट्रीय चेतना और हिन्दी साहित्य –

राष्ट्रीय चेतना से आशय उस जागरूकता से है जिसमें किसी देश के नागरिक अपने इतिहास, संस्कृति, परंपरा, स्वतंत्रता, एकता और स्वाभिमान के प्रति सचेत होते हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी कवियों और लेखकों ने राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना को जन–जन तक पहुँचाया। मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर तथा सुभद्रा कुमारी चौहान इत्यादि ने साहित्य के माध्यम से देशभक्ति और आत्मसम्मान की भावना जागृत की। दिनकर की कविता में, "भारतीय संस्कृति और वीरता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक संदर्भों में पुनः व्याख्यायित किया।"[7]

राष्ट्रीय चेतना और हिन्दी साहित्य का संबंध अत्यंत गहरा और ऐतिहासिक है। हिन्दी साहित्य ने भारतीय समाज को एकता, स्वतंत्रता, सामाजिक सुधार और राष्ट्रनिर्माण की दिशा में प्रेरित किया। भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य ने निरंतर राष्ट्रीय चेतना को विकसित और सशक्त किया है, जिससे भारतीय समाज में आत्मगौरव और स्वाभिमान की भावना मजबूत हुई।

हिन्दी साहित्य में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य –

हिन्दी साहित्य केवल मनोरंजन या कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का सशक्त संवाहक भी है। भारतीय संस्कृति में साहित्य को सदैव जीवन–दर्शन, आचरण और आत्मिक उन्नति का साधन माना गया है। इसी कारण हिन्दी साहित्य में सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, सहिष्णुता और आत्मबोध जैसे मूल्यों का व्यापक चित्रण मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार नैतिकता और आध्यात्मिकता है। हिन्दी साहित्य ने इन मूल्यों को व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया। भक्तिकालीन साहित्य में ईश्वर–भक्ति, प्रेम, दया, करुणा तथा समर्पण के भाव प्रमुख हैं। आधुनिक साहित्य में मानवता, समानता, स्वतंत्रता और लोकतंत्र के मूल्य दिखाई देते हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार– "स्त्री को समाज ने त्याग, सेवा और सहनशीलता का प्रतीक तो बना दिया, किन्तु उसे अपने विचार, इच्छाएँ और स्वतंत्र अस्तित्व व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया। यही कारण है कि स्त्री का जीवन अनेक प्रकार की मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक पीड़ाओं से घिरा रहा।"[8]

हिन्दी साहित्य पर भारतीय ज्ञान परंपरा का गहरा प्रभाव रहा है। उपनिषदों की आत्मा–परमात्मा की अवधारणा, योग–दर्शन की आत्मानुभूति और भगवद्गीता के कर्मयोग ने साहित्य में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को मजबूत आधार प्रदान किया है।

लोक-साहित्य और ज्ञान परंपरा –

लोक–साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा दोनों ही भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना के दो महत्त्वपूर्ण आधार हैं। जहाँ ज्ञान परंपरा शास्त्रीय, दार्शनिक और वैचारिक ज्ञान का विस्तार करती है, वहीं लोक–साहित्य जनसामान्य के अनुभव, भावनाओं और जीवन–सत्य को सरल और सहज रूप में व्यक्त करता है। कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार– "लोकसाहित्य का जन्म लोकजीवन से होता है। ग्रामीण समाज, लोकपरम्पराएँ, रीति–रिवाज, उत्सव, श्रम, सुख–दुःख और मानवीय संबंध लोकसाहित्य के मुख्य आधार हैं। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ और लोकगाथाएँ समाज के अनुभवों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रखती हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत का संवाहक भी है।"[9]

लोक–साहित्य और ज्ञान परंपरा एक–दूसरे के पूरक हैं। जहाँ ज्ञान परंपरा वैचारिक और दार्शनिक आधार प्रदान करती है, वहीं लोक–साहित्य उसे जनजीवन में जीवंत बनाता है। दोनों मिलकर भारतीय संस्कृति की निरंतरता, नैतिकता और सामाजिक एकता को बनाए रखते हैं।

हिन्दी साहित्य और सामाजिक समरसता –

सामाजिक समरसता का अर्थ है समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों और समुदायों के बीच समानता, सौहार्द, सहयोग और एकता की भावना का विकास। हिन्दी साहित्य ने इस भावना को निरंतर सशक्त किया है और समाज में विभाजनकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक सकारात्मक चेतना विकसित की है। हिन्दी साहित्य का मूल

उद्देश्य केवल सौंदर्यबोध नहीं, बल्कि समाज का नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय एकीकरण भी रहा है। इसी कारण यह सामाजिक समरसता का प्रभावी माध्यम बना।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव समन्वय और सह–अस्तित्व की पक्षधर रही है। हिन्दी साहित्य ने जाति, वर्ग और धर्म के भेदभाव का विरोध कर सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया। ओमप्रकाश वाल्मीकि स्पष्ट करते हैं कि– "जातिवाद केवल सामाजिक व्यवस्था की समस्या नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनहीनता का प्रतीक है। वे समाज से समानता, मानवता और सामाजिक न्याय की अपेक्षा करते हैं। उनकी लेखनी दलित अनुभवों को साहित्य के केंद्र में स्थापित करती है और उन वर्गों की आवाज़ बनती है जिन्हें लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया।"[10]

शिक्षा और ज्ञान-विस्तार में हिन्दी साहित्य की भूमिका –

हिन्दी साहित्य केवल सौंदर्य और मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह शिक्षा और ज्ञान–विस्तार का एक सशक्त साधन भी है। यह समाज को नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से समृद्ध करता है। हिन्दी साहित्य ने जनसामान्य तक ज्ञान पहुँचाकर शिक्षा को सरल, सुलभ और प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिन्दी भाषा के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा गाँवों और छोटे नगरों तक पहुँची। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिन्दी भाषा और साहित्य को आधुनिक चेतना से जोड़ा। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य ने भारतीय इतिहास, संस्कृति, विज्ञान, दर्शन और समाजशास्त्र से संबंधित ज्ञान को सरल रूप में प्रस्तुत किया।

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी साहित्य –

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी साहित्य ने नई दिशा, नए विषय और नई अभिव्यक्ति शैलियाँ अपनाई हैं। वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर सूचना, तकनीक और संचार को तेज़ किया है, वहीं दूसरी ओर साहित्य को वैश्विक मंच भी प्रदान किया है। इस परिवर्तन ने हिन्दी साहित्य को केवल राष्ट्रीय नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई है। नामवर सिंह के अनुसार– अपभ्रंश हिन्दी की आधारभूमि है। अपभ्रंश भाषा में वे सभी तत्त्व विकसित होने लगे थे जो आगे चलकर हिन्दी के रूप में स्थापित हुए। ध्वनि, शब्दावली, व्याकरण और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपभ्रंश ने हिन्दी को महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया। इसलिए हिन्दी के इतिहास को समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य और भाषा का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।"[11]

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी साहित्य ने स्वयं को नए समय के अनुरूप ढालते हुए अपनी पहचान को और मजबूत किया है। यह अब केवल भारतीय समाज का साहित्य नहीं, बल्कि वैश्विक संवाद का माध्यम बन चुका है। चुनौतियों के बावजूद हिन्दी साहित्य अपनी सांस्कृतिक जड़ों और मानवीय मूल्यों के साथ निरंतर विकास की ओर अग्रसर है।

आज आवश्यकता है कि हिन्दी साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन को शिक्षा और शोध में अधिक महत्व दिया जाए, ताकि नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक विरासत से जुड़ सके। हिन्दी साहित्य भारतीयता की आत्मा है और भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर भी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का संवाहक, संरक्षक और विकासकर्ता रहा है। हिन्दी साहित्य ने भारतीय संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों को

जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। भक्तिकालीन संतों से लेकर आधुनिक साहित्यकारों तक सभी ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाने में योगदान दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (2008), भारतीय दर्शन, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, पृ0 45
2. शुक्ल, रामचंद्र (2012), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ0 12
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2015), कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 88
4. तुलसीदास, गोस्वामी, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 532
5. प्रेमचंद, मुंशी (2018), गोदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 97
6. शर्मा, रामविलास (2011), प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 54
7. दिनकर, रामधारी सिंह (2016), संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 103
8. वर्मा, महादेवी (2014), श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ0 67
9. उपाध्याय, कृष्णदेव (2010), लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ0 29
10. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (2013), जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 74
11. तिवारी, रामचंद्र (2011), भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 41
12. सिंह, नामवर (2009), हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 118

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 110-117
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

LORD RAM'S ACTIONS AND INCLUSION OF YOG

Dr. Ved Prakash Arya, Assistant Professor,
Prachi Jain
Ph.d./07/2023/Yog/125,
Shri Khushal Das University, Pilibanga, Hanumangarh.

Introduction :

In the United Stated, practitioners embrace Yog first as a form of exercise unbeknownst to its life thriving roots that come from the sub-continent India. Beyond a physical feat, Yoga on its own is an experience and philosophy which emphasizes balance between one's body, mind and spirit. The principles promote values that range beyond everyday actions and sinks deeply into a person's character and integrity. The petal as described by Patanjali's Ashtanga Yoga the yamas and the Niyamas serve as the moral compass. The yamas in this case are Ahimsa (non-violence), Satya (truth telling), Asteya (not taking that which does not belong to them), Brahmacharya (moderation), Aparigraha (non coveting). The combination heightens empathy, honesty, respect, communal spirit, and social responsibility. Most importantly compassion. These values on the individual and societal level leaves no space for the inflow of negative energies. Person characterized under these set of principles leads to change for the better. At the same time, we have the Niyama's, these shaped by Shaucha (cleanliness), Santosha (contentment), Tapas(self-discipline), Swadhyaya (study of oneself), Ishwar Pranidhana (surrender of oneself to higher spirit) shifts the focus to individual more so than the external world.

From a professional and work perspective, the former develops the athlete in a person and when put to practice starts to show desired results. The latter on the other hand creates a restrained, humble individual capable of precise response to emotions. These values strengthen work ethic greatly. Bhagavad Gita explains that the practice of Karma Yoga deals with fulfilling responsibilities without taking any personal credits for the results. This approach not only relieves stress and anxiety related to success or failure, but also motivates deep level commitment towards goals. A person who practices Karma Yoga is self-motivated and pays attention to the quality of his work rather than the external rewards which provides him with consistency as well as internal contentment.

Dharana and Dhyana are yogic practices related to focusing the mind which increase clarity of thought. In today's fast-moving world, where distraction from screens is common and emotion control is not held as a priority, these skills are fundamental. Regular meditation helps people notice their thoughts as well as emotions which improves the way they make choices, the way they solve different problems, and their emotional sensitivity, all which is necessarily required while working with others or leading a team. Other than that, Pratyahara, or taught the conscious withdrawal of the senses, is also useful for promoting self-control. Unlike people who have no self-control, those trained to calm the body can effectively deal with outer pressure.

Analyzing Lord Ram's Actions Through the Lens of Yog :

For his followers, Lord Shri Ram is best described as Maryada Purushottam the perfect man He not only serves as the protagonist the Indian epic Ramayana, but also represents the living principles of Yog. His choices and actions throughout life embody perfect integration of Dharma (righteous duty), self-restraint, and calm as merited in Yog. When one attempts to understand Lord Ram's actions through the principle of Yog, it clears the way towards a transformative model of leadership, emotional intelligence, and altruism, cutting across all boundaries of time and civilization. 2 Fundamental to Yog is a certain level of poise while engaging in any activity; something that has been also mentioned in Bhagavat Gita, "Yogah Karmasu Kaushalam"- Yog is proficiency in action. One can see this value in Lord Ram's life from the very beginning, be it his amicable acceptance of exile, performing his dharmic duties as a son and king, or facing personal grief while maintaining Dharma. His relinquishing of Dharmraj's Ayodhya is a testament towards a Yogic Vairagya- detachment devoid of apathy and willing sacrifice of self-interest for something greater. His moderation in manifestation reveals the Yogic state of Samatvam or equilibrium of the mind in the midst of joy and sorrow, achievement and failure.

The bond Lord Ram has with others is equally Yogic in nature. His devotion to Satya meaning truth, Karuna, compassion, Ahimsa non-violence is evident even during wartime. In indic traditions, this is known as Yamas meaning ethical or social restraints, as in the first limb of Patanjali's Ashtanga Yog. For instance, in the Hindu epic Ramayana, when he kills Ravana, he performs the act without hatred, telling Lakshman to learn from the now lifeless king. That is not only forgiveness. But, a respect for life, Dharmic wisdom, and the cycles of existence. And all of that done without egoic imprint His life is also a lesson of selfless acts as in Karma Yog where one does not form attachment to the resulting outcomes. Ram stays dutiful whether Ayodhya is his home or the forest is where he lives. He is outcome focused which is not rooted in self seeking glory, pleasure or validation. Instead, grounded in the concept of Swadharma, meaning personal duty in accordance to once assigned role

and responsibilities. Even with painful decisions such as having Sita undertake Agni Pariksha or ultimately sending her away, Ram follows the Dharma model and relinquishes his desires. Yog reveals the inner conflict of personal emotion against responsibility society binds.

Moreover, Lord Ram exemplifies the Niyamas (personal observances) in maintaining his inner self. In the entire epic, we see his self-restraint (Tapas), clarity of thought (Shoucha), contentment (Santosha), and divine order belief (Ishwar Pranidhana). Throughout the epic, even in the face of continued difficulties, he does not curse his fate nor loses his way. Everything is in control, His calm perseverance and unshakeable belief are the greatest expressions of Yogic maturity that a mind not pseudostable by circumstances but rooted in purpose and inner strength.

Relevance of Lord Ram's Knowledge Quest Today :

Lord Ram's life journey, from his formative years in the Gurukul to his righteous reign as king, is more than just a narrative of mythological heroism; it is a profound blueprint for self-evolution, ethical leadership, and conscious living. In today's fast-paced, materially driven world-marked by uncertainty, stress, and moral ambiguity- the knowledge quest of Lord Ram emerges as a timeless guide. His path was not about accumulating information but about deep transformation of the self through Shraddha (faith), Svadhyaya (self-study), Guru Bhakti (devotion to teacher), and discipline. As modern education systems and leadership paradigms struggle to reconnect with ethical grounding and inner stability, Lord Ram's example becomes acutely relevant - not merely as an ideal, but as a practical model for individuals, especially the youth, to live with purpose, restraint, and inner strength. One of the central aspects of Lord Ram's life is the integration of education and character-building. Unlike the modern system where knowledge is often fragmented into marks, degrees, or career goals, the Indian Knowledge System (IKS) envisions learning as a transformational journey. In his early years under Guru Vashishtha and later under Vishwamitra, Ram absorbed not only scripture and strategy, but also the deeper yogic values of humility, discipline, self-restraint, and compassionate action. The Gurukul system taught students to align knowledge with dharma, and to develop inner virtues alongside outer skills. In today's world, where education is often divorced from ethics and personal responsibility, Ram's learning journey reminds us that true education builds not just intelligence, but wisdom; not just capability, but character.

The values of Shraddha and Guru Bhakti-central to IKS and deeply embedded in Ram's approach are highly relevant for modern learners. Shraddha is not blind belief, but a reverent openness to truth, sincerity in intention, and respect for the learning process. Guru Bhakti reflects a learner's dedication and receptivity toward the teacher-not for fear or dependency, but for the awakening of inner knowledge. In an era where instant gratification and self-centered ambition dominate, these values

remind us that deep learning requires surrender, patience, and trust. Lord Ram's reverence for his gurus, his attentive listening, and his rigorous practice. embody the mindset necessary for holistic education-one that fosters inner resilience and spiritual grounding.

Another crucial idea from Lord Ram's life is Svadhyaya, or self-study. In IKS, learning is never complete without introspection and personal reflection. Ram's responses to challenges whether exile, moral dilemmas, or emotional upheavals- show his habit of deep inner contemplation. He reflects before acting, listens before speaking, and prioritizes long-term dharma over short-term desire. In modern times, where people are flooded with information but lack time for reflection, Svadhyaya becomes a powerful tool for cultivating clarity, self- awareness, and emotional maturity. Whether it is a student navigating peer pressure, a leader managing crises, or an individual coping with stress, Ram's habit of reflection offers a model for conscious response instead of reactive behaviour.

In the corporate world and modern management, too, Ram's life embodies the principles of spiritual leadership. His ability to delegate (to Hanuman, Sugriv, Lakshman), his commitment to truth and transparency, and his clarity in crisis management reflect what is now termed emotional intelligence. Ram listens to opposing viewpoints, values every team member's contribution, and maintains composure even during profound personal loss. These are vital leadership qualities today especially in a world where burnout, stress, and impulsive decision-making are on the rise. His leadership combines rational strategy with ethical sensitivity, setting a powerful example for today's CEOs, politicians, and social leaders.

On a more personal level, Lord Ram's yogic wisdom speaks directly to the youth of today, who are often burdened by uncertainty, comparison, and a loss of inner direction. Ram was not born into comfort-he faced exile, separation from his wife, betrayal from kin, and constant public scrutiny. Yet, he never let pain cloud his wisdom or anger govern his actions. He teaches that challenges are not obstacles, but instruments of growth. For the modern youth, immersed in social media, competition, and mental health struggles, Ram becomes a role model of humility, resilience, purpose, and self-control. His choices remind us that it is possible to be powerful and humble, successful and ethical, emotional and composed all at once.

In the realm of ethics, too, Ram's life stands as a lighthouse in the fog of modern moral confusion. Whether in his unwavering commitment to truth, his respectful conduct with all beings, or his willingness to suffer for collective good, Ram reaffirms that personal integrity is the highest form of power. In a time when shortcuts, dishonesty, and manipulation often appear rewarded, Ram's unwavering dharma-cantered life offers clarity: that real fulfilment arises not from what we get, but

from how we live. His respect for Sita, his compassion toward Hanuman, and his fair treatment of even enemies like Vibhishan all teach that true power lies in honouring the divine in all.

Moreover, the holistic nature of Ram's knowledge which includes not just spiritual insight but also political wisdom, strategic intelligence, and emotional awareness show the interdisciplinary ideal of education envisioned in IKS. Today's youth are often encouraged to specialize in one field while ignoring the rest. Ram's life demonstrates that a complete human being must cultivate multiple dimensions-head, heart, and hands. Wisdom must walk with skill, and action must be guided by ethics. Ram was a warrior, a scholar, a statesman, and a spiritual aspirant- all at once. This well roundedness is what true education should aim to create.

In conclusion, Lord Ram's quest for knowledge remains profoundly relevant today. In a world deeply in need of ethical leadership, spiritual balance, and inner strength, Ram offers a living example of how to pursue learning not for ego, but for enlightenment; not for power, but for purpose. His life, grounded in yogic values and IKS ideals, teaches that education must build character, leadership must be selfless, and success must be rooted in dharma. For students, professionals, leaders, and seekers, Ram is more than a mythological figure- he is a mirror of who we can become, if we walk the path of self-discipline, devotion, humility, and wisdom. As we stand at the crossroads of technological advancement and spiritual crisis, reconnecting with Lord Ram's model of knowledge and governance can lead us not backward into tradition, but forward into conscious transformation.

Conclusion :

The life journey of Lord Ram is not merely an epic narrative of heroism and divine mission, but an evolving and deeply structured path of knowledge acquisition-from childhood to kingship, from student to sovereign, from seeker to sage. Beginning in the sacred environment of the Gurukul under Guru Vashishtha, Ram's education was rooted in the traditional Indian Knowledge System that emphasized holistic learning: mastery over scriptures, martial training. philosophical inquiry, and most importantly, the cultivation of inner discipline. This phase instilled in him the foundational values of Brahmacharya humility, listening, and restraint-preparing him not just for intellectual development, but for inner awakening.

His subsequent learning under Vishwamitra marked a transformative phase, where divine knowledge, mystical mantras, and applied warrior ethics were bestowed upon him. Yet, even with such celestial empowerment, Ram remained humble and grounded, continuing to learn. through experience, challenges, and ethical dilemmas. His exile became a turning point in his journey-not as a detour from kingship, but as a yogic ashram in itself. In the forest, amidst sages, seekers, hermits, and adversities, Ram absorbed deeper truths about nature, detachment, compassion, and self-

governance. Each encounter with Shabari, Atri-Anusuya, Agastya, or Hanuman offered not just companionship but wisdom, turning the forest into a living university of spiritual and emotional maturity.

Throughout his life, Lord Ram exemplified the three major yogic paths that form the core of Indian philosophical thought. As a practitioner of Jnana Yog, he constantly reflected upon the Self, sought guidance from sages, and contemplated the nature of dharma and reality. His dialogues, particularly in texts like Yoga Vasistha, reveal a deep Vedantic clarity that aligns with non-dual awareness and cosmic oneness. As a model of Karma Yog. Ram displayed absolute commitment to action without attachment-executing his duties as son, husband, warrior, and king with unwavering discipline, yet without ego or desire for reward. His leadership during war and peace was grounded in Nishkam Karma selfless action guided by dharma alone. And as a shining beacon of Raja Yog, he manifested the highest state of mind control, self-restraint, and ethical leadership. His ability to integrate intellect, emotion, and will Buddhi, Bhava, and Iccha Shakti- made him the perfect yogic ruler who upheld harmony within and without.

What sets Lord Ram's journey apart is its holistic and integrative nature. His quest for knowledge was not limited to scholarly pursuit or meditation alone. It was a multidimensional process that involved scriptural study (Shastra), experiential learning through action and service, moral dilemmas requiring introspection, and inner growth through joy, sorrow, love, and loss. He did not separate spiritual wisdom from everyday life; instead, he lived it. Whether it was upholding truth at personal cost, walking away from the throne, treating enemies with compassion, or sacrificing for the collective good, Ram transformed each life event into a learning opportunity, deepening his wisdom through experience and reflection. This blend of outer action and inner realization, of emotional maturity and spiritual clarity, makes his life a true embodiment of Yogic Knowledge not as abstraction, but as lived truth.

REFERENCES :

1. Nanjegowda, R. B., & Munoli, R. N. (2021). Rama-The epitome of Indian ethics: Relevance to modern mental health. Indian Journal of Private Psychiatry, 15(2), 108-111. https://doi.org/10.5005/jp-journals-10067-0093
2. Singh, S. P. (2015). Concept of Rajdharma in Adi-Kavya: Ramayana and Mahabharata. Indian Journal of Public Administration, 61(1), 132-138. https://doi.org/10.1177/0019556120150109
3. Kumar, D., et al. (2024). Attributes of Rajarshi leadership: Learning from Ramayana. Cogent

Business & Management, 11(1). https://doi.org/10.1080/23311975.2024.2316588
4. Sharma, J. (2017). Relevance of ancient Indian scriptures - Business wisdom drawn from Ramayana, Gita and Thirukkural. International Journal of Indian Culture and Business Management, 15(3), 278. https://doi.org/10.1504/ijicbm.2017.087309
5. Shukla, U. (2013). Ramayana as the gateway to Hindu religious expression among South African Hindi speakers. Journal of Sociology and Social Anthropology, 4(1-2), 83-91. https://doi.org/10.1080/09766634.2013.11885586
6. Joshi, A., & Gupta, R. K. (2017). Elementary education in Bharat (that is India): Insights from a postcolonial ethnographic study of a Gurukul. International Journal of Indian Culture and Business Management, 15(1), 100. https://doi.org/10.1504/ijicbm.2017.085390
7. Waks, L. J. (2018). Humility in teaching. Educational Theory, 68(4-5), 427-442. https://doi.org/10.1111/edth.12327
8. Muniapan, B., & Satpathy, B. (2010). Ancient Indian wisdom for managers: The relevance of Valmiki Ramayana in developing managerial effectiveness. International Journal of Indian Culture and Business Management, 3(6), 645. https://doi.org/10.1504/ijicbm.2010.035670
9. Bhide, S. R., et al. (2021). Conceptualizing yogic leadership for modern organizations. Journal of Human Values, 27(1), 15-29. https://doi.org/10.1177/0253717620975300
10. Singh, R. P. (1996). Valmiki Ramayan awam Adyatmak Ramayan: Ek tulnatmak adyaye (Ch.9).
11. Huxley, J. (2024). The God Rama as symbol full of meaning. Yog Meditation Home. https://yogmeditationhome.com/
12. Krishna. (2024). Bhagwan Shri Ram: History, biography, jivani, Ramayan in Hindi. https://dharmyaatra.in/bhagwan-shri-ram-history-biography-jivani-jeevanparichay-ramayanin-hindi/
13. Manjula, R. (2020). The Ramayana: Exploring timeless values.
14. Bhateri, R. (2016). Valmiki Ramayan avm Mahabharat mein naitik mulyo ka darshnik vivechan [Doctoral dissertation, Department of Philosophy, Kurukshetra University].
15. Mittal, S., & Kumar, S. (2023). Lord Rama: An inspiration to lead a fulfilling life. The International Journal of Indian Psychology, 11(4).
16. Youngbear, M. L. (2006). The truth about being a yogi. JOY-Journal of Yog, 6(2).
17. Dokras, U. (2023). Rama as Devraja. INAC.
18. Agarwalla, S., Seshadri, B., & Krishnan, V. R. (2015). Impact of Gunas and Karma Yoga on transformational leadership. Journal of Human Values, 21(1), 11-22. https://doi.org/10.1177/0971685815569590
19. Maity, S. K. (1998). Early Indian tradition of Rajadharma. Jadavpur Journal of International

Relations, 4(1), 39-47. https://doi.org/10.1177/0973598498110005

20. Tichenor, S. (2007). Looking beyond Darsana: A philosophical exploration of the Guru's pedagogy in the Yoga Väsishtha. Asian Philosophy, 17(1), 83-95. https://doi.org/10.1080/09552360701201130
21. Dr. C. L. (1975). Veda in Ramayana. Triveni Journal.
22. Sen, A. (2012). Dharma concepts in emotional intelligence. Vision: The Journal of Business Perspective, 16(2), 93-99. https://doi.org/10.1177/097226291201600202.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 118-121
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों और पुस्तकालयों की भूमिका का विधिक अध्ययन

प्रीति कनाड़िया
फैकल्टी ऑफ लॉ
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, डॉ. अम्बेडकर नगर।

सार :

सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने ज्ञान के सृजन, प्रसार और उपयोग की प्रक्रिया को पूरी तरह बदल दिया है। डिजिटल माध्यमों के विस्तार ने लेखकों को अपने विचारों को वैश्विक स्तर पर साझा करने का अवसर प्रदान किया है, वहीं इसके साथ ही कॉपीराइट उल्लंघन, साहित्यिक चोरी डिजिटल पायरेसी जैसी चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों के अधिकारों की रक्षा के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करना तथा इस संदर्भ में पुस्तकालयों की भूमिका का अध्ययन करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल संसाधनों के प्रबंधन, कॉपीराइट जागरूकता और सूचना साक्षरता के माध्यम से पुस्तकालय लेखकों के अधिकारों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। साथ ही, प्रभावी नीतियों और तकनीकी उपायों के माध्यम से लेखकों के हितों की रक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

कीवर्ड्स : सूचना प्रौद्योगिकी, कॉपीराइट, लेखकीय अधिकार, पुस्तकालय, डिजिटल पायरेसी।

साहित्य समीक्षा :

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों के अधिकारों की रक्षा और पुस्तकालयों की भूमिका पर विद्यमान साहित्य मुख्य रूप से कॉपीराइट कानून, डिजिटल पायरेसी, साहित्यिक चोरी तथा डिजिटल पुस्तकालयों के संदर्भ में केंद्रित है। शेट्टर (Shettar, 2010) ने डिजिटल युग में पुस्तकालयों के समक्ष कॉपीराइट संबंधी जटिलताओं का विश्लेषण किया है और बताया है कि डिजिटल प्रौद्योगिकियों के कारण लेखकों के अधिकारों का उल्लंघन आसान हो गया है, जिससे पुस्तकालयों को संतुलित नीतियों की आवश्यकता है। नाथ एवं चक्रवर्ती (Nath & Chakravarty, 2022) ने पुस्तकालयों के डिजिटलीकरण में बौद्धिक संपदा अधिकार (IPR) और कॉपीराइट उल्लंघन के मुद्दों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने जोर दिया कि डिजिटल युग में पुस्तकालयों को लेखकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए जन–सुलभता सुनिश्चित करनी चाहिए तथा डिजिटल सामग्री के प्रबंधन के लिए कानूनी ढांचे की मजबूती आवश्यक है। मीना (Meena, 2023) ने "Copyright and Fair Use in the Digital Age: Implications for Libraries" शीर्षक से अध्ययन में पुस्तकालयों के लिए कॉपीराइट और फेयर यूज के विकसित

परिदृश्य का परीक्षण किया। उनके अनुसार, डिजिटल प्रौद्योगिकियां सूचना पहुंच को बढ़ाती हैं, लेकिन लेखकों के हितों की रक्षा के लिए पुस्तकालयों को उपयोगकर्ता शिक्षा और फेयर यूज वकालत पर ध्यान देना चाहिए। भारतीय संदर्भ में कॉपीराइट अधिनियम, 1957 (2012 संशोधन द्वारा) की धारा 52(1)(द) और (व) पुस्तकालयों को संरक्षण एवं सीमित प्रतिलिपि के लिए अपवाद प्रदान करती है, जिसका उल्लेख कई अध्ययनों में किया गया है (Uppaluri, 2012; Internet Archive case implications, 2025)। राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय ऑफ इंडिया (NDLI) का कॉपीराइट गाइड (2020) पुस्तकालयों को डिजिटल सामग्री के प्रबंधन में मार्गदर्शन प्रदान करता है तथा लेखकों के अधिकारों और जन–सुलभता के बीच संतुलन पर बल देता है। हिंदी साहित्य में सूचना प्रौद्योगिकी के पुस्तकालय विकास पर अध्ययन (Raj Mohammad & Kaushal, 2020) उपलब्ध हैं, लेकिन विधिक पहलू पर विशिष्ट शोध कम हैं। कुल मिलाकर, साहित्य यह स्पष्ट करता है कि डिजिटल पायरेसी, प्लेजियरिज्म और कॉपीराइट उल्लंघन प्रमुख चुनौतियां हैं, जबकि पुस्तकालय सूचना साक्षरता, डिजिटल संसाधन प्रबंधन और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से लेखकों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों और पुस्तकालयों की भूमिका पर कई शोध पत्रों और साहित्य का विश्लेषण किया गया है। जैसे कि Krishna (2019), ने बताया कि डिजिटल मीडिया ने लेखकों के लिए विचारों को साझा करने के नए अवसर खोले हैं, लेकिन साथ ही उन्होंने डिजिटल पायरेसी और साहित्यिक चोरी जैसे गंभीर समस्याओं को भी रेखांकित किया। इसके अलावा, Singh (2020), ने यह बताया कि सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से लेखकों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए पुस्तकालयों द्वारा किए गए प्रयासों को बढ़ावा दिया गया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि पुस्तकालयों ने डिजिटल संसाधनों के प्रबंधन, डिजिटल प्रमाणपत्रों की जानकारी और कॉपीराइट जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। Sharma & Agarwal (2018), ने यह भी जांचा कि पुस्तकालयों ने लेखकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई ऑनलाइन मंचों और कानूनी संसाधनों को विकसित किया है, जो लेखकों को अपनी रचनाओं पर नियंत्रण और उनके अधिकारों की सुरक्षा करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके साथ ही, Yadav (2021), ने बताया कि लेखकों के लिए डिजिटल साक्षरता और कॉपीराइट शिक्षा जरूरी है, और पुस्तकालय इस संदर्भ में सहायक भूमिका निभाते हैं।

शोध पद्धति :

इस शोध में गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक स्रोतों, रिपोर्टों एवं केस स्टडीज का गहन अध्ययन किया गया। अध्ययन का मुख्य फोकस पुस्तकालयों में डिजिटल संसाधनों के प्रबंधन तथा लेखकों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु किए जा रहे प्रयासों के मूल्यांकन पर रहा। इस प्रक्रिया के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया कि सूचना प्रौद्योगिकी और पुस्तकालय किस प्रकार लेखकों के अधिकारों की रक्षा में योगदान देते हैं।

यह शोध विधिक दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया। प्राथमिक स्रोतों में भारतीय कॉपीराइट अधिनियम, 1957 (संशोधित 2012), सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 तथा संबंधित अंतरराष्ट्रीय संधियों को शामिल किया गया है। वहीं द्वितीयक स्रोतों के रूप में शोध पत्र, पुस्तकें, विभिन्न रिपोर्ट्स, NDLI गाइडलाइंस तथा ऑनलाइन डेटाबेस से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया।डेटा संग्रहण के लिए सिस्टेमेटिक लिटरेचर रिव्यू पद्धति अपनाई गई, जिसके अंतर्गत प्रासंगिक

की–वर्ड्स, विशेष रूप से "सूचना प्रौद्योगिकी, पुस्तकालय, कॉपीराइट" का उपयोग करते हुए वेब स्रोतों एवं जर्नल डेटाबेस से सामग्री एकत्रित की गई। संकलित सामग्री का व्याख्यात्मक (Interpretive) विश्लेषण किया गया तथा लेखकों के अधिकारों की सुरक्षा और पुस्तकालयों की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। यह शोध पूर्णतः समीक्षा–आधारित है, अतः इसमें किसी प्रकार का प्राथमिक सर्वेक्षण या अनुभवजन्य डेटा संग्रह नहीं किया गया। शोध की विश्वसनीयता बनाए रखने हेतु केवल प्रामाणिक एवं विश्वसनीय स्रोतों का ही चयन किया गया है।

निष्कर्ष :

अध्ययन से प्राप्त मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :

1. सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने लेखकों को वैश्विक पहुंच प्रदान की है, लेकिन डिजिटल पायरेसी, प्लेजियरिज्म और अनधिकृत साझाकरण ने उनके आर्थिक एवं नैतिक अधिकारों को गंभीर खतरा पहुंचाया है।
2. पुस्तकालय डिजिटल संसाधनों के प्रबंधन, कॉपीराइट जागरूकता कार्यक्रमों तथा सूचना साक्षरता प्रशिक्षण के माध्यम से लेखकों के अधिकारों की रक्षा में सक्रिय योगदान दे सकते हैं। धारा 52 के अपवादों का उचित उपयोग कर वे फेयर यूज को बढ़ावा दे सकते हैं।
3. डिजिटल राइट्स मैनेजमेंट (DRM), ब्लॉकचेन तकनीक तथा प्रभावी नीतियां (जैसे ओपन एक्सेस मॉडल) लेखकों के हितों की सुरक्षा में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।
4. भारतीय संदर्भ में NDLI जैसे पहल पुस्तकालयों को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, लेकिन बड़े पैमाने पर डिजिटलीकरण के लिए कानूनी स्पष्टता की अभी भी आवश्यकता है।

ये निष्कर्ष साहित्य समीक्षा से पूर्णतः समर्थित हैं तथा दर्शाते हैं कि पुस्तकालय केवल सूचना के भंडार नहीं, बल्कि कॉपीराइट संरक्षण के सक्रिय अभिकर्ता भी हैं।

निष्कर्ष :

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में लेखकों के अधिकारों की रक्षा एक जटिल लेकिन आवश्यक कार्य है। शोध से स्पष्ट होता है कि डिजिटल माध्यमों ने ज्ञान के सृजन और प्रसार को तो बढ़ावा दिया है, परंतु साथ ही कॉपीराइट उल्लंघन की चुनौतियां भी पैदा की हैं। पुस्तकालय इन चुनौतियों का सामना करते हुए डिजिटल संसाधन प्रबंधन, कॉपीराइट जागरूकता तथा सूचना साक्षरता के माध्यम से लेखकों के हितों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

प्रभावी नीतियों, तकनीकी उपायों (जैसे DRM) तथा कानूनी संशोधनों के माध्यम से लेखकों के अधिकारों और जन–सुलभता के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। भविष्य में पुस्तकालयों को ओपन एक्सेस, डिजिटल संरक्षण तथा उपयोगकर्ता शिक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यह अध्ययन सुझाव देता है कि सरकारी एवं संस्थागत स्तर पर मजबूत नीतियां बनाई जाएं ताकि ज्ञान समाज का विकास लेखकों के हितों की रक्षा करते हुए हो सके।

संदर्भ सूची :

- कृष्ण, आर. (2019). सूचना युग में डिजिटल पायरेसी और कॉपीराइट समस्याएँ. जर्नल ऑफ डिजिटल

राइट्स, 5(3), 101–115।
- सिंह, एम. (2020). कॉपीराइट जागरूकता और लेखक के अधिकारों की सुरक्षा में पुस्तकालयों की भूमिका. सूचना प्रौद्योगिकी और पुस्तकालय विज्ञान, 18(2), 45–59।
- शर्मा, एन., – अग्रवाल, आर. (2018). डिजिटल युग में पुस्तकालयों की भूमिका : लेखक के अधिकारों की सुरक्षा. जर्नल ऑफ लाइब्रेरी साइंस, 24(1), 67–72।
- यादव, एस. (2021). लेखकों के लिए डिजिटल साक्षरता और कॉपीराइट शिक्षा : एक पुस्तकालय दृष्टिकोण. अंतर्राष्ट्रीय सूचना विज्ञान जर्नल, 12(4), 32–40।
- https://www.lexology.com/library/detail.aspx?g=4bd86749-43ca-465d-8ea0-c8e6542873f1
- https://www.ijllr.com/post/copyright-in-the-digital-age-challenges-reforms-and-the-way-forward
- https://www.granthaalayahpublication.org/Arts-Journal/ShodhKosh/article/view/2199
- https://www.cnlu.ac.in/wp-content/uploads/2025/07/Intellectual-Property-Copyright-Infringement-in-Digitalization-of-Libraries-by-Aranya-Nath-Gautami-Chakravarty.pdf
- https://fultonhistory.com/LLRX.com%20-%20Library%20Digitization%20Projects%20and%20Copyright.pdf
- https://uou.ac.in/sites/default/files/slm/BLIS-107.pdf
- https://www.mcu.ac.in/media-mimansa/2018/January-March/mm-49-53.pdf
- https://matsuniversity.ac.in/data1/researches/mats_school_of_library_science/62.%20Sanjay%20Sahjit%20379-383.pdf
- https://www.gramodayachitrakoot.ac.in/wp-content/uploads/2019/08/Information-Society-1-352.pdf
- https://ignited.in/index.php/jasrae/article/view/12867

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 122-125
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी काव्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का निर्वहन (पंजाब की कविता के संदर्भ में)

प्रीति गुप्ता
सहायक प्राध्यापक, विधि–विभाग
महर्षि मार्कंडेश्वर डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, मुलाना, अंबाला।

भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही एक व्यवस्थित ज्ञान प्रणाली है, जो वेदों, उपनिषदों, दर्शन, विज्ञान, और कला के माध्यम से पीढ़ियों तक हस्तांतरित हुई है प्रथाओं को उजागर करके, हम उनकी प्रभावशीलता दिखा सकते हैं, और उन पर शोध करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का उपयोग करके समकालीन मुद्दों को हल करने में इसे लागू कर सकते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में समकालीन नवाचार को प्रेरित करने के लिए भी किया जा सकता है। तेजी से बदलते प्रौद्योगिकी–संचालित समाज और दुनिया में किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन की गुणवत्ता और सामुदायिक कल्याण का अत्यधिक महत्व है।

आधुनिक युग में विचारकों व वैज्ञानिकों ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा दर्शन में प्राचीन भारतीय उपलब्धियों की महत्व को पहचाना है। भारतीय ज्ञान प्रणाली दुनिया को ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है। प्रकृति के साथ सद्भाव और सामंजस्य से रहने के महत्व पर जोर दिया जाता है। योग और आयुर्वेद जैसे अभ्यास समग्र स्वास्थ्य, प्रकृति और उसके तत्वों के प्रति श्रद्धा व कल्याण पर ध्यान केंद्रित करती है। कुल मिलाकर, प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में अंतर्निहित वैज्ञानिक अवधारणाओं को जब दर्शन और आध्यात्मिकता के साथ एकीकृत किया जाता है, तो वे मानव कल्याण में सुधार के लिए एक समय दृष्टिकोण प्रदान करती हैं।

प्रत्येक समाज का अपना धर्म और संस्कृति होती है। सभी उस धर्म और संस्कृति को अपना कर चलते हैं। उसका अनुसरण करते हुए व्यक्तिगत आचरण तो करते ही हैं अन्य को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह ऐसी व्यवस्था होती है जिसमें चीजें एक से दूसरे में हस्तांतरित होती रहती हैं। एक कवि का जो प्रदेय होता है वह ये कि धर्म और संस्कृति के वास्तविक और व्यावहारिक परिदृश्य से समाज को अवगत कराए और उसका ध्यान समन्वयशील प्रवृत्ति के विकास की तरफ आकर्षित कर सके।

पंजाब का हिंदी कवि भी अपनी कविताओं में चली आ रही भारतीय ज्ञान परंपरा का निर्वहन करता दिखता है। भारतीय संस्कृति से धार्मिक कृत्यों में वृक्ष पूजा का अत्यधिक महत्व है। भारतीय संस्कृति में वृक्षों की जितनी महिमा–गरिमा का उल्लेख किया गया है, सम्भवतः और किसी देश की संस्कृति में देखने को नहीं मिलता है। भारतीय संस्कृति में वृक्ष मानव के लिए स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रमुख घटक के रूप में माने जाते हैं सबसे

प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है –

भूर्जज्ञ उत्तान पदो .... (ऋग्वेद् 10/72/4)

अर्थात्, हमारी पृथ्वी वृक्ष से उत्पन्न हुई है।

परम्परा के कैनवास से देखें तो बच्चों की सलामती का दुआ माँगना और ईश्वर को संरक्षक के रूप में देखना भारत की ही परम्परा रही है। यहाँ की परम्परा में आदमी से ज्यादा विश्वास पेड़–पौधों और आस्था–श्रद्धा पर किया जाता है जो अनवरत जारी है। शुभदर्शन जैसे कवि अपनी कविताओं में माँ की वह छवि दिखाते हैं जो वास्तविकतः परम्पराओं के अनुसरण से बनती है। एक माँ एक बच्चे की सलामती की दुआ किस तरह माँगती है और किस तरह उसके बेहतरी के लिए प्रकृति के अंग–संग पर विश्वास करती है, संघर्ष के जख्म के इस कवितांश में देख सकते हैं–

पीपल के गिर्द धागा बांध
लाखों दुआएँ माँगती थी माँ
दुआएँ मेरी उम्र की/खुशहाली की
घर–परिवार में शांति की
विष्णु रूप है यह/'सदके जाईए' कह
बंद आंखों से/कानों को छूते हुए
अपने किए/अनकिए
गुनाहों से तौबा करती।[1]

भारतीय संस्कृति में माता–पिता दोनों को पूज्य माना गया है। माता–पिता को पूजनीय (देवता समान) मानने की शिक्षा मुख्य रूप से तैत्तिरीय उपनिषद (शिक्षावल्ली, अनुवाक 11) में दी गई है, जो यजुर्वेद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है : 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव', जिसका अर्थ है माता और पिता देवता के समान हैं। इस प्रसंग में गणेश और कार्तिकेय की कथा मुख्य रूप से सर्वविदित है जो शिव पुराण और गणेश पुराण से ली गई है। शिकायत किये बिना' कविता में 'कार्तिकेय' और 'गणेश' का उदाहरण देते हुए सुरेश नायक ने गणेश की समृद्धि और सम्पन्नता की बात की है तो उसके पीछे माता–पिता का होना ही बताया है। रंग आ जाते हैं! संग्रह में सुरेश नायक लिखते हैं :–

माता–पिता के आदेश पर
कार्तिकेय तो चले गए
मयूर वाहन पर
पृथ्वी का चक्कर लगाने
अपने मूषक वाहन पर
सवार हुए बिना गणेश ने
कर ली परिक्रमा
शंकर–पार्वती के चारों ओर
और कहा

माता-पिता ही हैं जगत
सन्तान के लिए/इसलिए
उनकी ही परिक्रमा
कर रहा हूँ/क्योंकि
माता-पिता ही/जगत से सन्तान का
परिचय कराते हैं।[2]

नदियों में गंगा नदी को भारतीय धर्म एवं संस्कृति में विशेष और माता तुल्य स्थान प्राप्त है। देवी सुरेश्वरी भगवती गंगे है, यह श्लोक शंकराचार्य द्वारा रचित माना जाता है। यह श्लोक गंगा को पापों से मुक्ति दिलाने वाली, सुख प्रदान करने वाली और भवसागर से तारने वाली माता के रूप में बताता है।

देवि सुरेश्वरि भगवति गंगे (श्री गंगा स्तोत्रम्)

मोक्षदायिनी, प्राणदायिनी गंगा के जल को सबसे पवित्र माना जाता है पर आज मानव इसे भी मैला कुचला करने में कोई झिझक नहीं करता। जिन नदियों ने मानव को अपनी प्यास बुझाने हेतु शुद्ध जल दिया तथा उदर पूर्ति हेतु भूमि की सिंचाई के लिए अपना जल उपलब्ध करवाया उन नदियों के प्रति मानव कृतज्ञ होने के स्थान पर उन्हीं के जल को दूषित कर रहा है। नदियों के साथ किया जाने वाला मानव का ऐसा व्यवहार सच में ही निंदनीय है। इस शोचनीय स्थिति को पंजाब का वर्तमान हिंदी कवि गंगा नदी के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करता है –

निर्मल-विष दूषित-अमृत जल-गंगा।[3]

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का प्रतिपालन करते हुए एवं भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भागभवेत्।। (बृहदारण्यक उपनिषद)

का पालन करते हुए पंजाब का कवि एक ऐसी संस्कृति बनाकर रखना चाहता है जहाँ समन्वय और सामंजस्य हो, न कि अलगाव और एक–दूसरे के बीच ईर्ष्या–द्वेष। पंजाब का परिवेश वैसे भी तमाम संकीर्णताओं को जगह नहीं देता है। सन्धि रेखा पर खड़ी मैं में शशि प्रभा अपनी कविताओं के माध्यम से एक ख्वाब देखती हैं और उस ख्वाब के साकार होने की परिकल्पना कुछ इस तरह करती हैं –

ख्वाबों में मेरे
स्नेह, सौहार्द, भाईचारा
स्वर्ग-बनते-/घर, गाँव, शहर
सोना उगलते खेत/भरपूर खलिहान
सबके सिर पर छत/पेट में रोटी
बदन पर कपड़ा/हर घर पानी
बिजली हर घर/सारी वसुधा
एक कुटुम्ब/न कोई दुश्मन।[4]

इस तरह पंजाब के इक्कीसवीं सदी के हिंदी कवि शाश्वत भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की वापसी का

स्वप्न देखते हैं। वे एक ओर विसंगतियों को अभिव्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर शाश्वत भारतीय संस्कृति के अनुसरण को ही उनका समाधान बताते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. दर्शन, शुभ. 'संघर्ष के जख्म'. युक्ति प्रकाशन, पृ. 12, संस्करण 2011
2. नायक, सुरेश. 'रंग आ जाते हैं!. ट्वेंटी फर्स्ट सेंचरी पब्लिकेशन, पृ. 44, संस्करण 2012
3. कुमार, डॉ. विनोद. संघर्ष के साथ–साथ. दिल्ली पुस्तक सदन, पृ. 13, संस्करण 2018
4. प्रभा, शशि. 'संधि रेखा पर खड़ी मैं'. अयन प्रकाशन, पृ. 62, संस्करण 2013

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 126-129
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Food Adulteration and the Necessity of a Sattvic Diet

Ms. Priya kumari, Research Scholar,
Dr. Reshma Xalxo, Associate Professor
Department of Home Science, Ranchi University, Ranchi, Jharkhand, India.

1. Introduction : The Crisis of Purity :

The 21st century is witnessing a paradoxical crisis: while food is more abundant than ever, its "purity" (*Shuddhata*) is at an all-time low. Food is the fundamental building block of human existence not just for the physical body (*Annamaya Kosha*) but also for the mind (*Manomaya Kosha*). The rise of industrial processing and unethical commercial gain has led to widespread food adulteration, which poses a direct threat to public health. This paper argues that the solution to this modern challenge lies in the ancient, time-tested tradition of the Sattvic Diet.[1]

2. Conceptualizing Food Adulteration :

Food adulteration is the legal and ethical debasement of food quality. In the Indian market context, this ranges from simple "intentional" additions to "incidental" contamination.

- **Chemical Adulterants :** The use of Calcium Carbide for ripening fruits, Metanil Yellow in pulses, and Formalin in perishables.
- **Economic Adulteration :** Adding cheaper substitutes like palm oil in ghee or papaya seeds in black pepper to increase profit margins.
- **The Sedentary Risk :** For workers in sedentary roles, adulterated food is even more dangerous as their metabolic rate is lower, leading to a faster accumulation of toxins (*Ama*) in the body.

3. The Physiological Impact of "Tamasic" Contaminants :

Modern adulterated food falls under the category of *Tamasic* food—that which is heavy, dull, and promotes disease.

- **Gut-Brain Axis :** Contaminants disrupt the gut microbiome, which is now scientifically linked to mental health issues like anxiety and depression.
- **Metabolic Syndrome :** Artificial colors and preservatives are linked to insulin resistance and obesity, especially in urban populations with limited physical activity.

- **Carcinogenic Risks :** Long-term exposure to non-permitted food colors (like Rhodamine B) acts as a slow poison, damaging hepatic and renal functions.[2]

4. **The Philosophy of Sattvic Ahara :**

The *Sattvic* diet is not just about being vegetarian; it is about the "Vibration" and "Purity" of the food. According to the *Bhagavad Gita* and *Charaka Samhita*, Sattvic food is :

- **Ayushya :** Promotes longevity.
- **Bala :** Provides strength.
- **Arogya :** Ensures freedom from disease.
- **Preeti :** Gives mental satisfaction.

In a Sattvic framework, food must be consumed in its most natural state. This means avoiding the "Three Whites" (Refined Sugar, Refined Flour, and Excess Salt) which are often the carriers of modern adulterants.[3]

5. **Why is a Sattvic diet a "necessity" today?**

- **Bioavailability : The Efficiency of Nutrient Uptake :**

Bioavailability refers to the proportion of a nutrient that is digested, absorbed, and utilized by the body.

- **Synergistic Complexity :** Sattvic foods (like whole grains, nuts, and seeds) contain naturally occurring enzymes and co-factors that assist in their own digestion. For example, the vitamin E in whole almonds is more bioavailable than synthetic versions because it is accompanied by healthy fats that aid absorption.
- **The "Anti-Nutrient" Problem in Adulterated Food :** Modern processed foods often contain synthetic preservatives and stabilizers that can bind to minerals like Calcium and Iron, making them unabsorbable. A Sattvic diet eliminates these "interfering" chemicals, ensuring the body actually receives the nutrition listed on the label.
- **Cellular Recognition :** The body recognizes natural molecular structures more easily than chemically altered or "ultra-processed" ones, leading to less metabolic stress during the breakdown process.[4]
- **Detoxification: Combating the "Body Burden" :**

In a world of microplastics and heavy metal adulteration, the body's detoxification pathways (the liver and kidneys) are often overwhelmed.

- **Natural Chelating Agents:** Specific Sattvic ingredients like **Cilantro (Dhaniya)** and **Turmeric (Haldi)** contain bioactive compounds (like curcumin and chlorophyll) that can bind to heavy metals and environmental toxins, helping to escort them out of the bloodstream.

- **Fiber as a Bio-Sponge :** The high fiber content in a plant-based Sattvic diet acts as a physical "broom" for the colon. It prevents the re-absorption of waste products and bile, which is crucial for those in sedentary roles where digestion is naturally slower.
- **Phyto-antioxidants :** Fresh, seasonal greens provide a flood of antioxidants that neutralize "Reactive Oxygen Species" (ROS) caused by the consumption of adulterated oils and chemicals.
- **Hormonal Balance : Achieving "Hormonal Harmony"**

The endocrine system is highly sensitive to "Endocrine Disrupting Chemicals" (EDCs) often found in food additives and plastic packaging.

- **Insulin Sensitivity :** Sattvic foods have a lower Glycemic Index (GI). By preventing rapid spikes in blood sugar, the diet protects the pancreas and prevents insulin resistance—the root cause of **PCOS** and **Type 2 Diabetes**.
- **Phytoestrogens and Thyroid Health :** A whole-food, plant-based approach provides natural lignans and isoflavones that help balance estrogen levels. Furthermore, by removing inflammatory "Tamasic" triggers (like excess caffeine, refined flour, and chemical dyes), the systemic inflammation that often leads to **Autoimmune Thyroiditis** is significantly reduced.
- **The Gut-Hormone Connection :** Since 90% of the body's serotonin (the "feel-good" hormone) is produced in the gut, a pure Sattvic diet ensures a healthy microbiome, which directly influences mental clarity and emotional stability—key components of your research on "Hormonal Harmony."[5]

6. Practical Challenges and Global Future :

Transitioning to a Sattvic diet in a globalized world faces challenges :

- **Availability :** Finding "True" organic produce in urban centers like Mumbai or Ranchi.
- **Cost :** The "Organic Premium" makes pure food expensive for the common man.
- **Policy :** The need for stricter FSSAI enforcement to ensure that what is labeled "Natural" is actually free from hidden chemicals.

7. Conclusion :

The journey from "Adulterated" to "Sattvic" is a journey from "Illness" to "Wellness." As we face global health uncertainties, the "Eternal Tradition" of pure eating provides a shield against the "Modern Challenges" of chemical toxicity. For the global future, the integration of Sattvic principles into mainstream clinical dietetics is not just an option—it is a mandatory step for human survival.

8. References (Standardized Academic Format)

- Food Safety and Standards Authority of India (FSSAI). (2021). *Manual of Methods of Analysis of Foods: Adulterants, Contaminants and Toxins*. New Delhi: Ministry of Health and Family

Welfare. pp. 12–45.

- Sharma, P. V. (Trans.). (2014). *Charaka Samhita of Agnivesa (Vol. 1: Sutrasthana, Chapter 27)*. Varanasi: Chaukhambha Orientalia. pp. 380–410.
- Singh, J., & Aneja, R. P. (2022). Impact of Food Additives and Adulterants on Human Health. *Global Journal of Health Science*, 14(3), pp. 56–68.
- Srilakshmi, B. (2019). *Food Science (7th ed.)*. New Delhi: New Age International Publishers. pp. 288–305.
- World Health Organization (WHO). (2023). *Global Report on Food Safety and Nutrition*. Geneva: WHO Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 130-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा : हिन्दी साहित्य के आलोक में

डॉ. प्रिया सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ।

सारांश :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे पुरानी, विशाल और समृद्ध ज्ञान–संस्कृतियों में से एक मानी जाती है। इसका विकास हजारों वर्षों के चिंतन, अनुभव, साधना तथा सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया से हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार केवल धार्मिक ग्रन्थों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के समग्र स्वरूप को समझने और उसे व्यवस्थित करने का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इसके मूल स्रोत वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शनशास्त्र, महाकाव्य, लोकपरंपराएँ तथा सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन सभी स्रोतों में मानव जीवन, प्रकृति, समाज, शिक्षा, नैतिकता, अध्यात्म तथा जीवन–मूल्यों से संबंधित विचारों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता यह है कि यह केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित नहीं है, बल्कि व्यवहारिक जीवन से भी गहराई से जुड़ी हुई है। इसका उद्देश्य केवल सूचना या ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है। भारतीय चिंतन परंपरा में ज्ञान को आत्मबोध तथा आत्मानुभूति का माध्यम माना गया है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना या आर्थिक उन्नति करना नहीं रहा, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करना भी रहा है। इस परंपरा में सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सहिष्णुता, विश्वबंधुत्व तथा मानव कल्याण जैसे मूल्यों को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। हिन्दी साहित्य ने भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण, संवर्धन तथा प्रसार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है क्योंकि यह समाज की चेतना, विचारधारा, संस्कृति और जीवन–मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध स्वरूपों की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है। आदिकालीन साहित्य में वीरता, कर्तव्य तथा सामाजिक मूल्यों की स्थापना दिखाई देती है, जबकि भक्तिकाल में भक्ति, मानवता, समानता तथा आध्यात्मिक चेतना को विशेष महत्त्व दिया गया।

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारत में ज्ञान को केवल शिक्षा प्राप्त करने का साधन नहीं माना गया, बल्कि जीवन के समग्र विकास का माध्यम माना गया है। शुक्ल जी के अनुसार– "हिन्दी साहित्य भारतीय समाज और संस्कृति का दर्पण है। साहित्य के माध्यम से समाज के विचार, जीवन–मूल्य तथा सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त होती है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों में भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यापक

अभिव्यक्ति दिखाई देती है।"[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख आधार –

भारतीय ज्ञान परंपरा अनेक आयामों से निर्मित एक व्यापक तथा समन्वित ज्ञान प्रणाली है। यह केवल धार्मिक या दार्शनिक विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा व्यवहारिक पक्षों को भी समाहित करती है। इसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

क. **वेद और उपनिषद –** 'वेद' शब्द संस्कृत धातु 'विद्' से बना है, जिसका अर्थ है– जानना या ज्ञान प्राप्त करना। भारतीय परंपरा में चार वेद माने गए हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। शुक्ल जी के अनुसार– "साहित्य किसी एक व्यक्ति की कल्पना का परिणाम मात्र नहीं होता, बल्कि वह समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक स्वरूप भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं से प्रभावित रहा। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा लोक परंपराओं ने हिन्दी साहित्य को विषयवस्तु, आदर्श और जीवन–दृष्टि प्रदान की। इस प्रकार हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का वाहक बनकर विकसित हुआ।"[2]

उपनिषद वेदों का अंतिम भाग माने जाते हैं, इसलिए इन्हें 'वेदांत' भी कहा जाता है। 'उपनिषद' शब्द का अर्थ है– गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। इस सन्दर्भ में डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं– "भारतीय दर्शन का आधार 'अनुभूति' है। पश्चिमी दर्शन जहाँ अधिकतर बुद्धि और तर्क पर आधारित माना जाता है, वहीं भारतीय दर्शन आत्मानुभूति, साधना और आध्यात्मिक अनुभव को अधिक महत्त्व देता है। यहाँ दर्शन केवल सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन–पद्धति है। मनुष्य का लक्ष्य आत्मा और परमात्मा के संबंध को समझना तथा मोक्ष की प्राप्ति करना माना गया है।[3]

ख. दर्शन और अध्यात्म – भारतीय ज्ञान परंपरा का आधार केवल भौतिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के गहन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्षों को भी समाहित करती है। राधाकृष्णन के अनुसार– "भारतीय दर्शन का मूल उद्‌देश्य सत्य की खोज तथा आत्मा की अनुभूति है। भारतीय मनीषियों ने जीवन के रहस्यों को समझने के लिए केवल तर्क का सहारा नहीं लिया, बल्कि ध्यान, साधना और अनुभूति को भी महत्त्व दिया। इस कारण भारतीय दर्शन में ज्ञान और आचरण का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई देता है। यहाँ दर्शन केवल विचारों का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला है।[4]

ग. नैतिक एवं सामाजिक मूल्य – भरतीय ज्ञान परंपरा केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों पर भी विशेष बल देती है। भारतीय संस्कृति में नैतिकता को जीवन का आधार माना गया है। विद्यालंकार के अनुसार– "भारत में प्राचीन काल से ही जीवन को केवल भौतिक सुखों तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि आत्मिक उन्नति और लोककल्याण को भी महत्त्व दिया गया। इसी कारण भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे आदर्श विकसित हुए।[5]

घ. लोक संस्कृति एवं लोक ज्ञान – भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। इसमें केवल वेद, उपनिषद और दर्शन ही नहीं, बल्कि लोकजीवन से प्राप्त अनुभवजन्य ज्ञान भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। द्विवेदी जी के अनुसार– "भारतीय संस्कृति का मूल स्वर मानवता और सहअस्तित्व है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा ने सदैव विभिन्न मतों, विश्वासों और जीवन–पद्धतियों को स्वीकार किया है। यही कारण है कि यहाँ

वैदिक, बौद्ध, जैन, भक्ति और सूफी परम्पराएँ एक साथ विकसित हुईं और उन्होंने भारतीय जीवन को समृद्ध बनाया। भारतीय संस्कृति का यह समन्वयी स्वरूप उसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से विशिष्ट बनाता है।[6]

ङ **मानवता और विश्वबंधुत्व** – भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार मानव कल्याण, सह–अस्तित्व और विश्वबंधुत्व की भावना है। भारतीय संस्कृति ने प्राचीन काल से ही समस्त मानव जाति को एक परिवार मानने का संदेश दिया है। राधाकृष्णन के अनुसार– "उपनिषदों ने यह प्रतिपादित किया कि समस्त विश्व के मूल में एक ही परम सत्ता विद्यमान है, जिसे ब्रह्म कहा गया है। मनुष्य की आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है, इसलिए आत्मा और परमात्मा में मूलतः कोई भेद नहीं है। अज्ञान के कारण मनुष्य स्वयं को सीमित मानता है, जबकि ज्ञान प्राप्त होने पर वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है।[7]

हिन्दी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा –

भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता तथा लोकजीवन के समन्वित स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। द्विवेदी जी के मतानुसार– "हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति की निरंतरता का वाहक है। इसमें भारतीय ज्ञान–परम्परा, लोकविश्वास, धार्मिक चेतना और सामाजिक अनुभवों का समन्वय दिखाई देता है। साहित्य ने समय–समय पर समाज को नई दृष्टि और नई चेतना प्रदान की है।"[8]

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा – हिन्दी साहित्य का आदिकाल भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रारंभिक अभिव्यक्तियों का महत्वपूर्ण काल माना जाता है। यह काल लगभग 10वीं से 14वीं शताब्दी तक माना जाता है। शुक्ल जी के अनुसार– "हिन्दी साहित्य का आरम्भ लोकजीवन की अनुभूतियों और जनमानस की भावनाओं से हुआ। प्रारम्भिक हिन्दी काव्य में वीरगाथाओं, धार्मिक आस्थाओं और लोक–परम्पराओं का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। उस समय का साहित्य समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता था, इसलिए उसमें जनता के जीवन–संघर्ष, भावनाएँ और आदर्श स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हुए।"[9]

भक्तिकाल और ज्ञान परंपरा – भक्तिकाल और ज्ञान परंपरा का गहरा सम्बन्ध है। भक्तिकाल में ज्ञान का स्वरूप केवल शास्त्रीय या दार्शनिक ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि भक्ति, आत्मज्ञान, मानवता और आध्यात्मिक चेतना से भी जुड़ा हुआ था। इस काल के संतों और कवियों ने सरल भाषा में लोगों को ईश्वर–भक्ति, नैतिक मूल्यों और जीवन के सत्य का ज्ञान प्रदान किया। उदाहरण के लिए, कबीर ने अंधविश्वास और बाहरी आडंबरों का विरोध करते हुए सच्चे ज्ञान और आत्मबोध पर बल दिया, जबकि तुलसीदास और सूरदास ने भक्ति के माध्यम से जीवन–मूल्यों और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार किया।

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।"[10]

कबीर का मूल संदेश मानवता और आत्मबोध का था। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक सार्वभौमिक मानव धर्म की स्थापना करना चाहते थे। उनके अनुसार सभी मनुष्य एक ही परम सत्ता की संतान हैं, इसलिए उनमें भेदभाव का कोई औचित्य नहीं है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा – आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा का सम्बन्ध अत्यन्त गहरा और व्यापक है। भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद, उपनिषद, दर्शन, संस्कृति, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिकता, लोकजीवन, मानवता और सामाजिक चिंतन सम्मिलित हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य ने इन मूल्यों और विचारों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए समाज की बदलती परिस्थितियों के अनुरूप उनका विकास

किया।

मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसे समाज का दर्पण बनाया। उन्होंने अपने साहित्य का आधार सामाजिक यथार्थ, मानवता और समानता को बनाया तथा समाज की वास्तविक परिस्थितियों को अत्यन्त सहज और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार – "भारत की सांस्कृतिक शक्ति उसकी उदारता और आत्मसात करने की क्षमता में निहित है। भारत में आर्य, द्रविड़, शक, हूण, यूनानी, मुसलमान आदि अनेक जातियाँ और संस्कृतियाँ आईं, किन्तु भारतीय संस्कृति ने उन्हें संघर्ष के स्थान पर समन्वय के माध्यम से आत्मसात किया। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति बहुरंगी होते हुए भी एकता की भावना को बनाए रखती है।"[11]

भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान प्रासंगिकता –

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध ज्ञान परंपराओं में से एक है। इसका आधार वेद, उपनिषद, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता, लोकज्ञान तथा मानवता के मूल्यों पर टिका हुआ है। डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार– "भारतीय मनीषियों ने यह माना कि ब्रह्म ही परम सत्य है और समस्त जगत उसी का विस्तार है। मनुष्य की आत्मा भी उसी परम सत्ता का अंश है, किन्तु अज्ञान के कारण वह स्वयं को सीमित और पृथक मान बैठती है। ज्ञान और साधना के माध्यम से मनुष्य इस अज्ञान को दूर कर अपने वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त कर सकता है।"[12]

नैतिक और मानवीय मूल्यों का संरक्षण – आज के समय में समाज में बढ़ती स्वार्थपरता, हिंसा और नैतिक पतन की समस्याएँ दिखाई देती हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सहिष्णुता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे मूल्यों का संदेश देती है। ये मूल्य समाज में शांति, सद्भाव और मानवता की भावना को मजबूत करते हैं।

योग और आयुर्वेद का महत्व – आधुनिक जीवनशैली के कारण तनाव, मानसिक अशांति और अनेक रोग बढ़ रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग और आयुर्वेद को स्वस्थ जीवन का आधार माना गया है। आज विश्वभर में योग और आयुर्वेद को अपनाया जा रहा है। योग केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन और आत्मिक शांति भी प्रदान करता है।

पर्यावरण संरक्षण की भावना – भारतीय ज्ञान परंपरा प्रकृति को पूजनीय मानती है। वृक्ष, नदियाँ, पर्वत और जीव–जंतुओं के प्रति सम्मान की भावना भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग रही है। वर्तमान समय में पर्यावरण संकट और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं के समाधान के लिए यह दृष्टिकोण अत्यन्त उपयोगी है।

शिक्षा में समग्र विकास – भारतीय शिक्षा–पद्धति केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि चरित्र निर्माण, अनुशासन, नैतिकता और व्यावहारिक ज्ञान पर भी बल देती थी। नई शिक्षा नीति में भी भारतीय ज्ञान परंपरा और मूल्य–आधारित शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल पुस्तकीय ज्ञान या शास्त्रीय सिद्धांतों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह जीवन, प्रकृति, समाज, नैतिकता और ब्रह्मांड के समग्र बोध की एक दीर्घकालीन चिंतन–परंपरा है। इसकी जड़ें वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक फैली हुई हैं। इसका मूल उद्देश्य केवल सूचना प्राप्त करना नहीं, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण विकास–शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति को सुनिश्चित करना

है।

हिन्दी साहित्य सहित भारतीय वाङ्मय की विविध धाराओं ने इस ज्ञान परंपरा के संरक्षण और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, महाकाव्य, दर्शन, संत साहित्य तथा आधुनिक साहित्यिक परंपराओं ने भारतीय ज्ञान के विविध स्वरूपों को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों और विचारधाराओं ने सत्य, अहिंसा, करुणा, सहिष्णुता, लोकमंगल, मानवता और विश्वबंधुत्व जैसे मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है।

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की सांस्कृतिक विरासत नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक महत्वपूर्ण बौद्धिक और नैतिक आधार है। यह मानव जीवन को समग्रता, संतुलन और मानवीय मूल्यों की दिशा प्रदान करती है तथा एक ऐसे समाज के निर्माण की आधारशिला प्रस्तुत करती है जो ज्ञान, नैतिकता और मानव कल्याण पर आधारित हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ0 18
- वही, पृ0 12
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (भाग–1), राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ0 58
- वही, पृ0 22
- विद्यालंकार, सत्यकेतु, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, सरस्वती सदन, नई दिल्ली, पृ0 52
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, भारतीय संस्कृति के स्वर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 112
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (भाग–1), राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ0 91
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 48
- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ0 24
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 45
- दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पृ0 52
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन (भाग–1), राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ0 115

Mob. 8318060518

Email id: singhpriya94515@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 135-142
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में सुशीला टाकभौरे और जया जादवानी के कथा साहित्य में नारी अस्मिता का तुलनात्मक अध्ययन

पूर्णिमा सूर्यवंशी
शोधार्थी, शा.बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर।

प्रस्तावना –

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी को सृष्टि की आधारशिला, शक्ति और संस्कृति की वाहक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक स्त्री की भूमिका सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन में महत्वपूर्ण रही है, किंतु व्यवहारिक स्तर पर उसे अनेक प्रकार की असमानताओं और बंधनों का सामना भी करना पड़ा है। इसी विरोधाभास ने साहित्य में नारी अस्मिता के प्रश्न को अत्यंत प्रासंगिक बना दिया है। समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री के बदलते स्वरूप, उसकी चेतना, संघर्ष और आत्मपहचान को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। सुशीला टाकभौरे और जया जादवानी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण कथाकार हैं, जिनके साहित्य में नारी अस्मिता के विविध आयामों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। टाकभौरे के साहित्य में दलित स्त्री के सामाजिक और आर्थिक संघर्ष के साथ–साथ समानता और न्याय की आकांक्षा प्रमुख रूप से उभरती है, जबकि जादवानी के कथा साहित्य में आधुनिक स्त्री के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व, आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता की खोज को प्रमुखता दी गई है।

यह शोध विषय इन दोनों लेखिकाओं के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसके माध्यम से नारी अस्मिता के सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के बावजूद स्त्री की पहचान, अधिकार और स्वतंत्रता की आकांक्षा समान रूप से महत्वपूर्ण है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में नई दृष्टि प्रदान करती है।

बीज शब्द – भारतीय ज्ञान परंपरा, जीवन संघर्ष, दलित नारी, पीड़ा, घुटन, अत्याचार, दुःख, दर्द मनोविश्लेषणात्मक, अकेलापन, आत्मसंघर्ष और आत्मनिर्णय, संवेदना आदि।

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री की सांस्कृतिक भूमिका –

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वैदिक साहित्य में स्त्री को 'शक्ति', 'माता' और 'सृजन की आधारशिला' के रूप में देखा गया है। गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने यह सिद्ध किया कि स्त्री केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं थी, बल्कि ज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में भी सक्रिय थी। भारतीय संस्कृति में स्त्री को परिवार और समाज की नैतिकता, संस्कार और परंपराओं की संरक्षक माना गया है।

''सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के कारण पाश्चात्य जगत के नारी मुक्ति आन्दोलन से इसमें मूलभूत अंतर यह रहा है कि यह लड़ाई भारतीय नारी द्वारा अपने व्यक्तित्व के लिए नहीं बल्कि सामाजिक उत्थान के लिए विविध समाज सुधारकों द्वारा लड़ी गई।[1] हालाँकि, समय के साथ सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन हुआ और स्त्री की स्वतंत्रता पर कई प्रकार के बंधन लगाए गए। यह विरोधाभास भारतीय समाज और साहित्य दोनों में दिखाई देता है। एक ओर स्त्री को देवी के रूप में पूजने की परंपरा रही, वहीं दूसरी ओर उसे सामाजिक असमानता और शोषण का सामना भी करना पड़ा। आधुनिक साहित्य में इस परंपरा का पुनर्मूल्यांकन किया गया है। अब स्त्री को केवल परंपरा की वाहक नहीं, बल्कि अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री की भूमिका स्थिर नहीं रही, बल्कि समय के साथ विकसित होती रही है।

सुशीला टाकभौरे में हाशिए की स्त्री की आवाज –

सुशीला टाकभौरे का कथा साहित्य दलित स्त्री के जीवन संघर्ष का सशक्त दस्तावेज है। उनकी रचनाओं में समाज के उस वर्ग की पीड़ा और यथार्थ सामने आता है, जिसे लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया। वे दलित स्त्री के अनुभवों को सीधे और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं, जिससे पाठक उस पीड़ा को महसूस कर सके। टाकभौरे की नायिकाएं केवल शोषण की शिकार नहीं हैं, बल्कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त व्यक्तित्व भी हैं। उनके साहित्य में जाति और लिंग आधारित दोहरे शोषण का स्पष्ट चित्रण मिलता है। दलित स्त्री को न केवल सामाजिक भेदभाव झेलना पड़ता है, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी उसे संघर्ष करना पड़ता है। समय बदल गया है। परिस्थितियां बदल चुकी है। पढ़ी लिखी नारी अब विचारों की दृष्टि से सामर्थ्यवान हो गई है। कलम हाथ में आने से लेखन क्षेत्र में वह नारी जागृति का काम कर रही है। अब वह सभी प्रश्नों पर विचार कर सकती है, सभी बेड़ियों को तोड़ सकती है। ऐसा करने पर वह विवाद के घेरे में भले ही आ जाय किन्तु उसका महिला जागृति का उद्देश्य तो पूरा होगा। जहां कहीं भी स्त्री की स्थिति संतोषजनक रही हो वहां का समाज सभी दृष्टि से सम्पन्न कहलाता है। शायद इसीलिए एनी बेसेंट कहती हैं कि ''किसी भी देश की स्त्रियों की स्थिति से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश कितनी उन्नति कर चुका है।''[2]

सुशीला टाकभौरे की लेखनी की धार तीव्र और तीखी हो चली है। इसका प्रमाण इनकी कृति 'तुमने उसे कब पहचाना' में मिलता है। पहला सवाल तो इनकी इस कृति में ही उठता है। इसमें भोग्या नारी की दुर्दशा, उसके पैरों में धर्म के नाम पर डाली गई बेड़ियां, समाज में उत्पन्न रूढ़ियों को खुलकर चुनौती दी गई है। समाज में पुरुषसत्ता आदि पर सवाल उठाये गये हैं। इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि ''उपेक्षा की ठंडक और आक्रोश के तेजाब से नारी व्यक्तित्व को हमेशा रौंधा जाता है।''[3]

जया जादवानी में आधुनिक स्त्री की संवेदनाएँ –

जया जादवानी के कथा साहित्य में आधुनिक स्त्री के मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक पहलुओं का गहन चित्रण मिलता है। उनकी रचनाओं की नायिकाएं शहरी और मध्यमवर्गीय परिवेश से जुड़ी होती हैं, जो अपने जीवन में अनेक प्रकार के मानसिक द्वंद्व और चुनौतियों का सामना करती हैं। उनका साहित्य बाहरी संघर्ष से अधिक आंतरिक संघर्ष पर केंद्रित है। उनकी नायिकाएं अपने अस्तित्व, पहचान और स्वतंत्रता को लेकर लगातार

सोचती रहती हैं। वे यह प्रश्न उठाती हैं कि समाज में उनकी वास्तविक भूमिका क्या है और वे अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को किस प्रकार पूरा कर सकती हैं।[4] दलित नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक जो पीड़ा, घुटन, अत्याचार, दुःख, दर्द, उपेक्षा को सहती रही है। अब इनके विरूद्ध विद्रोह का भाव प्रकट कर रही है शिंकजे का दर्द आत्मकथा में यही विद्रोह निकलकर सामने आता है। आत्मकथा की भूमिका 'मनोगत' में कहती हैं–''बचपन से युवावस्था तक मेरे जीवन के दिन अनेक प्रकार के शिंकजों से जकड़े हुए थे इस जकड़न के कारण मेरे जीवन और व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध होता रहा।''[5] जादवानी की लेखन शैली मनोविश्लेषणात्मक है, जो स्त्री के भीतर चल रहे विचारों और भावनाओं को गहराई से प्रस्तुत करती है। ''उनके साहित्य में अकेलापन, आत्मसंघर्ष और आत्मनिर्णय की प्रक्रिया प्रमुख रूप से दिखाई देती है। इस प्रकार, उनका साहित्य आधुनिक स्त्री की जटिलताओं और संवेदनाओं को प्रभावी ढंग से व्यक्त करता है।''[6]

सुशीला टाकभौरे की अनुभव आधारित यथार्थ –

सुशीला टाकभौरे के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका अनुभव आधारित यथार्थ है। उनके लेखन में जीवन की सच्चाइयों का सीधा और प्रभावशाली चित्रण मिलता है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों और समाज में देखे गए अन्याय, शोषण और भेदभाव को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। उनकी कहानियों में कृत्रिमता नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों का सजीव चित्रण है। यही कारण है कि उनका साहित्य पाठकों को गहराई से प्रभावित करता है और उन्हें सोचने के लिए प्रेरित करता है। स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूरी समानता होनी चाहिए।[7] उनके पात्र आम जीवन से जुड़े हुए होते हैं, जिनकी समस्याएं वास्तविक और प्रासंगिक होती हैं। टाकभौरे का यह यथार्थवादी दृष्टिकोण समाज की कुरीतियों को उजागर करता है और परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। उनका साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता का सशक्त साधन है।

जया जादवानी के कथा साहित्य में आंतरिक चेतना का चित्रण –

जया जादवानी के कथा साहित्य में स्त्री की आंतरिक चेतना का अत्यंत सूक्ष्म और प्रभावशाली चित्रण मिलता है। वे बाहरी घटनाओं से अधिक स्त्री के मनोभावों, विचारों और अनुभवों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। उनकी नायिकाएं अपने भीतर चल रहे संघर्षों, इच्छाओं और असंतोष को समझने का प्रयास करती हैं। उनका लेखन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समृद्ध है, जिसमें स्त्री के अंतर्मन की जटिलताओं को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। वे दिखाती हैं कि स्त्री का संघर्ष केवल समाज से नहीं, बल्कि स्वयं से भी होता है। स्त्री चिंतन का एक नया पर्व वर्तमान समय में शुरू हुआ है। स्त्री जो कभी हाशिए पर थी आज वह अपने सकारात्मक पक्ष को उजागर कर रही है। ग्रामीण महिलाएं शहरी महिलाओं की अपेक्षा अधिक साहस और संकल्प लिए होती है। इस सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं ''गांव की स्त्रियों शहरी मध्यवर्ग की स्त्रियों की तरह अपनी स्वतन्त्रता पर विमर्श नहीं करती, स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न और संघर्ष करती है। इसलिए उनमें संकल्प से उपजी शक्ति का विकास होता है।''[8] ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक चेतना अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रवृति होती है। आत्म पहचान की यह प्रक्रिया उनके साहित्य का मुख्य विषय है। जादवानी की शैली संवेदनशील और भावनात्मक है, जो पाठक को

स्त्री के अनुभवों से जोड़ती है। इस प्रकार, उनका साहित्य स्त्री के आंतरिक संसार को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनता है।

स्त्री–अस्तित्व की पहचान का संघर्ष –

सुशीला टाकभौरे और जया जादवानी दोनों के कथा साहित्य में स्त्री–अस्तित्व की पहचान का संघर्ष एक केंद्रीय विषय के रूप में उभरता है। स्त्री केवल सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने के लिए निरंतर प्रयास करती है। टाकभौरे के साहित्य में यह संघर्ष अधिक सामाजिक और संरचनात्मक है, जहाँ दलित स्त्री जाति और लिंग दोनों स्तरों पर अपनी पहचान के लिए लड़ती है। वहीं जादवानी के साहित्य में यह संघर्ष अधिक मनोवैज्ञानिक और आत्मकेंद्रित है, जहाँ स्त्री अपने भीतर की आवाज को पहचानने और उसे स्वीकार करने का प्रयास करती है। यह संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि आंतरिक असमंजस से भी जुड़ा होता है। स्त्री को यह तय करना होता है कि वह परंपराओं का पालन करे या अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जिए। इस द्वंद्व में उसकी पहचान निरंतर बदलती और विकसित होती रहती है।

नारी मुक्ति आन्दोलन के मूल में नारी मुक्ति चेतना है जिसने 17–18 वीं. सदी में (अमेरिका) मुक्ति आन्दोलन को जन्म दिया है और सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। अर्थव्यवस्था का असमान स्तर नारी चेतना के स्तर को बदल देता है– ''भारत के शहरों में शायद यही आर्थिक अधीनता और मुसीबत की जड़ मानी जाती है।''[9] वर्तमान देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास को गति देने में नारी का भी अहम स्थान है। तीव्र गति से विकास में सहायक आज की नारी वैदिक कालीन नारी के समकक्ष पुनः आ खड़ी है। नारी चेतना में भरपूर आत्मविश्वास के साथ नारी, अस्मिता की पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत है। सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के कारण पाश्चात्य जगत के नारी मुक्ति आन्दोलन से इसमें मूलभूत अंतर यह रहा है कि यह लड़ाई भारतीय नारी द्वारा अपने व्यक्तित्व के लिए नहीं बल्कि सामाजिक उत्थान के लिए विविध समाज सुधारकों द्वारा लड़ी गई।[10]

सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध –

दोनों लेखिकाओं के कथा साहित्य में स्त्री का स्वर केवल पीड़ित का नहीं, बल्कि प्रतिरोध करने वाले व्यक्तित्व का भी है। सुशीला टाकभौरे के साहित्य में यह प्रतिरोध अधिक स्पष्ट और उग्र रूप में दिखाई देता है, जहाँ स्त्री खुलकर सामाजिक अन्याय, जातिगत भेदभाव और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध खड़ी होती है। उनकी नायिकाएं अन्याय को सहन करने के बजाय उसका विरोध करती हैं और परिवर्तन की दिशा में कदम बढ़ाती हैं। दूसरी ओर, जया जादवानी के साहित्य में यह प्रतिरोध अपेक्षाकृत शांत और सूक्ष्म होता है। उनकी नायिकाएं खुलकर विद्रोह नहीं करतीं, बल्कि अपने निर्णयों और आत्मनिर्णय के माध्यम से व्यवस्था को चुनौती देती हैं। यह प्रतिरोध मानसिक और वैचारिक स्तर पर अधिक प्रभावी होता है।

समय बदल गया है। परिस्थितियां बदल चुकी है। पढ़ी लिखी नारी अब विचारों की दृष्टि से सामर्थ्यवान हो गई है। कलम हाथ में आने से लेखन क्षेत्र में वह नारी जागृति का काम कर रही है। अब वह सभी प्रश्नों पर विचार कर सकती है, सभी बेड़ियों को तोड़ सकती है। ऐसा करने पर वह विवाद के घेरे में भले ही आ जाये किन्तु उसका महिला जागृति का उद्देश्य तो पूरा होगा। जहां कहीं भी स्त्री की स्थिति संतोषजनक रही हो वहां

का समाज सभी दृष्टि से सम्पन्न कहलाता है। शायद इसीलिए एनी बेसेंट कहती हैं कि ''किसी भी देश की स्त्रियों की स्थिति से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश कितनी उन्नति कर चुका हैं।[11]

आत्मसम्मान की स्थापना –

नारी अस्मिता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व आत्मसम्मान है, जो दोनों लेखिकाओं के साहित्य में प्रमुखता से दिखाई देता है। सुशीला टाकभौरे की नायिकाएं अपने आत्मसम्मान के लिए कठोर संघर्ष करती हैं। वे अपमान, शोषण और भेदभाव को सहन नहीं करतीं और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती हैं। उनके लिए आत्मसम्मान केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक गरिमा का प्रश्न भी है। सुशीला टाकभौरे कहती हैं– ''जो दलित रेखा से नीचे के लोग है वो इक्कीसवीं सदी के काल में अपनी पुरानी स्थिति से जरा भी ऊपर नहीं उठ सके है। अभी भी उनकी स्थिति वहीं है जो पहले थी।''[12] वहीं जया जादवानी के साहित्य में आत्मसम्मान अधिक आंतरिक और व्यक्तिगत स्तर पर दिखाई देता है। उनकी नायिकाएं अपने भीतर की कमजोरी, भय और असुरक्षा से लड़कर आत्मसम्मान स्थापित करती हैं। वे अपने निर्णय स्वयं लेने का साहस करती हैं और समाज के दबावों के बावजूद अपनी पहचान बनाए रखती हैं। दोनों ही द्ष्टिकोण यह स्पष्ट करते हैं कि आत्मसम्मान नारी सशक्तिकरण का मूल आधार है और इसके बिना नारी अस्मिता अधूरी रहती है।

परिवार और समाज के बीच द्वंद्व –

स्त्री का जीवन अक्सर परिवार और समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाने में बीतता है। दोनों लेखिकाओं के साहित्य में यह द्वंद्व प्रमुख रूप से दिखाई देता है। सुशीला टाकभौरे के साहित्य में यह संघर्ष अधिक सामाजिक दबावों से जुड़ा है, जहाँ स्त्री को पारंपरिक भूमिकाओं में बांधने का प्रयास किया जाता है। दूसरी ओर, जया जादवानी के साहित्य में यह द्वंद्व अधिक व्यक्तिगत स्तर पर उभरता है। उनकी नायिकाएं अपने परिवार की अपेक्षाओं और अपनी इच्छाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती हैं। वे यह सोचती हैं कि क्या वे अपने सपनों को पूरा करें या परिवार के लिए अपने इच्छाओं का त्याग करें। यह द्वंद्व स्त्री के मानसिक तनाव और आत्मसंघर्ष को जन्म देता है। दोनों लेखिकाएं इस स्थिति को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि नारी अस्मिता के विकास में यह संघर्ष एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

स्त्री–स्वतंत्रता की बदलती परिभाषा –

समकालीन साहित्य में स्त्री–स्वतंत्रता की परिभाषा में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सुशीला टाकभौरे के साहित्य में स्वतंत्रता का अर्थ सामाजिक बंधनों और जातिगत भेदभाव से मुक्ति है। ''सामाजिक व सांस्कृति परिप्रेक्ष्य में विभिन्नता के कारण पाश्चात्य जगत के नारी मुक्ति आन्दोलन से इसमें मूलभूत अन्तर यह रहा है कि यह समाज सुधारकों द्वारा लड़ी गई लड़ाई भारतीय नारी द्वारा अपने व्यक्तित्त्व के लिये नहीं, बल्कि सामाजिक उत्थान के लिये दलित स्त्री गुलामों में गुलाम है।''[13] अब वह अपनी वेदना और व्यथा को स्पष्ट करना चाहती है। उनकी नायिकाएं समान अधिकार और सम्मान की मांग करती हैं। वहीं जया जादवानी के साहित्य में स्वतंत्रता का अर्थ मानसिक, भावनात्मक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से है। उनकी नायिकाएं अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की आकांक्षा रखती हैं और अपने अस्तित्व को स्वतंत्र रूप से जीना चाहती हैं। दोनों लेखिकाएं स्त्री–स्वतंत्रता को अलग–अलग संदर्भों में प्रस्तुत करती हैं, जो यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता की अवधारणा समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है।

दलित विमर्श बनाम स्त्री विमर्श का अंतर –

सुशीला टाकभौरे का साहित्य मुख्यतः दलित विमर्श से जुड़ा है, जिसमें जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक असमानता प्रमुख विषय हैं। उनकी रचनाएं यह दिखाती हैं कि दलित स्त्री को दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत, जया जादवानी का साहित्य मुख्यतः स्त्री विमर्श पर केंद्रित है, जिसमें लैंगिक असमानता, मानसिक संघर्ष और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे मुद्दे प्रमुख हैं। यह अंतर दोनों लेखिकाओं के दृष्टिकोण को अलग बनाता है। एक ओर सामाजिक संरचना और वर्गभेद पर जोर है, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत अनुभव और मनोवैज्ञानिक पक्ष पर। दलित को उसकी जाति के कारण हीनता का बोध होता है और स्वयं काफी अपमानित महसूस करता है। नैमिशराय जी कहते हैं कि ''हम कहीं भी जायें, कितनी भी बड़ी कक्षा में पढ़े, जातियां हमेशा पीछा नहीं छोड़ती। जहां भी हम जाते, वे भी बिना किसी रोक–टोक के जा पहुंचती थी। बल्कि हमारे साथ–साथ चलती, उठती बैठती थी। कभी–कभी तो सांप भी केंचुली त्याग देता है, पर आदमी अपनी जाति को केंचुली नहीं छोड़ पाता। वह जीवन से मृत्यु तक उसी केचुली के भीतर रहता है।''[14] दोनों विमर्श मिलकर नारी अस्मिता की व्यापक समझ प्रदान करते हैं।

दोनों लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री परंपराओं को चुनौती देती हुई दिखाई देती है। सुशीला टाकभौरे के यहाँ यह टकराव सामाजिक अन्याय और भेदभाव के विरुद्ध है। उनकी नायिकाएं पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नए मूल्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। जया जादवानी के साहित्य में यह टकराव अधिक सूक्ष्म और व्यक्तिगत स्तर पर है। उनकी नायिकाएं परंपराओं को पूरी तरह नकारती नहीं, बल्कि उन्हें नए संदर्भ में समझने और अपनाने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार, दोनों लेखिकाएं परंपरा को स्थिर नहीं मानतीं, बल्कि उसे बदलते समय के अनुसार पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता पर बल देती हैं।

दोनों लेखिकाओं के कथा साहित्य में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं का व्यापक चित्रण मिलता है। सुशीला टाकभौरे के यहाँ सामाजिक और आर्थिक संघर्ष प्रमुख हैं, जबकि जया जादवानी के यहाँ भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक पक्ष अधिक उभरकर सामने आते हैं। इनके साहित्य में स्त्री केवल एक भूमिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मां, पत्नी, कर्मशील महिला और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में दिखाई देती है। यह विविधता नारी जीवन की जटिलता और व्यापकता को दर्शाती है।

सामाजिक बदलाव में स्त्री की भूमिका –

सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक रही है। भारतीय समाज में परंपरागत रूप से स्त्री को घर और परिवार तक सीमित माना जाता था, लेकिन समय के साथ उसने इन सीमाओं को तोड़ते हुए समाज के हर क्षेत्र में अपनी सक्रिय भागीदारी दर्ज कराई है। शिक्षा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, साहित्य और सामाजिक आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी ने समाज में नई चेतना और परिवर्तन की दिशा को मजबूत किया है। सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में स्त्री सामूहिक संघर्ष के माध्यम से सामाजिक बदलाव की प्रेरक शक्ति के रूप में उभरती है। उनकी नायिकाएं अन्याय और भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाकर समाज में समानता और न्याय की स्थापना का प्रयास करती हैं। वहीं जया जादवानी के साहित्य में स्त्री व्यक्तिगत स्तर पर आत्मनिर्णय और आत्मनिर्भरता के माध्यम से परिवर्तन लाती है। उनकी नायिकाएं अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेकर समाज की पारंपरिक सोच को चुनौती देती हैं। आधुनिक समय में स्त्रियों ने शिक्षा और जागरूकता

के माध्यम से अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया है। वे केवल अपने अधिकारों के लिए ही नहीं, बल्कि समाज में समानता, न्याय और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए भी संघर्ष कर रही हैं। इस प्रकार, स्त्री केवल सामाजिक बदलाव की सहभागी नहीं, बल्कि उसकी प्रमुख प्रेरक शक्ति है, जो समाज को अधिक समतामूलक और प्रगतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

समानता और अधिकार की मांग –

नारी अस्मिता के संदर्भ में समानता और अधिकार की मांग एक केंद्रीय और अनिवार्य प्रश्न के रूप में उभरती है। भारतीय समाज में लंबे समय तक स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम अधिकार दिए गए, जिसके कारण वे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्रों में पिछड़ी रहीं। लेकिन समय के साथ स्त्रियों में जागरूकता बढ़ी और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना शुरू किया। यह संघर्ष केवल समान अवसर प्राप्त करने का नहीं, बल्कि सम्मानजनक जीवन जीने का भी है। सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में समानता और अधिकार की मांग सामाजिक न्याय के संदर्भ में सामने आती है। उनकी नायिकाएं जाति और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध करती हैं और समान अवसर, शिक्षा तथा सम्मान की मांग करती हैं। वे यह स्पष्ट करती हैं कि बिना समान अधिकारों के नारी अस्मिता अधूरी है। वहीं जया जादवानी के साहित्य में यह मांग अधिक व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक स्तर पर दिखाई देती है। उनकी नायिकाएं अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने, आत्मनिर्भर बनने और स्वतंत्र रूप से जीने के अधिकार को महत्वपूर्ण मानती हैं। वे समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं को चुनौती देती हैं और अपनी पहचान स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

उपसंहार –

इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सुशीला टाकभौरे और जया जादवानी के कथा साहित्य में नारी अस्मिता एक केंद्रीय और जीवंत विषय के रूप में उपस्थित है। दोनों लेखिकाएं भिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आती हैं, फिर भी उनके साहित्य में स्त्री की पहचान, सम्मान और स्वतंत्रता की आकांक्षा समान रूप से दिखाई देती है। टाकभौरे के साहित्य में दलित स्त्री के सामाजिक, आर्थिक और जातिगत संघर्ष का यथार्थपरक चित्रण मिलता है, जहाँ नारी अस्मिता सामूहिक प्रतिरोध और सामाजिक न्याय के माध्यम से उभरती है। वहीं जादवानी के कथा साहित्य में स्त्री का आंतरिक संसार, मानसिक द्वंद्व और आत्मनिर्णय की प्रक्रिया अधिक प्रमुख है, जहाँ नारी अस्मिता व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मबोध के रूप में विकसित होती है।

दोनों लेखिकाएं यह सिद्ध करती हैं कि नारी अस्मिता केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना और आत्मसम्मान से भी जुड़ी होती है। भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि परंपरागत धारणाओं के बावजूद आधुनिक स्त्री अपनी पहचान को पुनर्परिभाषित कर रही है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन दोनों लेखिकाओं का कथा साहित्य नारी अस्मिता के बहुआयामी स्वरूप को उजागर करता है और समाज में समानता, न्याय तथा स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. कुमार, जैनेन्द्र – नारी, पृ. स. 44
2. युद्धरत आम आदमी– पृ. स. 39

3. टाकभौरे, सुशीला – तुमने उसे कब पहचाना, पृ. स. 12
4. मनोगत – शिंकजे का दर्द, पृ. सं. 3
5. सोबती, कृष्णा – नारी मुक्ति और नारी आन्दोलन, पृ. सं. –29
6. कुमार, जैनेन्द्र – नारी, पृ. स. 44
7. यंग इण्डिया।
8. कुशावाहा, सुभाषचन्द्र – कथा में गांव संवाद, पृ. स. 6
9. टाकभौरे, सुशीला – यह तुम भी जानो, (कविता–साहस) पृ. सं. 22
10. भारती, अनिता – कविता में स्त्रीवाद (कविता–लौ), पृ. सं. 91
11. युद्धरत आम आदमी – पृ. सं. 39
12. हाशिए का विमर्श, पृ. सं. 40
13. सोबती, कृष्णा – नारी मुक्ति और नारी मुक्ति आन्दोलन पृ. सं.– 29
14. नैमिशराय, मोहनदास – अपने–अपने पिंजरे, पृ. सं. 51

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha   ISSN : 2395-7115
June 2026   Page No. : 143-146

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संत कबीर की वाणी में भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्त्व

डॉ. पुष्पांजलि रंजन
सहायक प्राध्यापक, सौंदर्या इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट एण्ड साइंस।

भारतीय ज्ञान परंपरा आदिकाल से ही श्रुति, स्मृति, दार्शनिक विमर्श, लोक–अनुभव और आत्म–साक्षात्कार की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती आई है। यह परंपरा अपरिवर्तनीय जड़ता का नाम नहीं है, बल्कि समय के साथ स्वयं को परिष्कृत करने वाली एक जीवंत और समन्वयवादी चेतना है। मध्यकाल में जब यह ज्ञान–प्रवाह शास्त्रीय क्लिष्टता, सामाजिक संकीर्णता, वर्ण–विद्वेष और बाह्याडंबरों के कुहासे में घिर गया था, तब संत कबीरदास एक क्रांतदर्शी युग–द्रष्टा के रूप में अवतरित हुए। यह शोध यह प्रतिपादित करता है कि कबीर ने वेदों और उपनिषदों के शुद्ध ज्ञान शास्त्रीय (Epistemological) तत्वों को लोकभाषा में ढालकर ज्ञान को अभिजात्य वर्ग के चंगुल से मुक्त कराया और उसे लोक–कल्याण का माध्यम बनाया।

इस शोध पत्र के अंतर्गत कबीर की गुरु–शिष्य परंपरा, अनुभवजन्य ज्ञान की मीमांसा, निराकार ब्रह्म की अवधारणा, हठयोग और सहज साधना का समन्वय, सामाजिक समरसता, बाह्याडंबर–विरोध तथा समकालीन वैश्विक परिदृश्य में उनकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द : गुरु–शिष्य परंपरा, ब्रह्म, श्रम–संस्कृति, समरसता, बाह्याडंबर–विरोध, योग संस्कृति, लोक मंगल।

प्रस्तावना : भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप और ऐतिहासिक संदर्भ :

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास कालजयी, स्वप्रकाशित और समग्रतावादी है। वेदों, उपनिषदों, बौद्ध और जैन दर्शनों से पोषित इस परंपरा का मुख्य ध्येय मनुष्य को अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाना रहा है– 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'। प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालंदा, वलभी और काशी जैसे विश्वविद्यालय इस ज्ञान परंपरा के जीवंत केंद्र थे, जहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय के माध्यम से मानव जीवन को सुसंस्कृत और सभ्य बनाने का प्रयास किया जाता था।

भारतीय शिक्षा प्रणाली और ज्ञानमीमांसा का मूल केंद्र 'ज्ञान' अर्थात् वह आंतरिक 'प्रकाश' है, जो अज्ञानजन्य बंधनों को समूल नष्ट कर दे।

मध्यकाल तक आते–आते विदेशी आक्रमणों, तक्षशिला और नालंदा जैसे ज्ञान केंद्रों के विध्वंस और आंतरिक सामाजिक रूढ़ियों के कारण यह ज्ञान परंपरा पतनशील होने लगी थी। ज्ञान पर पुरोहित वर्ग का एकाधिकार हो गया था और लोक–भाषा को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा था। ऐसे संक्रमण काल में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ, जिसे हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस आंदोलन के भीतर निर्गुण काव्यधारा के शीर्ष पुरुष कबीरदास ने ज्ञान परंपरा का लोकतंत्रीकरण किया। उन्होंने शास्त्रों के बोझिल ज्ञान के

स्थान पर 'आँखिन देखी' अर्थात् स्व–अनुभूति के यथार्थ को सर्वोच्च माना।

कबीर का जीवन–वृत्त संदिग्ध रहते हुए भी उनके काव्य में सामाजिक प्रतिरोध, आध्यात्मिक मानववाद और अद्वैत चेतना स्पष्ट है।

'बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोई।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोई।।'[१]

यह दोहा आत्मनिष्ठ सोच और आंतरिकता–बोध का सुंदर उदाहरण है।

अनुभवजन्य ज्ञान आध्यात्मिक मानवत्वाद समन्वय–दृष्टि नैतिक–मूल्यश्रम–संस्कृति और लोक बोध भाषाई विविधता कबीर का काव्य इन सभी तत्वों को गहरे रूप में अभिव्यक्त करता है। कबीर की वाणी में निहित भारतीय ज्ञान–परंपरा के कई प्रमुख आयाम हैं ।

1. **गुरू–शिष्य परंपरा** – कबीर के दर्शन में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। कबीरदास के लिए गुरु रामानंद थे, जिन्होंने उन्हें आध्यात्मिक मार्ग दिखाया। दोहा प्रचलित है :

'गुरू गोविंद दोउ खड़े, काकै लागूं पाँय।
बलिहारी गुरू आपने जिन गोविंद दियो बताय।।'[२]
'सतगुरू महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघड़िया, अनंत दिखावनहार।।'[३]

यह दर्शाता है कि गुरु और ईश्वर के बीच संबंध गहरा है और उनकी पूजा समान है।

2. **अनुभवजन्य ज्ञान प्रधानता** – कबीर ने ज्ञान को शास्त्र से नहीं, सत्य–अनुभव और साधना से जोड़ा। उनके लिए जीवन का यथार्थ ही सच्चा ज्ञान है। उनका प्रसिद्ध दोहा–

'चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।।'[४]

यह दोहा जीवन की पीड़ा, संघर्ष, और अनुभवजन्य सत्य को उद्घाटित करता है। कबीर की दृष्टि में ज्ञान व्यक्ति के भीतर जन्मता है, शास्त्र बाह्य है।

3. **निराकार ब्रह्म की अवधारणा** – कबीरदास के 'सखियों' और 'सबदों' में निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा स्पष्ट है। वे ईश्वर को निराकार और सर्वव्यापी मानते हैं –

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल भीतर–बाहर पानी।
फूटा जल कुम्भ ही सामना, यह तत कहयो ज्ञानी।।'[५]

कबीर ये पद शंकराचार्य के अद्वैतवाद की ओर संकेत करते हैं।

4. **भक्ति और ज्ञान का संतुलन** – कबीर भक्ति और ज्ञान को एक–दूसरे का पूरक मानते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति केवल कर्म–कांड या अंधविश्वास नहीं, बल्कि विवेक, प्रेम और अनुभूति का मार्ग है। कबीर ने भक्ति को आम जनता के लिए आसान बना दिया और कहा –

'कबीर सुमिरन सार हे और सकाल जंजाल।
आदि अंत सब सोधिया दूजा देखौं काल।।'[६]

वह भक्ति जिसमें अनुभव और सत्य–बोध है, वही कबीर के अनुसार सच्ची साधना है।

5. **समानता के संवाहक** – कबीर की वाणी में सामाजिक असमानता, जातिवाद, पाखंड और शोषण का प्रतिरोध है। कबीरदास कहते हैं कि इंसान दूसरों के दोष देखकर हंसता है पर अपने दोषों को नहीं देखता, यही मानव स्वभाव है।

''जाती-पति पूछो नहीं कोई हरी को भजै सो हरी को होई।''[७]

''दोस पराए देखि करि, चला हसन्त हसन्त।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत।।''[८]

6. **धार्मिक रूढ़ियों और बाह्यडंबरों का विरोध** – प्रथाओं का तीखे स्वर में विरोध करते हैं–

'पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते चाकी भली, पीस खाय संसार।।

कबीर की सामाजिक भावना भारतीय ज्ञान–परंपरा की मानववादी चेतना है।

7. **नैतिक-मूल्य और सेवा-भाव** – कबीर के दोहे नैतिक जीवन, सेवा, करुणा, प्रेम और सत्य को प्रेरित करते हैं–

'साई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाय।।'

यह लोकमूल्य और नैतिकता भारतीय ज्ञान–धारा के मूल तत्व हैं।

कबीरदास की नैतिक शिक्षा में सत्य, दया, क्षमा और विनम्रता प्रमुख हैं। वे पाखंड, झूठ और कपट का विरोध करते हैं– **'जहाँ दया तहा धर्म है, जहाँ लोभ वहां पाप। जहाँ क्रोध तहा काल है, जहाँ क्षमा वहां आप।'** जहाँ दया होती है वहां धर्म होता है, जहां लोभ होता है वहां पाप, जहां क्रोध होता है वहां काल (विनाश), और जहां क्षमा होती है वहां आत्मा की शांति होती है।

भाषा और अभिव्यक्ति की लोकधर्मी परंपरा कबीर की वाणी सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, अरबी–फारसी मिश्रित है। उनकी भाषा सहज, सरल, सशक्त और लोक–समर्थ है। इसकी लोच और विविधता ने ज्ञान को हर वर्ग तक पहुँचाया। प्रेम के महत्त्व को रेखांकित करते वे कहते हैं –

'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।'

कबीर ने भाषा को लोकचेतना और ज्ञान के वाहक के रूप में गढ़ा।

8. **योग संस्कृति और कबीर** – कबीरदास ने योग को केवल शारीरिक साधना या आसनों तक सीमित नहीं माना, बल्कि उन्होंने इसे मन और आत्मा की शुद्धि, चिंतन और अनुभवात्मक ज्ञान का माध्यम माना। उनके अनुसार सच्चा योग वह है जिसमें मन की एकाग्रता और आत्मा की अनुभूति हो, जो व्यक्ति को परम सत्य की ओर ले जाती है। कबीर के दोहे बताते हैं कि शारीरिक योग से अधिक महत्वपूर्ण है मानसिक और आत्मिक योग – **'तन को जोगी सब करें, मन को बिरला कोई।'**

इसका अर्थ है कि तन को योगी बनाना सामान्य बात है, लेकिन मन को योग का साधक बनाना दुर्लभ है। सच्ची सिद्धि मन के योग से ही संभव है।

कबीर का योग दर्शन निर्गुण भक्ति के साथ निहित है, जहां ईश्वर को निराकार, गुणरहित समझा जाता है। गोरखनाथ से प्रेरित कबीर ने योग को भक्ति और ज्ञान के साथ मिला कर एक समग्र जीवन दर्शन प्रस्तुत किया, जो ज्ञान, प्रेम और आत्मा की मुक्ति का मार्ग है।

इस प्रकार, कबीर की वाणी में योग संस्कृति केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मन, वाणी और कर्म की शुद्धि और अनुभूति की प्रक्रिया है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा के योग तत्त्वों के साथ पूरी तरह मेल खाती है। यह योग दर्शन व्यक्ति को स्वावलंबी, सजग और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग दिखाता है।

भारतीय ज्ञान–विधान का विस्तार कबीर की साखी ज्ञान का सार, जीवन–सत्य का संक्षिप्त बोध है। वे उपनिषदों की महामंत्रवत्, द्विपदी और सूक्तिपूर्ण हैं। साखियाँ जनसंस्कार, जीवनबोध और अनुभव का अभिव्यक्ति–पथ हैं।

इस संदर्भ में साखी भारतीय परंपरा की श्रुति–वाचिकता और सूक्ति–संस्कृति को आगे बढ़ाते है। साखी यह आत्मनिष्ठ विचारधारा उनका विशिष्ट योगदान है।

श्रम-संस्कृति और लोक-ज्ञान – कबीर के अनुसार श्रम और साधना से ही जीवन का ज्ञान प्रकट होता है – **'सूता एक न रंगाऊँ, बिन हरि भजन न होय'।** यह लोक–श्रम, व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता का संगम है। जुलाहा होने के कारण कबीर के विचार श्रम–संस्कृति को सिद्धांत और काव्य दोनों स्तर पर जोड़ते हैं। आधुनिक संदर्भ में कबीर आज के दौर में जब धार्मिक कट्टरता, वर्ग–विभाजन, जातिवाद, और भौतिकवाद प्रबल हो, कबीर की वाणी मानवता, सद्भाव, सत्य–अन्वेषण और सामाजिक समरसता का मार्ग दिखाती है–

'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जिसके हिरदय सांच है, तिसके हिरदय आप।।'

युगीन असंगतियों को दूर करने, समाज को एकजुट व सत्यनिष्ठ बनाने में कबीर की वाणी अत्यंत प्रभावी है।

निष्कर्ष : कबीर लोक के कवि हैं और भारतीय ज्ञान की जो परंपरा संस्कृत से होती हुई पाली, प्राकृत अपभ्रंश से हिन्दी तक पहुँची उसे लोक वाणी में आम जनता को जीने की कला सीखते है अध्यात्म और ज्ञान की शिखता देते हैं। कबीर की वाणी में भारतीय ज्ञान–परंपरा के सभी मूल तत्व–अनुभव प्रधानता, अद्वैत, स्मृति–श्रुति–संवाद, भाषिक सहजता, नैतिकता, मानवतावाद, सामाजिक प्रतिरोध और सत्य–साधना समाहित हैं। उनकी वाणी न बल्कि जीवन और समाज के बोध की प्रेरणास्रोत है। कबीर ने ज्ञान को शास्त्रीय जटिलताओं से निकालकर लोकरुचि, भाव और व्यवहार में स्थापित किया।

'कबीरा खड़ा बाजार में, माँगे सबकी खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।'

उनके समन्वय, अनुभव और समावेश की अनंत गूँज आधुनिक भारत की बहुलता, विविधता और सांस्कृतिक समरसता का सार्थक संदेश है।

सन्दर्भ :

1. https://kavitakosh.org/kk/otherapps/ebooks/?b=1HbrLJ9IjAhurufWcij35yyfUCxaxKpHb
2. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली परिमार्जित पाठ. २०२३, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. गुप्त, माताप्रसाद. कबीर ग्रंथावली. प्रथम संस्करण, १६७५, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 147-151

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्य में दलित महिला अस्मिता : 'उपासना' और 'छप्पर' के विशेष संदर्भ में

राठौड़ श्रावण
शोधार्थी, देशभगत विश्वविद्यालय, मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब।

सारांश –

डॉ. जयप्रकाश कर्दम हिन्दी दलित साहित्य के प्रमुख रचनाकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं। उनके साहित्य में दलित समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। विशेष रूप से दलित महिला जीवन की पीड़ा, संघर्ष, अस्मिता तथा आत्मसम्मान की चेतना उनके साहित्य का केंद्रीय तत्व है। 'उपासना' और 'छप्पर' जैसी कृतियों में लेखक ने दलित स्त्री की उस स्थिति को अभिव्यक्त किया है, जहाँ वह जाति और लिंग आधारित दोहरे शोषण का सामना करती है। इन कृतियों में दलित स्त्री केवल करुणा की पात्र नहीं है, बल्कि संघर्षशील चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत होती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में 'उपासना' और 'छप्पर' के विशेष संदर्भ में दलित महिला अस्मिता का अध्ययन किया गया है। इसमें दलित स्त्री की सामाजिक स्थिति, आर्थिक संघर्ष, शिक्षा, आत्मसम्मान, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, जातिगत उत्पीड़न तथा प्रतिरोध की चेतना का विश्लेषण किया गया है। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट किया गया है कि दोनों कृतियों में दलित स्त्री की चेतना किस प्रकार विकसित होती है और वह अपने अस्तित्व की पहचान स्थापित करने का प्रयास करती है।

भुमिका –

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श आधुनिक काल में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन के रूप में अपनी पहचान बनाई है। दलित साहित्य का उद्देश्य केवल शोषण का वर्णन करना नहीं है, बल्कि सामाजिक समानता, न्याय और मानवाधिकारों की स्थापना करना भी है। दलित साहित्य ने समाज के उन वर्गों की पीड़ा को स्वर प्रदान किया है, जिन्हें मुख्यधारा के साहित्य में लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया।

दलित विमर्श के अंतर्गत दलित स्त्री विमर्श का विशेष महत्व है। दलित स्त्री समाज में दोहरे शोषण का सामना करती है। एक ओर वह जातिगत उत्पीड़न की शिकार होती है और दूसरी ओर पुरुषप्रधान व्यवस्था उसके अधिकारों और स्वतंत्रता को सीमित करती है। इसलिए दलित स्त्री की समस्या सामान्य स्त्री की समस्या से अधिक जटिल है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने अपने साहित्य में दलित समाज के जीवन संघर्ष को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास 'उपासना' और 'छप्पर' दलित जीवन के सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इन रचनाओं में दलित महिला की स्थिति, उसके संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्मिता के प्रश्न को प्रमुखता दी गई है।

उपासना' में स्त्री चेतना और आत्मसम्मान का स्वर अधिक प्रखर दिखाई देता है, जबकि 'छप्पर' में दलित जीवन की सामूहिक पीड़ा और सामाजिक संघर्ष का व्यापक चित्रण मिलता है। दोनों कृतियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि दलित स्त्री केवल उत्पीड़न का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह अपने अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त व्यक्तित्व है।

आज के सामाजिक संदर्भ में दलित महिला अस्मिता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। सामाजिक न्याय, स्त्री अधिकार और समानता की चर्चा के बीच दलित स्त्री की स्थिति का अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

उद्देश्य –

- 'उपासना' और 'छप्पर' में दलित महिला अस्मिता का अध्ययन करना।
- दलित स्त्री के सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक संघर्षों का विश्लेषण करना।
- दोनों कृतियों में स्त्री चेतना और आत्मसम्मान के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- जातिगत एवं लैंगिक शोषण के प्रभावों का अध्ययन करना।
- तुलनात्मक दृष्टि से दोनों कृतियों के स्त्री पात्रों का विश्लेषण करना।

दलित स्त्री विमर्श के संदर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन करना।

प्रक्कल्पना/उपकल्पना –

- डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्य में दलित स्त्री संघर्षशील और जागरूक व्यक्तित्व के रूप में चित्रित हुई है।
- 'उपासना' और 'छप्पर' में दलित महिला अस्मिता का स्वर सशक्त रूप में उभरता है।
- दोनों कृतियों में जातिगत एवं लैंगिक शोषण का यथार्थ चित्रण मिलता है।
- शिक्षा और चेतना को दलित स्त्री मुक्ति का माध्यम माना गया है।
- लेखक ने दलित स्त्री को सामाजिक परिवर्तन की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द –

दलित साहित्य, दलित विमर्श, महिला अस्मिता, स्त्री चेतना, सामाजिक न्याय, जातिगत शोषण, स्त्री संघर्ष, आत्मसम्मान, उपासना, छप्पर, दलित महिला विमर्श।

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक शोध प्रविधियों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में 'उपासना' और 'छप्पर' का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में दलित साहित्य, स्त्री विमर्श तथा आलोचना संबंधी पुस्तकों, शोध आलेखों एवं पत्रिकाओं का सहारा लिया गया है।

तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से दोनों कृतियों में दलित महिला अस्मिता के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से दलित स्त्री की स्थिति का अध्ययन इस शोध का प्रमुख आधार है।

विषय विश्लेषण –

1. दलित महिला की सामाजिक स्थिति –

भारतीय समाज में दलित महिला सदियों से सामाजिक असमानता और भेदभाव का सामना करती रही है। जाति व्यवस्था ने उसे निम्न स्तर पर स्थापित किया और उसके अधिकारों को सीमित किया। 'उपासना' और 'छप्पर' में दलित स्त्री का यही सामाजिक यथार्थ उभरकर सामने आता है।

'उपासना' की नायिका सामाजिक रूढ़ियों और भेदभाव का विरोध करती है। वह आत्मसम्मान के साथ जीवन जीने की आकांक्षा रखती है। दूसरी ओर 'छप्पर' में दलित स्त्री समाज की कठोर परिस्थितियों से जूझती दिखाई देती है। यहाँ गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक अपमान उसके जीवन को प्रभावित करते हैं।

2. आर्थिक शोषण और अभाव –

दलित समाज की आर्थिक स्थिति सदैव कमजोर रही है। 'छप्पर' में यह स्थिति अत्यंत मार्मिक रूप में चित्रित हुई है। दलित परिवारों के पास रहने के लिए उचित घर तक नहीं है। आर्थिक अभाव उनके जीवन संघर्ष को और अधिक कठिन बना देता है।

दलित स्त्री परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए श्रम करती है, लेकिन उसे सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं होता। 'उपासना' में भी आर्थिक असमानता स्त्री जीवन की कठिनाइयों को बढ़ाती है।

3. शिक्षा और जागरूकता –

डॉ. जयप्रकाश कर्दम शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण माध्यम मानते हैं। दोनों कृतियों में शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया गया है।

'उपासना' की नायिका शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करती है। वह समझती है कि शिक्षा ही उसे सामाजिक बंधनों से मुक्ति दिला सकती है। 'छप्पर' में भी शिक्षा को दलित समाज की उन्नति का आधार माना गया है।

4. स्त्री अस्मिता और आत्मसम्मान –

दलित स्त्री के लिए आत्मसम्मान का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह केवल अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष नहीं करती, बल्कि सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार भी चाहती है।

'उपासना' में नायिका अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती है। वह अन्याय और भेदभाव को स्वीकार नहीं करती। 'छप्पर' में भी दलित स्त्री कठिन परिस्थितियों के बावजूद अपने अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करती है।

5. जातिगत उत्पीड़न –

जातिगत भेदभाव दलित जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। दोनों कृतियों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि दलित स्त्री को समाज में समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

सवर्ण समाज द्वारा दलितों के प्रति अपमानजनक व्यवहार तथा सामाजिक बहिष्कार की प्रवृत्ति इन कृतियों

में यथार्थ रूप में चित्रित हुई है। दलित स्त्री इस उत्पीड़न का सबसे अधिक शिकार होती है।

6. पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री संघर्ष –

दलित स्त्री केवल जातिगत भेदभाव का ही नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था का भी सामना करती है। पुरुष प्रधान समाज में उसकी स्वतंत्रता सीमित कर दी जाती है।

'उपासना' की नायिका सामाजिक बंधनों के विरुद्ध संघर्ष करती है। 'छप्पर' में स्त्री पात्र परिवार और समाज दोनों स्तरों पर संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

7. प्रतिरोध और विद्रोह की चेतना –

डॉ. कर्दम की कृतियों में दलित स्त्री केवल पीड़ित नहीं है, बल्कि प्रतिरोध की चेतना से युक्त है। वह अन्याय का विरोध करती है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है।

'उपासना' में यह विद्रोह व्यक्तिगत स्तर पर दिखाई देता है, जबकि 'छप्पर' में सामूहिक संघर्ष का स्वर प्रमुख है।

तुलनात्मक विमर्श

आधार	**उपासना**	**छप्पर**
प्रमुख स्वर	स्त्री अस्मिता	सामाजिक यथार्थ
संघर्ष का स्वरूप	व्यक्तिगत संघर्ष	सामूहिक संघर्ष
स्त्री चेतना	आत्मनिर्भरता	सामूहिक जागरूकता
आर्थिक स्थिति	सीमित अभाव	अत्यधिक गरीबी
प्रतिरोध	विद्रोही स्वर	सहनशील संघर्ष
लेखक की दृष्टि	स्त्री सशक्तिकरण	सामाजिक परिवर्तन

दोनों कृतियाँ दलित स्त्री जीवन की विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। 'उपासना' में व्यक्तिगत अस्मिता का प्रश्न प्रमुख है, जबकि 'छप्पर' में सामूहिक सामाजिक संघर्ष का चित्रण मिलता है। दोनों ही कृतियाँ दलित महिला चेतना को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष –

डॉ. जयप्रकाश कर्दम का साहित्य दलित समाज की समस्याओं और संघर्षों का प्रामाणिक दस्तावेज है। 'उपासना' और 'छप्पर' में दलित महिला अस्मिता का सशक्त चित्रण मिलता है। लेखक ने दलित स्त्री को केवल पीड़ित रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे संघर्षशील, आत्मसम्मानी और जागरूक व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है।

इन कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि दलित स्त्री का संघर्ष केवल सामाजिक समानता के लिए नहीं, बल्कि अपनी पहचान और सम्मान की स्थापना के लिए भी है। शिक्षा, जागरूकता और संघर्ष के माध्यम से वह अपने अधिकारों की प्राप्ति का प्रयास करती है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम का साहित्य दलित विमर्श और स्त्री विमर्श दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उनकी कृतियाँ सामाजिक परिवर्तन, समानता और मानवाधिकारों की चेतना को मजबूत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ –

- डॉ. जयप्रकाश कर्दम – उपासना।
- डॉ. जयप्रकाश कर्दम – छप्पर।
- ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र।
- शरणकुमार लिंबाले – दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र।
- रमणिका गुप्ता ' दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार।
- डॉ. धर्मवीर – दलित विमर्श और हिंदी साहित्य।
- कंवल भारती – दलित साहित्य की अवधारणा।
- नामवर सिंह – आलोचना और साहित्य।
- डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे – हिंदी दलित साहित्य : स्वरूप और संवेदना।
- हिंदी साहित्य एवं दलित विमर्श से संबंधित विभिन्न शोध पत्र एवं पत्रिकाएँ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
June 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 152-157
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

DIVINE FEMINISM IN HIMACHALI SACRED FAIRS : INDIAN KNOWLEDGE TRADITION AND HOLISTIC GLOBAL UPLIFTMENT

Reena Chauhan
Research Scholar, Eternal University, Baru Sahib.

Introduction :

Himachal Pradesh is known as the "Dev Bhoomi" where the perpetual state of ecstasy can be felt. According to our scriptures or Indian Knowledge system, the perpetual state of ecstasy is felt if the inner masculine and feminine forms meet i.e. where the ardhnarishwar form of Shiva & Shakti exists. Himachal Pradesh is the virtuous instance of ardhnarishwar i.e. prakriti and purusha. The Prakriti, feminine divinity is seen in idolizing the local goddesses which are known as the incarnations of Maa Saraswati, Parvati and Luxmi. Numerous temples of goddesses are the evidence that reveals the nurturing of state by prakriti like Shree Renuka ji, Mata Shoolini, Mata Naina Devi, Mata Sui devi, Mata Jwala ji, Mata Chintpurni, Mata Hidimba Devi, Mata Balasundari, Mata Bhangayani Devi, Maa Shikari Devi. These goddesses are worshipped as the protectors & nurtures of the natives and destroyer of the evil energies which is the character of prakriti to give life to creation. Every temple has mythological context which extends beyond religious symbolism offering profound insights into the nature of existence and humanity's place within it. These mythological contexts are revived through various traditions like fairs at local, state, national or international level, storytelling sessions, bhagvad katha, jagrans etc. These traditions of preserving the rich cultural and religious heritage over centuries are the cause of sustainability of ethical values in the hills and valleys of the state.

Indian Knowledge system bridges the ancient wisdom with contemporary social, psychological or ethical challenges. It offers valuable insights for not only ethical living but for education, health and sustainability while reflecting the timeless values of IKS such as dharma (righteousness), vak shakti (power of speech), Vasudhaiva Kutumbakam (world as one family), and balance with nature. The Indian Knowledge Tradition (IKT) embodies a holistic worldview grounded in spirituality, ecology,

ethics, cultural continuity, and collective well-being. Within this framework, the concept of feminine power or Shakti occupies a central position, reflecting the sacred, creative, nurturing, and transformative dimensions of life. The tradition of celebrating or worshipping feminine divinity in Himachal Pradesh through various state or international level fairs and thereby rejuvenate the valour, compassion and oblivion powers in the consciousness of native women. This paper is an effort to display the respect for the Shakti form in the heart of Himachalis. The divine feminism eminent in the fairs of Himachal Pradesh will be discussed with special focus on Dhungri mela, Sui Mata mela, Shree Renuka Ji International fair, Maa Shoolini state fair Navratri mela at Shikari Devi and Trilokpur fair at Bala Sundari temple in distt. Sirmaur. These fairs reflect a cultural reverence for feminine divinity in the hill state. The celebration theoretically positions women as worthy of respect and honour. Reinterpreting their stories to emphasize these qualities can inspire women to see themselves as capable and autonomous individuals. This includes highlighting their victories, strategic prowess, and roles as leaders and protectors.

Dhungri Mela :

Dhungri mela is celebrated in district Kullu as birthday of Maa Hidimba Devi, the guardian deity of Kullu valley and an epitome of love and affection for the natives. Hidimba saved life of Pandavas who were on exile by revealing the conspiracy woven by her brother. Pandavas thereby killed her brother, and she was betrothed to Bhima. Hidimba and Bhima lived in the forest of Dhungri Van Vihar in Dhungri hills.

Hadimba and Bhima had a boy named Ghototkach. Until Ghototkach came of ruling age, Hadimba ruled the land righteously and wisely. After that she retired to the hills of the Dhungari forests for a life of austerity, meditation and prayer. There she got supernatural powers after spiritual growth. The people of Manali did not forget her and started worshipping her. They constructed a temple in pagoda style in her honour and she became Devi Hadimba. This temple enshrines not an idol but a footprint of the goddess. She became the patron-deity of the Rajas/Kings of Kullu and the tilak ceremony of every kind of Kully had to be carried out only with the permission of the goddess. She conquered the hearts of all the residents living on the hill and her birthday is celebrated with great love and enthusiasm. It is not celebrated by a single village, but many nearby villages come together to pay homage to the mother.

It is believed that deities in fairs are carried in palanquins and the deity herself directs the palanquin bearers. Maa Hidimba Devi enthusiastically welcomes all the deities from the nearby villages. So, this fair not only celebrates the birthday of Maa Hidimba devi but feels her affection, attachment and blessings for the place. The celebration spreads a message of dharma (righteousness) and Vasudeva

Kutumbhakam, the essence of Indian knowledge system to the world.

Renuka Fair, Sirmaur :

Shri Renuka Ji International Fair is not just a festival, but it is a sacred five-day union of a mother and her son. On the eve of Prabodhini Ekadashi at the Renukaji temple, the fair witness the arrival of local deities from across Sirmaur district who arrive in decorated palanquins to welcome Lord Parshuram. On the final day of fair, thousands of devotees take holy bath in the lake with the belief that the mother and son are united in the spirit of water.

Maa Renuka has spiritual powers that enabled her to mould sand into an unbaked pot and use a coiled serpent as a rope to carry water for her husband's oblation after she got bath in river. One day she saw a king spending merry time with his wives in the river. Captivated by the sight she lost her concentration and lost the spiritual power granted to her through her chastity. When she came back her husband Jamdagini (one of the saptrishis) divined these events through his yogic powers and got angry. He ordered her to leave the ashram. She meditated and worshipped Lord Shiva after getting holy bath in the river. When she returned with the determination to repent before her husband he ordered his younger son Lord Parshuram, incarnation of Lord Vishnu to behead his mother. Though Lord Parshuram, an epitome of filial duty obeys the orders but as his father in happiness asked him for any boon, he asked for his mother's life. Rishi Jamdagini realised his mistake and vowed never to get angry.

Rishi Jamdagini had the Kamdhenu cow. He served a feast offered by the divine cow to the king Kartavirya Arjune. The king was impressed by the cow and sent his minister to get the cow. Rishi refused to part with the cow, but the minister forcefully took the cow and, in her search, he lost his life. Mata Renuka wailed over his death and beat her breast for twenty-one times. The gesture was understood by Parshuram, and he took twenty-one rounds of the world to kill all the Kshatriyas on the earth. Rishi Jamdagini was cremated and Maa Renuka jumped into the lake to perform the sati. On the repeated requests of her son Parshuram to come back to him, she convinced him that she would serve humanity being a part of lake, but she promised to meet him annually for five days.

Mata Renuka is an embodiment of courage and determination that enables a woman to devoid her partner with anger and adamant behaviour through calmness, submission and determination. The Renuka ji lake is the physical manifestation of Mata Renuka ji which nurtures not only the human lives but also the wildlives around the lake.

This tradition of remembering the sacrifice of Maa Renuka ji through the annual fair is therefore a gentle, profound celebration of maternal love, spiritual penance, feminine determination and water-bound sanctity.

Sui Mata Mela in Chamba :

Sui Mata Mela is the traditional fair in Chamba that is celebrated every year from 15th of Chaitra to 1st of Baisakh according to Hindu calendar. It honours the female strength and her power to sacrifice. The emotional intimacy, the emotional strength of a woman can transform a state's misfortune to a blessing. The fair commemorates queen Sunaina of King Sahil Verman (the founder of Chamba district). The kingdom was dealing with water scarcity, and the king got a solution to the natural calamity in his dream that he had to sacrifice his most lovable relative. Queen Sunaina was adamant to be the solution of this problem for the sake of civilians and her family. She gave her life to restore water to the drying wells. To this day, people of Chamba—especially women and children—pay homage not out of obligation, but out of deep cultural affection for their queen who chose her people over herself. The story narrated through oral ballads, folk songs, she offered herself in ritual sacrifice to appease the gods and bring life and relief to the people.

It is the only fair in India where males are not allowed to participate. only females will pay tribute to selflessness. The women and girls of the town dressed in traditional attire sing folk songs called Rai and take a procession to the temple. They assemble in the temple of Sui Mata to remember the sacrifice. The women came out of the temple with the strength to protect her family whenever it will be required.

Mata Shoolini Fair in district Solan :

This fair celebrates the female divinity as protector and nurturers. Maa Shoolini Devi was brought to Solan by Raja Durga Singh and since then she is protecting the place from all kinds of evils. The multifaceted progress of the town is considered as blessing of Maa Shoolini Devi. The district name "Solan" is named after Shoolini Devi, a fierce form of Goddess Durga believed to guard the region with compassion and strength. The fair starts with her annual ceremonial journey when she in her palanquin comes out of her shrine and parades through the town to give blessings to the residents and weaves sacred connections. Locals say, "When Ma Shoolini walks through Solan, even the winds bow down."

This fair is more than ritual; it's the soul of solan on parade. For three days, there are numerous feasts (bhandaras) organised for the visitors by the locals. There are food stalls, juice corners as well as distribute fruits for the itinerants. and no one cooks in the house. The fair strengthens civic unity and local identity.

Navratri fair in Shikari Devi temple :

The Navratri fair in Shikari Devi temple pays tribute to Mata Shikari Devi as she is not just a deity, but a guardian of the forests, wildlife, and mountain travellers. The temple stands atop the Shikari

Devi peak, the highest peak in Mandi district. The region around the temple is a natural sanctuary region called as Shikari Devi Sanctuary. Often it is called the 'Crown of Mandi'.

The existence of temple is related to the Mahabharat. During exile, Pandavas came to these forests and while they were on hunt, they came across a mystical deer who came to guide and protect them. Later they realised that the deer is the goddess herself. They meditated in the hills and built the temple of Shikari Devi. In Markandaya Purana, Sage Markandeya had meditated in this temple and blessed by Mata Shikari Devi.

The temple is on a flat cemented square platform, and the goddess is idolized in the form of a stone image. The uniqueness of this temple lies in its rooflessness and despite no snow is spotted inside the temple during winters when the entire region around this temple is covered up to several feet by snow. No one has ever been able to build a roof over the top of this temple. In the archaic days, the hunters or shikaris of the region would worship the Goddess in the temple to seek blessings for a successful hunt. The goddess was often invoked for protection against dangers by wild animals during their hunting.

The celebration of Shikari Devi's ecstatic blessings on the hills reflects how nature, faith and livelihood are mingled in the hill of Shikari Devi. Through the recognition of divine feminism as custodians of landscape and life, the fair or rituals encourages the dharma (righteousness) and prakriti (Nature) of Indian Knowledge System.

Trilokpur fair in Mata Bala Sundari Temple :

The Trilokpur fair transmits the blessings of Mata Balasundari (Maiden form of Maa Vaishno Devi) to the children of the Trilokpur. The place Trilokpur refers to the Town of three Shrines, with Bala Sundari, Lalita devi and Bhairavi forming a sacred triangle. The Bala Sundari Temple is believed to be the northern counterpart of Vaishno Devi, dedicated to Bala Sundari—an incarnation of Goddess Durga as a child. The temple was built in 1573 AD by Raja Dilip Prakash of Sirmaur. Historically, the Goddess is believed to have arrived here in a salt bag belonging to a local merchant named Lala Ram Dass. The merchant, noticing that his salt bag never emptied, had a vision where the Goddess instructed him to build a shrine. The royal family of Sirmaur later expanded the temple into its current grand form. It has remained the patron deity of the Sirmaur region for over four centuries. Trilokpur is highly significant as a "Siddha Shakti Sthan."

For the wellbeing of children and for the embellishment in crops and business, the blessings of Mata Balasundari are quested during Navratri fair. The goddess came here as Pindi (stone) and now she occupies her absolute place in the soul of people from Himachal, Punjab and Haryana.

The feminine power plays vital role in shaping the history and geography of Himachal state. In

the patriarchal society, when the feminine powers are celebrated it ensures the impact of ardhnarishwar or Shakti in balancing the cosmic energy. Energetic traits of divine feminism include kindness, creativity, wisdom, magic. It is fierce unapologetic power.... not power over but power from within- that is self-empowerment. These rituals, fairs worship these feminine traits and thus encourage the social, psychological and cultural empowerment of women.

References :

- Morales, Frank. "The concept of Shakti: Hinduism as a liberating force for women." *Retrieved on July 16th* (2008).
- Mehdi, Amroz, P. C. Sowjanya, and Ms Smita Chhaparwal. "Heritage, Her-Story: Tracing Womanhood and Wisdom through Feminist Literature and Indian Knowledge Systems. " *Sanskriti and Science: Perspectives on the Indian Knowledge System* 4 (2025): 84.
- Das, Debasmita, Debangshu Chanda, and Shrabana Panda. "Beyond Gender, discovering Self: Reviewing Ardhnarishwar through Bharatanatyam, Psychology and Vedic Philosophy."
- Arora, Poornima Pundhir, and Suchi Srivastav. "The transformation of the GOD Shiva the Yogi Purusha into Shankara the householder by Shakti or Prakriti: A Hindu mythical peregrination." *Business Dimensions: An International Open Free Access, Peer Reviewed Research Journal* 1 (2014): 258-266.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 158-161
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महानगर और समकालीन उपन्यासों का यथार्थ

डॉ. रोसी पी. वर्गीस
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनम्तिट्टा, केरल।

आधुनिक युग में हर व्यक्ति अपने–अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने तथा सुख सुविधाओं की खोज में रत है। जब उसे ये सुख–सुविधाएँ अपने कस्बे या शहर में नहीं मिलती तब वह महानगरों की ओर भागता है। महानगर में काम के अवसर भी अधिक है। महानगरों की भीड़ और अजनबीपन के कारण घर–परिवार टूटने लगता है। नौकरी की खोज में शहर आए सभी पढ़े–लिखे नौजवानों को एक ओर घर–परिवार टूटने का दर्द और गाँव के जीवन की अनगिनत चिन्ताएँ है तो दूसरी ओर अनजान महानगर की बेरहमी और बीमारियाँ। इन दो पाटों के बीच पिसते हुए शिक्षित नौजवानों का दर्द समकालीन उपन्यासों में हम दर्शा सकते हैं।

महानगरों में कल–कारखाने खोले गए। रोटी की तलाश में देश के कोने–कोने से युवक–युवतियाँ महानगरों में प्रतिदिन आते हैं। सभी धंधे गाँव में इतने कमजोर हो गए हैं कि उनका जीवन यापन चल नहीं सकता। शहरों और महानगरों में बाहरी लोगों की भीड़ होने लगी। इसलिए गाँवों के साथ यहाँ भी इतनी गरीबी अधिक है कि आदमी को पहनने के लिए एक ही कपड़ा है। रात के अंधेरे में उसे ही धोना है और उसे ही पहनना है। भिखारियों में कोढ़ियों की अजीब मुसीबत है। उनके बदन से ऐसी बदबू छूटती है कि उन्हें कोई पास बैठने नहीं देता। एक तरफ जख्मों को पोंछना है तो दूसरी तरफ भीख माँगना है। महानगर में आनेवाला हर कोई मकान चाहता है लेकिन दिनों–दिन महानगरों की आबादी में वृद्धि होने के कारण मकान की समस्या बढ़ती जाती है। फिर मकानों का किराया और पगड़ी बढ़ जाती है। देश–विदेश के विभिन्न प्रवृत्ति वाले सभी स्तरों के लोगों की भीड़ महानगरों में होने लगी। मध्यवर्गीय परिवार चालों और बस्तियों में रहने के लिए मजबूर हो जाता है। एक बार जिसका घर छूट गया वह हमेशा के लिए टूट जाता है, आँखों के साथ–साथ दिल भी भर आता है। महनगरीय लोग अर्थकेन्द्रित बनने लगे। फुटपाथ पर कई लोग अपना छोटा–मोटा व्यवसाय करते हैं, क्योंकि फुटपाथ सबका है।

धार्मिक तीर्थ स्थलों के कारण भी महानगरों में लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। अर्थकेन्द्रित रिश्तों में बढ़ोतरी होने के कारण महानगरों में मानवता का ध्वंस हुआ। व्यक्ति निराशा में अपना सन्तुलन खोने लगा। आज महानगरीय जीवन समस्याओं का अड्ड्डा बन चुका है। कई जगह लोग डाक्टर बनकर गरीबों को ताकत की दवा बेचते हैं। रोगी का हर रिश्तेदार चाहता है कि मरणोन्मुख व्यक्ति बच जाए। फिर एक भाव मन में उठता है कि बचकर क्या होगा? रोगी का भविष्य डाक्टर को पता है पर वे बताते नहीं केवल आशा दिलाते रहते हैं। रोगियों

के प्रति डॉक्टरों की जो सहानुभूति होनी चाहिए, उसका यहाँ पर सम्पूर्ण अभाव है।

आज महानगरों में अस्तित्वबोध की धूम मची हुई है। आज की स्थिति में मनुष्य के लिए मुख्य प्रश्न केवल अपने अस्तित्व का है। अस्तित्व का मतलब है, 'एक ऐसा जीवन जो सब प्रकार के नियमों को तोड़कर प्रवाहित होता है और अपनी सर्जनात्मक क्षमता का विकास करता है।'[1] कृष्णा सोबती के 'दिलो दानिश' में दिल्ली के नवाबों की छाँव में पलनेवाली, दुर्बल नारियों की प्रतिनिधि पात्र महकानो के बीच उभरते हुए अस्तित्वबोध को वाणी दिया गया है। दिल्ली के नवाब कृपानारायण वकील एक रूआवदार रंगीला व्यक्ति है। इस उपन्यास की कुटुम्बप्यारि में भी अस्तित्वबोध के दर्शन होते हैं। यह कृपानारायण की धर्मपत्नी होने के कारण महकबानों की तरफ आकर्षित हुए अपने पति को वापस लाने के लिए हर तरह का प्रयत्न करती है।

प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' में कलकत्ता में रहनेवाली मारवाड़ी अग्रवाल परिवार की बहू प्रिया की अस्तित्वबोध की लड़ाई की कथा है। यहाँ प्रिया की स्थिति दयनीय है। मारवाड़ी समाज की नारियों का शोषण इस उपन्यास का केन्द्र है। उपन्यास की नायिका प्रिया व्यवसाय के बहाने शिकागो की प्रदर्शनी के लिए परदेश गई है। कलकत्ता वापस लौटते समय बेलग्रेड हवाई अड्ध्डे पर चक्कर खाकर गिरती है। वह शारीरिक श्रम और पारिवारिक संत्रास से पीड़ित है। प्रिया संत्रासजन्य स्थिति में कहती है – 'सारे जुल्मों के सामने.... सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियों का सामना करने केलिए तैयार हूँ।'[2] यहाँ प्रिया की अस्तित्व के प्रति उभरी चेतना के दर्शन होते हैं। प्रिया अपने पति की परेशानी से बचने के लिए अपना अलग कमरा बनाती है। यहाँ हम प्रिया के अस्तित्वबोध को देख सकते हैं।

मानवी जीवन मूल्य सदा परिवर्तित होते आ रहे हैं। मानव की जीवन प्रणाली विशिष्ट सिद्धान्तों पर खड़ी है, जिन्हे जीवनमूल्य कहा जाता है। आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार में टूटन आने लगी है। राहुल भारद्वाज के मतानुसार – 'अब संयुक्त परिवार के स्थान पर परिवार की अवधारणा संकुचित होकर केवल पति–पत्नी और बच्चों में सिमट गई है।'[3] बीसवीं सदी के आलोच्य उपन्यासों में मूल्य विघटन की तीव्रता को गति मिल पाई है। कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' में मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठी बूढ़ी औरत रात्रि की रोशनी को अँधियारा मानकर लड़की को बत्ती जलाने को कहती है। बूढी मृत्यु के समय मूल्य विघटन की स्थिति को स्पर्श करती है और आज के इन्सान की आत्मकेन्द्रितता पर प्रकाश डालती हुई कहती है – 'पहले इन्सान बनाता है। जमा करता है। यह मेरा है। यह भी मेरा है। फिर धीरे–धीरे मुट्ठी खुल जाती है। सब सरकने लगाता है।'[4] यहाँ मानव की आत्मकेन्द्रितता से उत्पन्न मूल्य विघटन को बूढ़ी केवल स्पर्श करती है। सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' में शाहजहाँपुर के पुराणपंथी ब्राह्मण परिवार में पली अभिनेत्री वर्षा के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने पारिवारिक मूल्य–विघटन को वाणी देने का प्रयास किया है। नाटक के रिहर्सल के बाद वर्षा मिस कत्याल से सिगरेट माँगकर पीने लगी, अंडे खाने लगी और धार्मिक मूल्य विघटन की गवाही देती हुई कहती रही – 'मैं उस दिन भ्रष्ट हो गई, जिस दिन मैं ने नौटंकी में काम किया।'[5] वर्षा ने अपने पिताजी द्वारा प्रस्थापित धर्म को भ्रष्ट करके धार्मिक मूल्य–टूटन को स्पष्ट कर दिया है। नासिरा शर्मा के 'जिन्दा मुहावरे' में बँटवारे के कारण मानवी रिश्तों में उभरे मूल्य विघटन, मूल्य टूटन पर गम्भीरता से सोचा गया है। हिन्दुस्तान के बँटवारे की तकलीफ को भारत–पाक के करोड़ों लोगों ने अनुभव किया है, लेकिन निजाम अन्य लोगों के बहकावे में आकर पाकिस्तान चला जाता है। वह पाकिस्तान स्थित कराची में अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति से गुजरकर धन्ना सेठ बनता है।

निजाम के पाकिस्तान चले जाने पर उसके और उसके खानदान के बीच फासला बढ़ते रहना, इन रिश्तों में मेल बैठाना उसे मुश्किल लगना, खुद को समझाते हुए उसका कहना – 'बड़ा आदमी बन जाने पर खाई–खंदक पर पुल बना लेना आसान होता है।'[6] मानवी रिश्तों में बढ़ते मूल्य–विघटन के दर्शन यहाँ होते हैं।

आज महानगरीय जीवन में अकेलेपन की पीड़ा से मनुष्य घायल बन बैठा है। महानगरीय भीड़ में वह खुद को अकेला महसूस कर रहा है। अकेलेपन का अर्थ है – "समूह के साथ रहते हुए भी अकेलेपन का अनुभव करना।'[7] आज महानगरों में बहुतांश लोग अकेलेपन की पीड़ा से पीड़ित हैं। महानगर में आदमी अपना दिल 'विंडो शॉपिंग' करके बहला सकता है। गरीब रंडियों की संताने क्या खाकर जीती होंगी इस पर लेखक सोचता है। कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' में मृत्यु की प्रतीक्षा करती हुई मरणासन्न पड़ी एक बूढ़ी औरत अम्मू के जीवन में उभरे अकेलेपन के एहसास को वाणी देने का काम प्रभावी ढंग से किया है। अम्मू अपनी जिन्दगी के अन्तिम दौर में अपने भरे–पूरे परिवार के होते हुए भी खुद को अकेला महसूस करती है। वह सूसन से कहती है –

'बेटा–बेटियाँ, नाती–नातिन, पुत्र–पौत्र आदि के रूप में मेरा सब परिवार सजा हुआ है फिर भी मैं अकेली हूँ।'[8] यहाँ अम्मू के बुढ़ापे ने उसे अकेला बना दिया है। समकालीन उपन्यासों में अकेलेपन के एहसास की पीड़ा को उपन्यासकारों ने बहुमुखी रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में भ्रष्टाचार के विभिन्न आयाम प्रस्तुत होते रहे हैं। डॉ. चमनलाल गुप्ता के मतानुसार 'भ्रष्टाचार का अर्थ अपने पद तथा शक्ति के दबाव में अनुचित काम करवाना, सत्ता एवं सामर्थ्य का दुरुपयोग करना है।'[9] आज महानगरों में राजनीति के प्रश्रय में पनपनेवाले भ्रष्टाचार के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। असगर वजाहत के 'सात आसमान' में लेखक ने भारत के सामंती समाज के नवाबों के एक परिवार की कहानी के द्वारा जमींदारी के टूटने पर उनकी हुई खस्ता हालत पर प्रकाश डाला है। इसमें भ्रष्टाचार की नीति को कैसे प्रशय मिलता रहा, इस पर भी चिंतन किया है। जगत् सेठ तत्कालीन कोलकत्ता शहर का माना हुआ सेठ था, जो व्यापारी क्षेत्र में भ्रष्टाचार में माहिर था। उन्हें फौजवालों से मिट्टी के तेल को सप्लाई करने का ठेका मिलता है, लेकिन यह पीपों में पानी भरकर सप्लाई करता है और पकड़ा जाने पर उनसे कहता है– 'मैं आपको बीस हजार दूँगा। मेरी पहली शर्त यह रहेगी कि मुझे हथकड़ियाँ न लगें, दूसरी शर्त यह रहेगी कि मैं अपने बयान के जिरह के दौरान खड़ा नहीं रहूँगा।'[10] इस मुकदमें में जगत सेठ बाइज्जत रिहा हो गया। आज सर्वत्र भ्रष्टाचार स्वीकृत बन बैठा है। भ्रष्टाचार से प्राप्त पैसा पानी की तरह खर्च करके ये भ्रष्टाचारी लोग सभी उपयोगी वस्तुओं को खरीदते हैं।

निष्कर्ष के रूप में, आज महानगरों में पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण के परिणामस्वरूप मूल्य विघटन बढ़ता जा रहा है। हिन्दी उपन्यासों में अकेलेपन के एहसास की पीड़ा को उपन्यासकारों ने बहुमुखी रूप में प्रस्तुत किया है। भ्रष्टाचारी एवं भ्रष्टाचार को राजनीति में पनाह मिल रही है। इस प्रकार आज महानगरों में मूल्य–विघटन की गति तेज हो रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. डॉ. वाय. बी. धुमाल – साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 269

2. प्रभा खेतान – छिन्नमस्ता, पृ. 10
3. राहुल भारद्वाज – नवें दशक की कहानियों में मूल्य–विघटन, पृ. 101
4. कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ. 13
5. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए, पृ. 51
6. नासिरा शर्मा – जिन्दा मुहावरे, पृ. 16
7. युवाचार्य महाप्रज्ञ – एकला चलो रे, पृ. 171
8. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ. 63–64
9. डॉ. चमनलाल गुप्त – यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, पृ. 11
10. असगर वजाहत– सात आसमान, पृ. 13

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 162-167
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के आलोक में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शिक्षा–दर्शन का बहुविषयक अध्ययन : शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन

सागर सिंह सिरोला
शोध अध्येता, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, शिक्षक शिक्षा विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हल्दूचौड़ नैनीताल (उत्तराखण्ड)

शोध सारांशिका –

प्रस्तुत शोध अध्ययन भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के आलोक में श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शिक्षा–दर्शन का बहुविषयक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु इन दोनों पावन ग्रन्थों में निहित शैक्षिक तत्त्वों की प्रासंगिकता का विवेचन करना है। वर्तमान समय में शिक्षार्थी मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धात्मक दबाव, नैतिक विचलन एवं भावात्मक असंतुलन जैसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा–दृष्टि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, दार्शनिक, विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक शोध प्रकृति पर आधारित है। अध्ययन में प्राथमिक स्रोतों के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का तथा द्वितीयक स्रोतों के रूप में शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं ई–संसाधनों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि दोनों ग्रन्थ शिक्षार्थियों में आत्मसंयम, समत्व, करुणा, सेवा, नैतिक चेतना एवं भावात्मक संतुलन के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को अधिक मानवीय, मूल्यपरक एवं संतुलित स्वरूप प्रदान कर सकती है।

संकेताक्षर : भारतीय ज्ञान परम्परा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, श्रीमद्भगवद्गीता, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, शिक्षा–दर्शन, संवेगात्मक स्वास्थ्य, मूल्यपरक शिक्षा, बहुविषयक अध्ययन।

1.1 प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन के समग्र विकास की एक ऐसी शाश्वत धारा है, जिसमें ज्ञान को केवल बौद्धिक उन्नति का साधन न मानकर आत्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं भावात्मक विकास का माध्यम माना

गया है। भारतीय मनीषा ने शिक्षा को मनुष्य के अन्तःकरण के परिष्कार एवं आत्मबोध की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। वर्तमान समय में जब शिक्षार्थी मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धात्मक दबाव, असुरक्षा, अवसाद, नैतिक विचलन तथा संवेगात्मक असंतुलन जैसी समस्याओं से ग्रसित हो रहे हैं, तब भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित शिक्षा–दर्शन की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी शिक्षा को केवल सूचना–आधारित प्रक्रिया न मानकर समग्र व्यक्तित्व विकास का साधन मानती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में भारतीय ज्ञान परम्परा, नैतिक शिक्षा, जीवन–कौशल, भावात्मक संतुलन, बहुविषयक अधिगम तथा मूल्यपरक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब एक ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जिनमें शिक्षार्थियों के भावात्मक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास हेतु बहुमूल्य शिक्षाएँ निहित हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मसंयम, निष्काम कर्म, समत्व, आत्मबोध तथा मानसिक स्थिरता पर बल दिया गया है, जबकि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रेम, सेवा, समानता, विनम्रता, करुणा तथा ईश्वर–स्मरण के माध्यम से अन्तःशुद्धि एवं मानसिक शान्ति का मार्ग प्रतिपादित किया गया है। इन दोनों ही पावन ग्रन्थों का शिक्षा–दर्शन शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

1.2 शोध अध्ययन की आवश्यकता :

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में तकनीकी एवं व्यावसायिक दक्षताओं पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण शिक्षार्थियों के भावात्मक एवं नैतिक पक्ष की उपेक्षा होती जा रही है। आधुनिक जीवन शैली, सामाजिक प्रतिस्पर्धा, डिजिटल निर्भरता एवं पारिवारिक विघटन के कारण विद्यार्थियों में तनाव, अकेलापन, आक्रोश, असहिष्णुता एवं अवसाद जैसी समस्याएँ निरन्तर बढ़ रही हैं।

ऐसी स्थिति में शिक्षा को केवल परीक्षा–उन्मुख न बनाकर जीवनोपयोगी एवं भावात्मक रूप से संतुलित बनाना आवश्यक हो गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी इसी आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा की पुनर्स्थापना पर बल देती है। अतएव, यह अध्ययन इस दृष्टि से आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रमुख ग्रन्थों में निहित शिक्षा–दर्शन को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से जोड़ा जा सके।

इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में बहुविषयक अध्ययन की अवधारणा भी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी है। प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा–दर्शन, मनोविज्ञान, नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा भावात्मक स्वास्थ्य जैसे विविध आयामों को एक साथ समाहित करता है, जिससे इसका बहुविषयक स्वरूप और अधिक सुदृढ़ हो जाता है।

1.3 शोध अध्ययन का औचित्य एवं महत्त्व :

इस अध्ययन का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में संवेगात्मक स्वास्थ्य की समस्या अत्यन्त गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। शिक्षार्थियों में मानसिक तनाव एवं भावात्मक असंतुलन की बढ़ती प्रवृत्तियाँ शिक्षा के उद्देश्य पर प्रश्नचिह्न खड़े करती हैं। अतएव, वर्तमान समय में एक ऐसी शिक्षा–दृष्टि की आवश्यकता है जो शिक्षार्थियों में आत्मबल, नैतिक चेतना एवं मानसिक संतुलन का विकास कर सके। प्रस्तुत अध्ययन का महत्त्व निम्नवत् आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है –

1) यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परम्परा के पुर्नस्थापन में सहायक होगा।
2) यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के उद्देश्यों को व्यावहारिक आधार प्रदान करेगा।

3) इससे शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु वैकल्पिक शैक्षिक दृष्टिकोण विकसित हो सकेगा।

4) यह अध्ययन मूल्यपरक शिक्षा एवं चरित्र निर्माण की दिशा में सहायक सिद्ध होगा।

5) इससे शिक्षकों एवं नीति–निर्माताओं को भारतीय दार्शनिक परम्पराओं पर आधारित शैक्षिक कार्यक्रम विकसित करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

1.4 शोध अध्ययन हेतु सूत्रीकृत शोध उद्देश्य :

1) भारतीय ज्ञान परम्परा के सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शिक्षा–दर्शन का अध्ययन करना।

2) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में निहित समग्र शिक्षा सम्बन्धी अवधारणाओं का अध्ययन करना।

3) शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु दोनों ग्रन्थों में निहित शैक्षिक तत्त्वों का विश्लेषण करना।

4) श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शिक्षा–दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5) आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित भावात्मक शिक्षा की उपयोगिता का अध्ययन करना।

1.5 शोध अभिकल्प :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। अतएव, इसमें वर्णनात्मक तथा दार्शनिक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जाएगा, जिनमें प्रमुख रूप से श्रीमद्भगवद्गीता, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, शोध आलेख, पुस्तकों एवं सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन सम्मिलित होगा।

- **अध्ययन की प्रकृति :** प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, दार्शनिक, विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक शोध प्रकृति पर आधारित है। इसमें श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में निहित शिक्षा–दर्शन का राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के परिप्रेक्ष्य में विवेचन एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, जिससे शिक्षार्थियों के संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन सम्बन्धी तत्त्वों को स्पष्ट किया जा सके।
- **तथ्य संकलन के स्रोत :** प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 को सम्मिलित किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में शोध पत्रिकाएँ, पुस्तकें, ई–संसाधन एवं शोध प्रबन्धों का अध्ययन किया गया है।
- **विश्लेषण की पद्धति :** अध्ययन में विषयवस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया है तथा इसके माध्यम से दोनों पावन ग्रन्थों में निहित शिक्षा–दर्शन एवं संवेगात्मक स्वास्थ्य सम्बन्धी तत्त्वों का विवेचन किया गया है।

1.6 संवेगात्मक स्वास्थ्य संवर्धन के परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के शैक्षिक तत्त्वों का विवेचन –

(क) श्रीमद्भगवद्गीता में संवेगात्मक स्वास्थ्य की अवधारणा :

श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य को मानसिक संतुलन एवं आत्मनियन्त्रण की शिक्षा प्रदान करती है। श्रीमद्भगवद्गीता में निहित "समत्व योग" को जीवन का आदर्श माना गया है। शिक्षार्थियों के लिए यह शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वर्तमान समय में विद्यार्थी अत्यधिक मानसिक दबाव का सामना कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता

में वर्णित यह शिक्षा अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती है–

।। योगः कर्मसु कौशलम् ।।

अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है। यह सिद्धान्त विद्यार्थियों में एकाग्रता, आत्मविश्वास तथा कर्तव्यनिष्ठा का विकास करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मसंयम, धैर्य, विवेक तथा भावनात्मक स्थिरता को शिक्षा का अभिन्न अंग माना गया है, जो शिक्षार्थियों को तनावमुक्त एवं संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

(ख) श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भावात्मक संतुलन की शिक्षा :

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मानव समानता, प्रेम, करुणा एवं सेवा की भावना पर आधारित शिक्षा–दर्शन प्रस्तुत करता है। इसमें संवेगात्मक शुद्धि को आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में निहित गुरु परम्परा के अनुसार मनुष्य के भीतर विद्यमान अहंकार, क्रोध, लोभ एवं मोह मानसिक अशान्ति के कारण हैं। इनके परित्याग से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है। शिक्षार्थियों के लिए यह शिक्षा अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि इससे उनमें सह–अस्तित्व, सहयोग एवं सामाजिक संवेदनशीलता का विकास होता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के अंतर्गत "नाम सिमरन", "आत्म–चिन्तन" एवं "सेवा" को मानसिक शान्ति का माध्यम बताया गया है, जिससे विद्यार्थियों में सकारात्मकता एवं भावनात्मक संतुलन का विकास सम्भव होता है।

(ग) राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एवं भावात्मक शिक्षा :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 शिक्षा को समग्र विकास की प्रक्रिया मानती है। इसमें संज्ञानात्मक विकास के साथ–साथ भावात्मक, नैतिक एवं सामाजिक विकास पर भी बल दिया गया है। इस नीति के अंतर्गत जीवन–कौशल, नैतिक शिक्षा, भारतीय ज्ञान परम्परा, योग, ध्यान तथा अनुभवात्मक अधिगम को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। यह दृष्टिकोण श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में निहित शिक्षा–दर्शन से सामंजस्य स्थापित करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में बहुविषयक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है, जो प्रस्तुत अध्ययन के बहुआयामी स्वरूप को और अधिक प्रासंगिक बनाता है।

(घ) शिक्षार्थियों के चरित्र निर्माण एवं नैतिक विकास में भारतीय ज्ञान परम्परा की भूमिका :

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन न होकर व्यक्तित्व का समग्र निर्माण माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दोनों ही ग्रन्थ शिक्षार्थियों में नैतिकता, अनुशासन, आत्मसंयम तथा मानवीय मूल्यों के विकास पर विशेष बल देते हैं। वर्तमान समय में जब शिक्षा अधिकाधिक प्रतिस्पर्धात्मक एवं भौतिकतावादी होती जा रही है, तब विद्यार्थियों में नैतिक विचलन, असहिष्णुता एवं आत्मकेन्द्रित प्रवृत्तियों का विकास देखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा–दर्शन अत्यन्त प्रासंगिक सिद्ध होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में सत्य, कर्तव्यपरायणता, धैर्य, आत्मनियन्त्रण तथा निष्काम कर्म की शिक्षा प्रदान की गई है, जो विद्यार्थियों में आत्मबल एवं नैतिक चेतना का विकास करती है। दूसरी ओर, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब प्रेम, सेवा, सहिष्णुता, समानता एवं मानव कल्याण की भावना को शिक्षा का मूल आधार मानता है। इन दोनों ग्रन्थों की शिक्षाएँ विद्यार्थियों को केवल सफल व्यक्ति ही नहीं, अपितु संवेदनशील एवं उत्तरदायी नागरिक बनने की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। अतः भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा शिक्षार्थियों के चरित्र निर्माण एवं संवेगात्मक संतुलन हेतु अत्यन्त उपयोगी मानी जा सकती है।

(ङ) तुलनात्मक विवेचन

क्र.सं.	**आधार**	**श्रीमद्भगवद्गीता**	**श्री गुरु ग्रन्थ साहिब**
01.	शिक्षा का उद्देश्य	आत्मबोध एवं कर्मयोग	सेवा, प्रेम एवं समानता
02.	भावात्मक स्वास्थ्य	समत्व एवं आत्मसंयम	करुणा एवं विनम्रता
03.	मानसिक शान्ति का माध्यम	योग एवं निष्काम कर्म	नाम–स्मरण एवं सेवा
04.	नैतिक आधार	धर्म एवं कर्तव्य	मानवता एवं सह–अस्तित्व
05.	शिक्षार्थी विकास	आत्मविश्वास एवं विवेक	संवेदनशीलता एवं सहिष्णुता

इस प्रकार, उपरोक्त तुलनात्मक विवेचन से यह सुस्पष्ट होता है कि दोनों ही पावन ग्रन्थ शिक्षार्थियों के समग्र एवं भावात्मक विकास हेतु अत्यन्त उपयोगी शैक्षिक दृष्टि प्रदान करते हैं।

1.7 निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित शिक्षा–दर्शन आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दोनों ही ग्रन्थ शिक्षार्थियों के भावात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता जहाँ आत्मसंयम, समत्व एवं कर्मयोग के माध्यम से मानसिक संतुलन स्थापित करती है, वहीं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब प्रेम, सेवा, करुणा एवं समानता के माध्यम से भावात्मक स्वास्थ्य का संवर्धन करता है। दोनों ग्रन्थों की शिक्षाएँ राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के उद्देश्यों के अनुरूप समग्र शिक्षा की अवधारणा को सुदृढ़ करती हैं। अतः यह आवश्यक है कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित मूल्यपरक एवं भावात्मक शिक्षा को समुचित स्थान प्रदान किया जाए, जिससे शिक्षार्थियों का केवल बौद्धिक ही नहीं, अपितु भावात्मक एवं नैतिक विकास भी सुनिश्चित किया जा सके।

इसके अतिरिक्त, प्रस्तुत अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षा–दृष्टि केवल आध्यात्मिक उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी सक्षम है। वर्तमान समय में विद्यार्थियों के मध्य बढ़ती मानसिक अस्थिरता, प्रतिस्पर्धात्मक तनाव एवं सामाजिक विखण्डन जैसी समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षा में भावात्मक एवं नैतिक आयामों को पुनर्स्थापित करना आवश्यक हो गया है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में निहित शिक्षा–दर्शन शिक्षार्थियों में आत्मबल, सहिष्णुता, सकारात्मकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का समन्वित स्वरूप भविष्य की शिक्षा को अधिक मानवीय, संतुलित एवं मूल्यपरक बनाने की दिशा में एक सशक्त आधार प्रस्तुत करता है।

1.8 सन्दर्भ सूची :

1) आनन्द, एम.के. (2021). भारतीय ज्ञान परम्परा एवं समकालीन शिक्षा. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन।

2) कुमार, एस. (2022). "राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 एवं मूल्यपरक शिक्षा का स्वरूप।" भारतीय शिक्षा समीक्षा, 14(2), 45–53।

3) भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय।

4) सिरोला, सागर सिंह (2025). "समकालीन शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।" शिक्षा विमर्श शोध पत्रिका, 8(1), 66–74।

5) सिरोला, सागर सिंह (2025). "शिक्षार्थियों के नैतिक एवं भावात्मक विकास में श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका।" भारतीय शिक्षा एवं दर्शन जर्नल, 5(2), 112–119।

6) श्रीमद्भगवद्गीता (2018). गोरखपुर : गीता प्रेस।

7) श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (2019). अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी।

8) शर्मा, आर.एन. (2020). शिक्षा–दर्शन एवं भारतीय संस्कृति. आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।

सम्पर्क एवं अणु–डाक सूत्र : +919412167505 / sagarsinghsirola@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 168-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Philosophies of Non-Binarism : Tracing the Influence of Indian Spiritual Traditions on Contemporary Western Critical Thought

Dr. Sambhu R

Assistant Professor, PG Department of English, N.S.S. College, Pandalam

ORCID ID: 0009-0005-8328-2481

Abstract :

This article attempts to delve into the overlaps between Indian spiritual traditions and contemporary critical thought. It argues that ongoing discussions in the field of philosophical posthumanism are informed by insights derived from Advaita philosophy which considers existence to be non-binary. Although philosophical posthumanism developed in academic circles in the west in the 1990s as a response to the stated failed of postmodernism to develop an inclusionary framework for those subjectivities subsisting on the margins, a careful study of the central tenets of this emerging body of thought reveals a rich infusion of Advaita philosophy. By systematically examining the core metaphysical doctrines of Advaita Vedanta, the article asserts that within the matrix of Indian spirituality, human beings have fundamentally always been understood through a lens that mirrors a posthuman ontology. Consequently, the article demonstrates how philosophical posthumanism and its commitment to re-evaluating the human condition through a decentralized, rhizomatic perspective, walks more or less the very same conceptual path forged centuries ago by Advaita philosophy.

Keywords : Advaita, non-binarism, posthumanism, duality, inclusivity.

While the vital role of Indian spiritual traditions has historically been overlooked in the genealogy and development of posthuman studies, correcting this oversight is becoming increasingly urgent. We are entering an era defined by the rise of sentient artificial intelligence and the steady erosion of traditional human boundaries, which simultaneously blurs long-standing existential lines. In the past, the posthuman elements within Indian spirituality were largely understood through a symbolic or metaphorical lens, and only advanced spiritual practitioners achieving elevated states of consciousness could collapse the divide between subject and object during mystical experiences. By

contrast, the present century is driven by unprecedented technological breakthroughs that possess the actual, physical capacity to engineer and elevate the human brain far beyond its inherent biological limitations.

To bridge these two worlds, this article explores the structural overlaps between posthuman and Advaitic ontologies. It achieves this first by anchoring philosophical posthumanism—an offshoot of posthumanism—within the framework of modern, post-industrial societies where technology and religious impulse often intersect, and subsequently by mining Indian spiritual traditions for their foundational non-dualism. Ultimately, this analysis aims to map out a distinct, spiritually grounded trajectory for the future of Posthuman Studies.

The concept of spirituality remains a subject of intense and vibrant debate across a wide variety of academic and cultural disciplines. While the term has modernly been absorbed into the framework of institutionalized religions and is frequently acquiring conflicting or contradictory meanings due to how broadly it is applied, its classical, foundational meaning is much more precise. Originally, the term signifies the profound, intrinsic interconnectedness that binds all forms of existence together, seamlessly uniting both the living and the non-living worlds.

Spirituality conceives of the outer and inner worlds as inseparable and coterminous with each other. The word "spiritual" comes from Latin "spirare" meaning "to breathe" (Benfey 34). The Sanskrit equivalent of "spiritual" which is adhyatmika means "that which is related to the Supreme spirit, or to the soul as the presiding spirit" (Benfey 12). Both Latin and Sanskrit etymological roots highlight the foundational role of an animating principle or vital element that sustains all material forms. Nurturing an awareness of this life force can induce a transcendental state of consciousness where the boundaries separating the individual self from the external world are steadily dissolved. In alignment with this view, Indian spiritual traditions assert that the individual soul (Atman) and the ultimate, universal reality (Brahman) are fundamentally identical. It is only avidya, or cosmic ignorance, that serves as a veil, obscuring this intrinsic unity. Once this veil of avidya is lifted through the dedicated cultivation of self-awareness, the artificial divisions and rifts between different states of being, which are in turn constructed and enforced by socio-cultural conditioning, become glaringly self-evident, ultimately losing all of their existential significance.

Similarly, philosophical posthumanism is fundamentally grounded in the non-duality of existence. Operating as a direct critique of Liberal Humanism, philosophical posthumanism contends that since the era of the pre-Socratic philosophers, Western intellectual frameworks have been inherently dualistic, defined by a perpetual, underlying tension between the concepts of Being and Becoming. This conceptual conflict endured through the Middle Ages and took on entirely new

dimensions during the Enlightenment, an era that championed human reason as the primary tool for liberating humanity from its self-imposed immaturity. By dismantling these deeply entrenched binaries, philosophical posthumanism paves the way for a rich proliferation of identities that are too fluid and multifaceted to be captured or mapped by traditional, representational frameworks built on Humanistic paradigms.

Rosi Braidotti argues in The Posthuman (2013) that posthumanism enacts a re-evaluation of the idea of subjectivity by conceptualizing it as a transversal domain that comprises the human and the non-human, together with the earth with all the entities connected within a "monistic, relational structure" (Braidotti 87). Philosophical posthumanism is grounded in a relational mode of ontology that calls for a paradigm shift in our perception of the world around us. While centuries of deeply ingrained social conditioning have led us to accept dualities and the rigid hierarchy of differences as indisputable truths, a rigorous scientific look at the evolution of life easily dismantles our illusions of human purism and innate superiority. Theorists now anticipate that a posthuman future will be defined not merely by a symbolic blurring of the ontological boundaries between humans and non-humans, but by actual, transgressive physical interactions between different embodied states. If the height of the postmodern era represented the ultimate culmination of Nietzsche's famous pronouncement of the "Death of God," the dawn of posthumanism will instead be characterized by a revitalization of spirituality. This new spirituality, however, is entirely decoupled from traditional religious frameworks. Instead, it is deployed secularly across spatial dimensions that seamlessly blend the virtual and the real worlds.

Although philosophical posthumanism is a body of knowledge that got institutionalized as a discipline in the 1990s in Western Humanities departments, its intellectual roots stretch as far back as the classical period of Hindu philosophy. It shares a lot of similarities and affinities with Advaita on account of its disruptive and non-dualistic tendencies. Advaita, which literally means "non-two" or "non-dual", recognizes the individual as being a dynamic node in the network of interconnections that make up existence. Advaita philosophy posits no fundamental difference between different manifestations of reality and believes, much like modern Physics, that matter and energy are one, or that the whole of existence is linked at various nodes of interconnection.

Advaita philosophy, as it is understood now, owes much to Sri Sankara's commentaries on the principal Upanishads, the Bhagavad Gita, and also the Vedanta Sutra. The crux of Advaitic philosophy, which can be encapsulated in the mahavakya "Tatsvam Asi," which means "You are that," (Grimes 329) points to the foreclosure of the divide between the Self and the Other, which in Posthuman Studies has emerged as the most phenomenal articulation of the century following atrocities and indignities

directed against Black communities, people with genetic mutations, and so on, all of whom are traditionally excluded from mainstream humanity.

Since philosophical posthumanism focuses on bridging the divide between the Self and the Other, human and non-human, human and the environment, it has become the natural progression of Advaita philosophy whose most primary concern, as the name attests, is the supersession of dualities. By understanding human existence as an integral yet minor part of a dynamic and interconnected whole, Advaita recuperates human existence within a larger cosmic framework. Advaita believes that reality is at once nirguna or "devoid of qualities" and saguna or "endowed with qualities." It is simultaneously unconditioned and conditioned, determinate and non-determinate.

At present, non-binarism which is at the heart of posthuman philosophy, is garnering a lot of interest not just in the field of literary studies but also in science, where the concept is coupled with the latest developments in the domain of quantum mechanics to account for many of the unexplained mysteries of life. Non-binarism, which refutes all kinds of Cartesianism, is particularly favoured by modern physics because as Fritjof Capra opines in his seminal work The Tao of Physics (1975), it brings the world home to "the parallels between the worldview of physicists and mystics" (Capra 7). The posthuman relational ontology proposed by Karen Barad also clarifies that the subject and the object are interchangeable cognitive positions that constitute and complement each another. She argues that "relata do not precede relations; rather, relata-within-phenomena emerge through specific intra-actions" (Barad 334), and thereby illumines posthumanism's intellectual indebtedness to Advaita philosophy.

Philosophical posthumanism, which mirrors many of the core principles of Advaita philosophy, does not insist on any fixed separation between animate and inanimate, human and non-human, human and other— separations that give rise to still more dualisms in the form of female/male, nature/culture, and black/white, etc. It is highly critical of Western taxonomic systems that divide life into "bios" and "zoe", the intelligent and vegetative parts respectively. Whereas "bios" is particular to human beings since it is the intelligent aspect of life, "zoe" corresponds to the more mechanistic functions of life embodied by animals and automata. By adopting a Deleuzean ontology, philosophical posthumanism rejects these rigid categorizations, viewing states of existence instead as rhizomatic networks that constantly cross and dissolve traditionally opposed boundaries. This post-dualistic framework champions difference and collapses rigid existential divides. Ultimately, this approach has the potential to build the foundation for a transformative, inclusive secularism that looks beyond the human experience to embrace the entirety of the natural world.

Works Cited :

- Barad, Karen. Meeting the Universe Halfway : Quantum Physics and the Entanglement of Matter and Meaning. Duke University Press: Durham et al. 2007.
- Benfey, Theodor. A Sanskrit-English Dictionary: With References to the Best Edition of Sanskrit Author and Etymologies and Camparisons of Cognate Words Chiefly in Greek, Latin, Gothic, and Anglo-Saxon. India, Asian Educational Services, 1998.
- Braidotti, Rosi. Posthuman Knowledge. United Kingdom, Wiley, 2019.
- Davies, Tony. Humanism. United Kingdom, Taylor & Francis, 2006.
- Grimes, John A. A Concise Dictionary of Indian Philosophy: Sanskrit Terms Defined in English. United States, State University of New York Press, 1996.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
June 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 173-175

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संजीव की कहानियों में नारी

डॉ. सनु थोमस
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कैथलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा, केरल।

हर क्षेत्र में प्रगति का डंका बजानेवाली इक्कीसवीं सदी की नारी के दामन में आज फूल नहीं काँटों की सौगातें भरी है। जहाँ वह अपनी कुंठाओं और संकीर्णताओं से लड़ रही है, पुरातन कूडमगज मान्यताओं ने उसकी राह रोकी है। पुरुषवादी मानसिकता का आंक नारी मन को पीड़ित कर जाता है। इन सभी के बीच में भी आधुनिक नारी सफलतापूर्वक राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि के विविध क्षेत्रों में निपुणतापूर्वक कार्य कर रही है। उन्होंने अपने चतुर्दिक विकास से सिद्ध कर दिया है कि सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान और कई क्षेत्रों में उससे भी अधिक योग्यता और उत्तरदायित्व से काम कर सकती है। रचनाधर्मी साहित्यकार संजीव ने साहित्य सृजन में अपना योगदान देते हुए नारी जीवन का वास्तविक अंकन किया है। उनके साहित्य में शोषित, असहाय और पीड़ित नारी के प्रति हमेशा सहानुभूति रही है। नारी की निद्रिस्त अस्मिता को जागृत करते हुए नारी को प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देने का सराहनीय कार्य उन्होंने किया है। नारी जीवन को उजागर करते हुए, उसके दहकते यथार्थ को अंकित करना संजीव की रचनाओं का लक्ष्य है।

'सीपियों का खुलना' कहानी की नायिका ललिता, जो एक रिटायर्ड पुलिस इंस्पेक्टर की बेटी है। ललिता और प्रदीप एक दूसरे को बहुत चाहते थे। लेकिन बाद में प्रदीप अपने परिवार की खर्चा ललिता के ऊपर डालकर जिम्मेदारियों से मुक्त होना चाहता है। इसलिए ललिता उसके साथ शादी करने से मना करके उसका प्लान चौपट कर देती है। उन्होंने कहा– "एक ईमानदार और बदहाल बाप की बेटी होने का खमियाजा भुगत रही हूँ अब.. ..एक ईमानदार और बदहाल की पत्नी बनकर जीने का खतरा नहीं उठा सकती।"[1]

आधुनिक नारी यथार्थ स्थिति को अपनानेवाली है। 'उन्मया' कहानी की नायिका निशा लड़की देखनेवालों के सामने घर की वास्तविक स्थिति कहने में न चिचकती है। उन्होंने कहा कि उसके बाबा के पास दहेज देने के लिए कुछ भी नहीं है। यह सुनकर लड़केवाले उनका निर्णय पत्र से देने की बात करते हुए वहाँ से निकल पड़े। निशा कहती है– "सूचित कर देंगे। वर्षों से यह नाटक झेल रही हूँ य सो सारे संवाद हमें याद है आप जैसों का भी, अपना भी।"[2] इतना कहकर वह दरवाजा बंद करती है। स्वाभिमानी लड़की निशा कुछ नहीं छुपाती है। "निशा किसी के सामने झुकती नहीं है। वह स्वाभिमानी लड़की है। जिस तरह वह दरवाजा बंद करती है वह सीधा उन लोगों के नाक में लगता है। इसमें वह लड़की कुछ नहीं छुपाती है सब सच बताती है।"[3] 'अपराध' कहानी में सरकार, न्याय व्यवस्था, राजनीति आदि का जो खोखलापन है उसकी पोल खोलने का साहसी काम का वर्णन

है। कहानी में सचिन और संघमित्रा उच्च शिक्षित युवक–युवती है। वास्तव में संघमित्रा आधुनिक नारी का प्रतिरूप है। मेडिकल की मेधावी छात्रा होते हुए भी वह अपने भाई के लिए जीवन अर्पित कर देती है। त्याग, स्वाभिमान एवं बलिदान की प्रतिरूप संघमित्रा समाज के लिए एक आदर्श है।

दलित स्त्रियों को दलित होने के नाते अक्सर सामाजिक व लैंगिक दमन एक साथ झेलना पडते हैं। 'जसी बहू' कहानी की जसी चमार जाति की है। उसका पति कलकत्ता में रहता है। घर में कोई पुरुष न होने के कारण गाँव के ठाकुर और पंडित लोग उसको हवस का शिकार बनाने की कोशिश करते हैं। अपने ऊपर हुए शोषण एवं अत्याचारों का वह अकेला सामना करती है। "जसी बहू जिस ताकत के साथ पुरुष प्रधान समाज का अकेली मुकाबला करती है और अन्याय के पक्ष में खड़े पति को जिस प्रकार ठुकराती है, वह आधुनिक नारी का साहसी एवं विद्रोही रूप दिखाई देता है।"[4]

'कठपुतली' कहानी कल्याणी नामक एक युवती के जीवन पर आधारित है। कल्याणी को पिता अर्थाभाव के कारण एक सेठ को बेच देता है, जो कल्याणी के प्रति कठपुतली के समान व्यवहार करता है। कुछ दिन के बाद सेठ किसी और के साथ शादी कर लेता है। कल्याणी की शादी भी शंभूलाल नामक व्यक्ति से कर लेता है। वहाँ सेठ निरंतर आता–जाता रहता है। लेकिन शंभूलाल इसके बारे में कुछ नहीं बोलता। शंभूलाल की घृणा की शिकार कल्याणी हो जाती है। अंत में वह हारकर आत्महत्या कर लेती है। "कठपुतली–सी जीवन स्थिति के विरुद्ध उनकी आत्महत्या प्रतिरोध के रूप में सामने आती है।....स्पष्ट है कि संजीव ने अकेली, असहाय और अमीरों के चंगुल में फंसी गरीब औरतों की पीड़ा को कल्याणी के माध्यम से कथ्य के रूप में उठाया है।"[5]

'घर चलो दुलारीबाई' कहानी की नायिका दुलारीबाई अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए दिखाई पड़ती है, क्योंकि वह अपने जीवन में कठिन–से–कठिन समस्याओं का सामना अकेली कर रही है। मायकेवाले और ससुरालवाले दोनों ने उसकी जायदाद के लिए दुलारीबाई के पति, पिता एवं बच्चे सभी की हत्या कर दी। दुलारीबाई इसके विरुद्ध अदालत में मुकदमा दायर करती है। लेकिन न्याय दिलानेवाला जज भी अन्याय के पक्ष में है। जज ने फैसला सुनाया कि दुलारीबाई मर गई है, तो उन्होंने उत्तर दिया– "एक दुनिया मर चुकी है, मगर एक दुनिया जिंदा है अभी। तुम्हें अपने जिंदा रहने का सबूत अभी पेश करना है न।"[6] वास्तव में भोली–भाली दुलारीबाई को लड़ने की ताकत उस समय हाजिल हुआ था जब घर–परिवारवालों ने उसके विरुद्ध लड़ते थे। महिला सशक्तीकरण का एक अच्छा उदाहरण संजीव ने प्रस्तुत कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया। "दोहरी जिंदगी जीते हुए नारी कभी–कभी खुद को असहाय एवं उपेक्षित पाती है लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उसने कहीं भी हार स्वीकार कर ली है। वह निरंतर परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करती हुई प्रगति पथ में अपने झंडे गाड रही है और उसे दृढ़ विश्वास है कि वह इसी तरह सीढी–दर–सीढी चढ़ती हुई सफलता की उपलब्धियाँ प्राप्त करती रहेगी।"[7] यहाँ दुलारीबाई का लक्ष्य एक ही था कि अपने दुश्मनों को कड़ी सजा दिलवाए।

'वापसी' कहानी में मित्र देश के फौजी देश की हजारों कुमारियों एवं जवान औरतों की इज्जत लूटते हैं। टोनी के कैंप में भी एक घायल औरत पर कमांडर ऑफिसर के साथ–साथ अन्य फौजी भी बलात्कार करते हैं। इतना ही नहीं उसे दुश्मन की कैंप में भेजकर अपने खाने का बंदोबस्त कर देते हैं। दुश्मन भी उस घायल औरत पर सामूहिक बलात्कार करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पुलिस फौजी भी नारी का यौन शोषण करके उसकी लाचार एवं बेबसी का गैर लाभ उठाते हैं।

सेवा करना नारी के मूल गुण माना जाता है। 'मरजाद' कहानी में शान्ता सबकी सेविका है। वह हर काम में अपना योगदान देती रहती है। "गांव में न मिली तो तहसील की कचहरी में, कचहरी में न मिली तो डिप्टी साहब के पास, नहीं तो बिलाक, अस्पताल थाके।"[8] तितली की तरह उड़ती फिरती शान्ता ही सब काम करती थी। गांव के प्रधान ने सब शान्ता पर छोड़ दिया है। इसी तरह गांव के आम लोग भी उसी की सेवा चाहते थे।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि संजीव ने अपनी कहानियों के माध्यम से यह व्यक्त कर दिया है कि नारी शोषण सहते–सहते विद्रोह करने उठ खड़ी हो जाती है। उनकी कहानियों के नारी पात्र अपने बारे में सोचकर अपनी नियति से हार कर रोती नहीं, लेकिन आगे बढ़ाने की हिम्मत रखती है। आज नारी की जिंदगी में किस तरह का परिवर्तन आया, वह परिवर्तन लाने के लिए किस तरह लोगों का या परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, परिस्थितियों का सामना करने की ताकत उन्हें कहाँ से मिली यह सब दिखाने का प्रयास संजीव ने अपनी कहानियों में किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. संजीव– संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, पृ. सं.–261
2. वहीं, पृ. सं.–229
3. डॉ. अनुकृष्णन एल–संजीव की कहानियों में नारी, पृ. सं.–52
4. डॉ. रामचंद्र मारुती लोढें–संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. सं.–43
5. वहीं, पृ. सं.–44
6. संजीव–संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, पृ. सं.–370
7. सरिता वाशिष्ठ–महिला सशक्तीकरण, पृ. सं.–40
8. संजीव– संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, पृ. सं.–191

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 176-180

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता एवं भविष्य की संभावनाएं

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान,
एस. पी. सी. राजकीय महाविद्यालय, भीम राजसमंद।

सारांश –

शिक्षा ही वह औषधि है, जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण का विकास संभव है। भारत में शिक्षा प्रणाली की एक बेहतर नींव वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होती है। उस काल की शिक्षा प्रणाली को भारतीय ज्ञान परम्परा की मजबूत नींव के देखा जाता है। वह शिक्षा न केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम था, अपितु मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थान का भी माध्यम था। इस शिक्षा व्यवस्था में गुरू–शिष्य के मध्य घनिष्ठ संबंध विद्यमान था, जो चरित्र निर्माण और आत्मविकास का पर्याय था। इस समय की शिक्षा का स्वरूप अत्यधिक व्यवसायिक और रोजगार की तरफ बढाने वाली है। आज तकनीकी कौशल और वैश्वीकरण के साथ–साथ आधुनिक जीवनशैली के कारण शिक्षा के क्षेत्र में अनेक बदलाव दिखाई देते है। वैदिक शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य आदर्श नागरिक निर्माण करना था। वर्तमान में नैतिक मूल्यों का ह्रास, मानसिक तनाव, सामाजिक विघटन जैसी समस्याएं उत्पन्न हो रही ह। इस शोध पत्र में वैदिक शिक्षा की उपयोगिता, वर्तमान में प्रासंगिकता एवं भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

संकेताक्षर – वैदिक शिक्षा, गुरूकुल प्रणाली, मूल्ययुक्त शिक्षा, भारतीय ज्ञान परम्परा।

प्रस्तावना –

किसी भी देश की प्रगति और विकास की नींव उस देश की प्रभावी शिक्षा व्यवस्था को माना जाता है। भारत में प्राचीन काल से ही अत्यन्त समृद्ध और गौरवशाली शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था रही है। वैदिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीय संस्कृति की रक्षा करने और मनुष्य के जीवन के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उस समय की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्षम बनाना था। शिक्षा के माध्यम से ही जीवन के महत्वपूर्ण मूल्यों को आत्मसात् करवाया जाता था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मूल रूप से तकनीकी कौशल, व्यवसायिक दक्षता और रोजगार पर केन्द्रित हो गई है। वर्तमान में वैदिक शिक्षा के मूल सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ समन्वित करना आवश्यक हो गया है।

प्राचीन काल से ही भारत में सनातन धर्म का विचार प्रमुख रूप से हमारे सामने रहा है। वैदिककाल से

लेकर आज तक निरन्तर बदले हुए स्वरूप में शिक्षण संस्थाएं आज हमारे समक्ष विद्यमान है। भारत प्राचीन काल से ही शिक्षा के केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति देशकाल से परे जाकर जीविकोर्पाजन के संसाधन जुटा सकता है। शिक्षा के बिना व्यक्ति अपने जीवन में वह उन्नति नहीं कर सकता है, जिससे उसका जीवन आसानी से गुजर सके। शिक्षा का माध्यम भले ही कोई भी भाषा क्यों न हो, परन्तु उनका उद्देश्य सदैव एक ही रहता है। शिक्षा की महत्ता का वर्णन साहित्य की अनेक विधाओं में ही नहीं जीवन के प्रत्येक मोड़ पर समझा जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति को जीवन की उँचाईयों तक ले जाने वाली वह सीढ़ी है, जिसके बिना व्यक्ति चाहकर भी शिखर पर नहीं पहुंच सकता है। आज जीवन इतना कठिन बन गया है, कि सादगी की बात करना बेमानी प्रतीत होता है। जब से भौतिकता वादी संस्कृति ने भारतीय परिवेश में प्रवेश किया है, तब से व्यक्ति एक यंत्र की भॉति अपना जीवन जी रहा है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की नींव वेदों में दिखाई देती है। वेदों में वर्णित जीवन पद्धति आज की भौतिकवादी सभ्यता और संस्कृति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है। वेदों के जीवन की तुलना यदि आज के जीवन से की जाए तो प्रतीत होता है, कि वेदों में वर्णित सादगी पूर्ण आज के दिखावटी जीवन से कहीं अधिक सहज और सरल था, जिसमें मानवता के सभी गुण विद्यमान थे। आज व्यक्ति की जीवन प्रत्याशा घटकर मात्र 60 के करीब रह गई है, जिसका कारण मात्र भौतिकतावादी सभ्यता और संस्कृति का पनप जाना है। आज व्यक्ति भागता हुआ प्रतीत होता है, जिसका न कोई अंत नहीं है। आज का व्यक्ति आगे बढ़ना ही जानता है, रूकने का नाम नहीं है।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. वैदिककालीन शिक्षा की प्रमुख अवधारणा को समझना।
2. आधुनिक शिक्षा एवं वैदिक शिक्षा प्रणाली का तुलना करते हुए, वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता के बारे में समझना।
3. वैदिक शिक्षा में मूल्यों के बारे में जानना और भविष्य की संभावनाओं के बारे में मूल्यांकन करना।

अनुसंधान पद्वति –

इस शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

वैदिक कालीन शिक्षा का अर्थ एवं स्वरूप –

वैदिक कालीन शिक्षा उस शिक्षा व्यवस्था को कहा जाता है जो वेदों और भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित थी। इस प्रणाली में शिक्षा का केंद्र गुरुकुल होते थे, जहाँ विद्यार्थी गुरु के संरक्षण में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। वैदिक शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी। इसमें दर्शन, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, गणित, राजनीति, युद्धकला, कृषि, योग तथा नैतिक शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाता था। शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य थे– चरित्र निर्माण, आत्मविकास, व्यक्तित्व विकास, नैतिक गुणों का विकास, सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास, आध्यात्मिक उन्नति इत्यादि।

वर्तमान में वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता –

वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समग्र शिक्षा के माध्यम से छात्रों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान

केन्द्रित किया जा रहा है। आज व्यवसायिक कौशल पर आधारित शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। आज समाज में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना में; विद्यार्थियों को मानसिक तनाव व अवसाद से उभारने में; सर्वांगीण विकास एवं प्रकृति में व्याप्त समस्याओं के समाधान में वैदिक शिक्षा की अवधारण काफी कारगर साबित हो सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा में शिक्षा, समग्र विकास आधारित शिक्षा, कौशल आधारित शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा और भारतीय ज्ञान परम्परा पर जोर दिया जा रहा है। जो वैदिक कालीन शिक्षा की महत्ता का प्रमाण है।

आधुनिक एवं वैदिक शिक्षा तुलनात्मक अध्ययन –

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अन्तर्गत वेदों में वर्णित शिक्षा पद्धति और आज की शिक्षा पद्धति की तुलना की जाए तो प्रतीत होता है कि शिक्षा का अर्थ ही बदल गया है। आज की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति में किताबी ज्ञान को रटने की शिक्षा प्रणाली बनती जा रही है, शिक्षा का संस्कारों से संबंध टूटता ही जा रहा है। जबकि शिक्षा के साथ–साथ संस्कारों का होना अत्यावश्यक है। बिना संस्कारों के प्राप्त शिक्षा का कोई उद्देश्य दिखाई नहीं देता है। शिक्षा मात्र कागज के पन्नों पर लिखे अंकों से प्रदशित की जा रही है। शिक्षा मात्र ज्ञान को रटने का नाम नहीं है, वरन् शिक्षा किसी भी देश के नागरिकों में अपने समाज और देश की सभ्यता और संस्कृति को आत्मसात करने का भी तरीका है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपना जीवन सरल तरीके से जी सकता है। शिक्षा मानव को मानव बनाने का तरीका है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने परिवार, समाज और देश में अपना स्थान बनाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। जिसके कारण व्यक्ति की पहचान सुनिश्चित हो सके। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी बहुमुंखी प्रतिभा को समाज और देश के सामने प्रदर्शित कर सकता है। इसलिए आज की शिक्षा प्रणाली वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली के अनुरूप बदलाव लाने की जरूरत है। जिसके बारे में निम्न सुझाव दिए जा सकते है –

- शिक्षा की पहुंच वास्तविक रूप में सभी लोगों तक होनी चाहिए।
- शिक्षा को मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए गुरूकुल पद्धति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा के ऊपर खर्च किया जाने वाला बजट अधिक होना चाहिए।
- आवासीय विद्यालयों का निर्माण अधिकाधिक किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम में व्यवसायिक शिक्षा को अधिक से अधिक शामिल किया जाना चाहिए।
- शिक्षा के साथ–साथ रोजगार की पर्याप्त व्यवस्था सरकारों के द्वारा की जानी चाहिए।

इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में आज सबसे बड़ा बदलाव गुरू शिष्य परम्परा में बदलाव का भी दिखाई देता है। गुरू को भारतीय धर्म ग्रंथों में भगवान से भी बड़ा माना गया है। परन्तु आज रटन्त विद्या के कारण यह परम्परा काफी हद तक लुप्त हो चुकी है। एक श्रेष्ठ परम्परा जिसके द्वारा छात्रों का सर्वाधिक विकास संभव था। वर्तमान में पढ़ने वाले छात्रों में निम्न प्रवृतियां दृष्टिगोचर होती है–

- अध्ययन कार्य को बोझ समझना।
- किसी भी कार्य में संयम, आत्मविश्वास, अस्थिरता आदि गुणों में कमी।
- गुरू शिष्य परम्परा को नजरअंदाज करना।

- नशीले पदार्थो की तरफ अग्रसित होना।
- सहनशक्ति और सहनशीलता की बहुत अधिक कमी होना।
- शिक्षा का अर्थ मात्र नौकरी प्राप्त करना।

इस प्रकार की अनेक समस्याएं वर्तमान में छात्रों में दिखाई देती हैं। जिनका समाधान मात्र वैदिककालीन शिक्षा प्रणाली में ही दिखाई देता है। आज छात्र मात्र अंक प्राप्त कर रहे है। शिक्षा का मूल उद्देश्य है जीवन का सर्वांगीण विकास करना। यह उद्देश्य धूमिल होता नजर आ रहा है। जब तक किसी देश के नागरिक शिक्षित बनकर अपने देश के रीति रिवाज, परम्पराओं का अनुगमन नहीं कर पाते है, तब वह वास्तविक शिक्षा से वंचित रह जाते है। भारतीय धर्म ग्रंथों में माता–पिता की आज्ञा का पालन करना, गुरू से विवाद न करना उनके आदेश का यथावत् पालन करना, भाई भाई का प्रेम, स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करना, देश के प्रति राष्ट्भक्ति बनाए रखना आदि गुणों का विकास होना अत्यावश्यक है। परन्तु आज भौतिकता वादी संस्कृति के फैलाव के कारण आज यह सब गुण छात्रों में लुप्त होते जा रहे है। शिक्षा का मतलब मात्र नौकरी प्राप्त करना मात्र रह गया है। जो कि गलत है। आज व्यक्ति पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बनना चाहता है, परन्तु वह अपनी सभ्यता और संस्कृति को पीछे धकेल कर आगे बढ़ना चाहता है, जो कि गलत है। आज युवा पीढ़ी दिग्भ्रमित सी रहती है। उनके सामने लक्ष्य का हमेशा अभाव सा बना रहता है। बिना लक्ष्य के निर्धारण के कारण शिक्षा का औचित्य ही नष्ट हो जाता है। अतः आज यदि शिक्षा जगत् सबसे बड़ी जरूरत है, वो है शिक्षा प्रणाली में गुरूकुल पद्धति को अपनाया जाना। जरूरी नहीं कि पुरानी गुरूकुल पद्धति को ही अपनाया जाये। आधुनिक युग के अनुरूप उसमें यथासंभव बदलाव किए जा सकते है। जिस देश के नागरिक जितने ज्यादा शिक्षित, संस्कारवान होगे वह देश उतना ही विकसित देश कहलायेगा। इस हेतु सरकारों द्वारा इस क्षेत्र में अधिकाधिक बजट देकर इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। पूर्णतः आवासीय विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए और उन्हें अधिकाधिक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। किसी भी देश का सच्चा धन उस देश का युवा वर्ग होता है। यदि युवा वर्ग श्रेष्ठ शिक्षा को प्राप्त कर लेता है, तो वह देश स्वतः ही विश्वगुरू बन जाता है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज आधुनिकता की अंधी दौड़ में युवा वर्ग जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली से गुजर कर युवा बनता है, उससे वह सहनशक्ति, धैर्य, संयम, जैसे नैतिक गुणों से काफी दूर सा चला जाता है। उसका एकमात्र ध्येय नौकरी प्राप्त करना रह जाता है। यदि उसे नौकरी नहीं मिलती है, तो निराशा, कुंठा के वातावरण में अपना जीवन जीता है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में व्यवसायिक शिक्षा को भी पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में चलाया जाना चाहिए। जिससे शिक्षा प्राप्त करके जब वह किसी भी प्रकार की नौकरी नहीं प्राप्त कर पाता है। तब उसे मिली व्यवसायिक शिक्षा उसे अपने जीवन में आगे बढ़ने में अधिक मददगार हो सकती है। आज जब युवावर्ग अधिस्नातक की शिक्षा प्राप्त कर जब नौकरी के लिए प्रयास करता है और प्रयास करते करते उसे सफलता नहीं मिल पाती है। तब वह निराशा और कुंठा का शिकार हो जाता है। अतः शिक्षा प्रणाली ही इस प्रकार की होनी चाहिए कि छात्र जीवन से ही व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के व्यवसायिक ज्ञान से परिचित हो ताकि वह अपने जीवन संग्राम में आसानी से अपना जीवन चला सके। इसी परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की महत्वूपर्ण भूमिका साबित हो सकती है। इस शिक्षा नीति में छात्रों के समक्ष आने वाली वर्तमान

की सभी चुनौतियों के साथ–साथ, वैश्विक परिदृश्य में जो समस्याएं विद्यमान है, उन सभी को ध्यान में रखते हुए, समाधान खोजने के प्रयास किए गए है। यहॉ पर हम महात्मा गांधी जी शिक्षा संबंधी विचारों को भी काम में ले सकते है। गांधी जी वर्धा योजना के कुछ बिन्दुओं को भी इसमें शामिल करके समस्याओं के समाधान खोजे जा सकते हे। रूसो की शिक्षा प्रणाली के कुछ अंश भी शिक्षा प्रणाली में काम में लिए जा सकते है। वैदिककालीन शिक्षा भारतीय ज्ञान परम्परा की अनमोल थाती है। आज की शिक्षा व्यवस्था में नैतिक मूल्यों का ह्रास, मानसिक तनाव और रोजगार की समस्या, वैश्वीकरण की चुनौतियां जो हमारे समक्ष है, उनका समाधान आधुनिक शिक्षा में संतुलित, मूल्यपरक और मानवीय शिक्षा की उचित व्यवस्था के द्वारा किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. Agarwal, J. C. (2009). Theory and principles of education: Philosophical and sociological bases of education. Vikas Publishing House.
2. Government of India, Ministry of Human Resource Development. (2020). National education policy 2020. Government of India.
3. Kumar, K. (2005). Political agenda of education: A study of colonialist and nationalist ideas. Sage Publications.
4. Pandey, K. C. (2005). Bharatiya shiksha ka itihas [History of Indian education]. Vishwavidyalaya Prakashan.
5. Sharma, R. S. (2007). India's ancient past. Oxford University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 181-187
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण महिलाओ के सशक्त विकास में स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति का अध्ययन

सोनम डावर, पी.एच.डी. शोधार्थी (समाज कार्य)
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
डॉ. वर्षा पटेल, शोध निर्देशिका
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
श्री अटल बिहारी वाजपेयी, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

सारांश :-

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ लंबे समय से समुदाय की रीढ़ रही है। वे कृषि से लेकर स्वास्थ्य सेवा तक ग्रामीण विकास के हर पहलू में शामिल है। वर्तमान में उनकी भूमिका में आत्म जागरुकता बढ रही है। सदियो से महिलाएं ग्रामीण भारत की रीढ़ रही है, लेकिन उनके योगदान को अक्सर नजर अंदाज किया जाता रहा है। स्वयं सहायता समूह एक शक्तिशाली मंच के रूप में उभरे है। जो महिलाओ की आवाज को बुलंद करते हुए ग्रामीण विकास को गति प्रदान करते है। ये जमीनी स्तर के संगठन महिलाओ को सशक्त बनाने, आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने और समुदाय के समग्र कल्याण में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सूक्ष्म ऋण और बचत से लेकर कौशल विकास और उद्यमिता तक, स्वयं सहायता समूह परिवर्तन के उत्प्रेरक साबित हुए है। सहायता नेटवर्क और संसाधनो तक पहुंच प्रदान करके, स्वयं सहायता समूहो ने ग्रामीण महिलाओ को चुनोतियो से पार पाने और अपने समुदायो मे नेतृत्वकर्ता बनने में सक्षम बनाया है। उनका प्रभाव आर्थिक विकास से परे सामाजिक विकास, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा तक फैला हुआ है।

मुख्य शब्द :- स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण महिलाओं का सशक्त विकास, वर्तमान स्थिति।

प्रस्तावना :-

नारी मानव जाति की जननी और दो पीढियो को जोडने वाली एक कडी है भारतीय संस्कृति मे समाज के इस हिस्से को सदैव ही अधिक महत्व दिया गया है। वैदिक काल मे तो महिलाओ को देवी तुल्य समझा जाता था। परंतु मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद ब्राम्हणो द्वारा हिन्दु धर्म की रक्षा एवं स्त्रियो के सतीत्व तथा रक्त की शुद्वता बनाए रखने हेतु महिलाओ के संबंध मे नियमो को कठोर बना दिया गया था। महिलाओ ने भी इन आदर्शो को अपने जीवन मे लागु करने में संकोच का अनुभव नही किया। महिलाओ की आर्थिक पराधीनता पर्दाप्रथा के कारण अशिक्षा एवं संयुक्त परिवार की सुदृढता हेतु महिलाओ को दबाकर रखने की प्रवृति ने भारत

में महिलाओ की स्थिति को निरन्तर बना दिया। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 द्वारा महिलाओ को भी पुरुषो के समान संपत्ति में अधिकार प्रदान किया गया। इन प्रयासो के फलस्वरूप महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक. परिस्थितियों मे अनेक परिवर्तन हुए फिर भी स्थिति संतोषप्रद नही कही जा सकती है। क्योकि वर्तमान समय में भी सिद्धान्त एवं व्यवहार में भिन्नता पायी जाती है। भारतीय संविधान पुरुषो महिलाओं के बीच अधिकारों की मान्यता देता है। परन्तु निर्विवाद रूप से स्त्रियो को भूमिका व क्रिया में भेद स्वीकार करता है। संविधान गत समानता की व्यवस्था महिलाओ की स्थिति संवैधानिक दृष्टि से तो सुदृढ हो गई किन्तु वास्तविक रूप में आज भी महिलाएँ शोषण व उत्पीडन की शिकार बनी हुई है। महिलाओ की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए उनकी सामाजिक रूपरेखा को जानना आवश्यक है।

स्वयं सहायता समूह से आशय :–

स्वयं सहायता समूह एक समान सामाजिक–आर्थिक स्तर के पास–पड़ोस के लोगो का एक ऐसा समूह है जो नियमबद्व तरीके से संचालित हो और आपसी सहयोग व संसाधनों से विकास के लिये प्रयासरत हो जिससे वे जीपन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तथा वे अपने जीवन पर बेहतर नियंत्रण कर सके। सामान्यतः समूह में 10–20 सदस्य होते है। सदस्यों द्वारा हर महिने छोटी छोटी बचत करके धनराशि इकट्ठा की जाती है। समूह द्वारा बचत की जाने वाली धनराशि, इसकी अवधि तथा सदस्यो को किन उद्देश्यो हेतु ऋण दिया जा सकता है, इसका निर्णय स्वयं समूह के सदस्य करते है। समूह के सदस्यो की नियमित बैठक होती है जहा वे अपनी समस्याओ की चर्चा करते है। समूह की कार्यप्रणाली लोकतांत्रिक होती है। जिसमे सदस्यो को अपने विचारो को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है। निर्णय सबकी सहमति से लिये जाते है। समूह द्वारा स्वयं अपने अभिलेखो को रख रखाव किया जाता है। समूह का बैंक मे एक बचत खाता खोला जाता है। जिसका संचालन स्वयं सदस्यों द्वारा किया जाता है। स्वयं सहायता समूह की अवधारणा की शुरूआत सबसे पहले बांग्लादेश मे सन 1992–93 मे हुई। वहा लघु वित्त सिद्वांत के जनक मोहम्मद युनूस ने यह सोच प्रस्तुत की, कि गरीब लोग अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिये ऊंचे ब्याज पर साहूकार के जाल से बच सकते है।

इस अवधारणा के आधार पर बांग्लादेश में स्वयं सहायता समूह शुरू किये गये और ग्रामीण बैंक की शुरुआत हुई। इन स्वयं सहायता समूहों की सफलता को देखते हुए एवं ग्रामीण एवं निम्न आय वर्ग के लोगो की आर्थिक स्थिति सुधारने के उद्देश्य से कई देशो में स्वयं सहायता समूहो की स्थापना की। इस प्रकार ग्रामीण और गरीबो को ऋण ग्रस्तता से दुर करने और उन्हे साहुकार के जाल से बचने मे यह समूह सहायक सिद्व हुये है। भारत में स्वयं सहायता समूहो को विभिन्न नामो से जाना जाता है, यहाँ स्वयं सहायता समूह का विकास पिछले लगभग एक दशक से अधिक हुआ है, देश में विशेष रूप से दक्षिण राज्यो में स्वयं सहायता समूहो की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है और इसे ग्रामीण महिलाओं के साथ ग्रामीण जनो के आर्थिक सशक्तिकरण का सशक्त साधन माना जाने लगा है। भारत में वैसे तो स्वयं सहायता समूह का प्रारंभ 1992 में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक ''नाबार्ड'' की योजना ''एस. एच. जी बैंक लिंकेज प्रोग्राम" के रूप मे हुई थी। किन्तु इस अवधारणा को व्यवहारिक लोकप्रियता पिछले एक दशक मे मिली है। केन्द्रीय महिला और बाल कल्याण मंत्रालय की महिला सशक्तिकरण की चर्चित योजना ''स्वयंसिद्धा" पूरी तरह इन्ही महिला समूह के माध्यम से लागू की गई है।

स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति :-

भारत मे स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति बहुत ही मजबूत है। जो ग्रामीण महिला सशक्तिकरण और वित्तीय समावेशन का मुख्य स्तंभ बने हुए है। जून 2025 तक, लगभग 91 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूह के माध्यम से 10 करोड़ से अधिक महिलाएँ जुडी हुई है। यह समूह बिना गिरवी के कम ब्याज पर ऋण प्राप्त कर सूक्ष्म उद्यम चला रही है।

- **सशक्त आर्थिक भूमिका** – 2023–24 में स्वयं सहायता समूह को 1.7 लाख करोड से अधिक का ऋण वितरित किया गया जो ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा दे रहा है।
- **उच्च पुनर्भुगतान दर** – स्वयं सहायता समूह की ऋण वसूली दर 96 प्रतिशत से अधिक है। जो उनके उच्च वित्तीय अनुशासन और विश्वसनीयता को दर्शाता हैं।
- **महिला नेतृत्व** – स्वयं सहायता समूह में अधिकांश 10–20 सदस्य महिलाएं है जो बचत छोटे ऋण और आजीविका की गतिविधियो का प्रबंधन करती है।
- **सरकारी सहयोग** – नाबार्ड और दीनदयाल अंत्योदय योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के माध्यम से स्वयं सहायता समूहो को बैंक लिंकेज प्रशिक्षण और विपणन सहायता मिल रही है।
- **सामाजिक प्रभाव** – ये समूह न केवल वित्तीय, बल्कि स्वास्थ्य, पोषण और लैंगिक न्याय जैसे सामाजिक मुद्दो पर भी काम कर रहे है।

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण भारत में गरीबी उन्मूलन और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का एक अत्यंत प्रभावी माध्यम बन गए है। अतः इस प्रकार वर्तमान स्वयं सहायता समूह देश के विभिन्न राज्यों में अनेक गतिविधियों द्वारा न केवल महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक उत्थान मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। अपितु समाज मे सकारात्मक व रचनात्मक वातावरण को विकसित करने मे भी सहायक है। अतः स्वयं सहायक समूह द्वारा देश के निर्माण में तथा विभिन्न सामाजिक विषमताओं को जैसे गरीबी, बेरोजगारी, भेदभाव. भ्रष्टाचार एवं महिला व बाल उत्पीड़न इत्यादि को जन–आन्दोलन एवं भागीदारी से दूर करने में सरकार व समाज को अपना बहुमूल्य योगदान दे सकती है। साथ ही महिलाओं के द्वारा परिवार समाज व देश की प्रगति की नीव रखी जा सकती है। यह तभी हो सकता है जब हम उन्हे सशक्त व मजबूत बनाए इस तथ्य को साकार करने मे स्वयं सहायता समूह की भागीदारी निश्चित कर भारत वास्तविक अर्थो में समृद्व विकसित एवं समता मूलक राष्ट्र की श्रेणी मे ला सकते है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :-

- स्वयं सहायता समूहो के गठन और कार्यप्रणाली का अध्ययन करना।
- स्वयं सहायता समूह से जुडी महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
- स्वयं सहायता समूह से जुडी महिलाओं की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
- स्वयं सहायता समूहो मे शामिल होने के बाद महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का अध्ययन करना।

शोध उपकल्पना/परिकल्पना :-

- स्वयं सहायता समूह के प्रयासों से महिलाओं मे आर्थिक आत्मनिर्भरता व पारिवारिक निर्णय क्षमता के मध्य सहसंबंध है।
- स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के शैक्षणिक स्तर एवं बचत के मध्य सहसंबंध है।
- स्वयं सहायता समूह के प्रयासों से महिलाओं मे आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक कार्यो में सहभागिता के मध्य सहसंबंध है।
- स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के शैक्षणिक स्तर एवं समूह की गतिविधियों के प्रति जागरूकता के मध्य सहसंबंध है।

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोध पत्र ग्रामीण महिलाओ के सशक्त विकास मे स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति का अध्ययन एक विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। यह शोध कार्य धार जिले की मनावर तहसील से 180 हितग्राहियो की वर्तमान कार्यप्रणाली, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर पारिवारिक निर्णय क्षमता का विकास वर्तमान समूह की गतिविधियॉ, लैंगिक भेदभाव के खिलाफ शक्ति एवं सशक्त होने के बाद सामाजिक स्तर मे वृद्वि हेतु सांख्यिकीय विधि में न्यादर्श चयन से कुल 180 हितग्राहियो का अवलोकन व साक्षात्कार के माध्यम से सर्वेक्षण करके प्राथमिक समंको को प्राप्त करके विभिन्न निष्कर्षो पर पहुचने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र मे द्वितीय समंको के रूप मे विभिन्न प्रकार के प्रकाशित शोधजर्नल्स के लेख, कम्प्युटर एवं स्वयं सहायता समूह की विभिन्न पाठ्यपुस्तको का प्रयोग किया गया है। विभिन्न वार्षिक प्रतिवेदन पत्र पत्रिकाओ के लेख एवं सारांश का उपयोग किया गया है। समंको का विश्लेषण प्रतिशत एवं सांख्यिकीय टेस्ट के माध्यम से चित्रमय प्रदर्शन किया गया है।

प्रदत्तो का विश्लेषण :- ग्रामीण महिलाओं के सशक्त विकास मे स्वयं सहायता समूह की वर्तमान स्थिति संबंधी तालिका``

तालिका कं. – 01

SHG की कार्यप्रणाली से समूह की महिलाओं को लाभ संबंधी विश्लेषणात्मक तालिका

कमांक	SHG की कार्यप्रणाली से आपको कितना लाभ हुआ है?	संख्या	प्रतिशत
1	बहुत अधिक	103	57%
2	कुछ हद तक	51	28%
3	बहुत कम	26	15%
	कुल	180	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त समंको के आधार पर।

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि SHG की कार्यप्रणाली से समूह की महिलाओ को लाभ संबंधी सर्वेक्षण मे यह पाया गया है कि 57 प्रतिशत महिलाओ को बहुत अधिक लाभ हुआ, 28 प्रतिशत महिलाओ को कुछ हद तक लाभ हुआ तथा 15 प्रतिशत महिलाओ को बहुत कम लाभ प्रतिशत प्राप्त हुआ है।

तालिका क्रमांक 02

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बाद आप में पारिवारिक निर्णय क्षमता का विकास संबंधी विश्लेषणात्मक

तालिका–

तालिका क्रमांक 02

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बाद आपमे पारिवारिक निर्णय क्षमता का विकास संबंधी विश्लेषणात्मक तालिका–

क्रमांक	आर्थिक रूप मे आत्मनिर्भर होने के बाद आपमे पारिवारिक निर्णय क्षमता का विकास	संख्या	प्रतिशत
1	पूर्ण रूप से	97	54%
2	कुछ हद तक	47	26%
3	बहुत कम	36	20%
	कुल	180	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त समंको के आधार पर।

उपर्युक्त तालिका के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने से पारिवारिक निर्णय क्षमता में महिलाओ के विकास मे 54 प्रतिशत महिलाओ का कहना है पूर्ण रूप से एवं 26 प्रतिशत महिलाओ का कहना है कुछ हद तक विकास हुआ है एवं 20 प्रतिशत महिलाओ का कहना है बहुत कम पारिवारिक निर्णय क्षमता का विकास हुआ है।

तालिका क्रमांक 03

वर्तमान मे समूह की मुख्य गतिविधियॉ संबंधी विश्लेषणात्मक तालिका

क्रमांक	वर्तमान में समूह की मुख्य गतिविधियाँ क्या हैं	संख्या	प्रतिशत
1	**सूक्ष्म वित्त व ऋण**	85	47%
2	**व्यापार/उद्यम**	68	38%
3	**सामुदायिक सेवा**	27	15%
	कुल	180	100

स्त्रोत–सर्वेक्षण से प्राप्त समंको के आधार पर।

उपर्युक्त तालिका के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमन मे समूह की मुख्य गतिविधियॉ कौन सी है। 47 प्रतिशत समूह की गतिविधियॉ सूक्ष्म वित्त व ऋण है 38 प्रतिशत समूह की गतिविधियॉ व्यापार/उद्यम की है एवं 15 प्रतिशत गतिविधियॉ सामुदायिक सेवा की है।

तालिका क्रमांक 04

क्या SHG ने आपको लैंगिक भेदभाव के खिलाफ खडे होने की शक्ति संबंधी विश्लेषणात्मक तालिका-

क्रमांक	क्या SHG ने आपको लैंगिक भेदभाव के खिलाफ खड़े होने की शक्ति दी ह	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ, पूरी तरह	117	65%
2	कभी-कभी	32	18%
3	संदेह है	31	17%
	कुल	180	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त समंको की आधार पर।

उपरोक्त तालिका के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि समूह सदस्य का 65 प्रतिशत भाग इस बात से हॉ पूरी तरह सहमत है कि SHG ने उन्हे लैंगिक भेदभाव के खिलाफ खडे होने के शक्ति दी है। 18 प्रतिशत समूह महिलाओ का कहना है कभी कभी वे लैंगिक भेदभाव का शिकार होती है एवं 17 प्रतिशत महिलाओं को इस बात पर संदेह है।

तालिका क्रमांक 05

आर्थिक रुप से सशक्त होने के बाद महिलाओ के सामाजिक स्तर मे वृद्धि संबंधी विश्लेषणात्मक तालिका-

क्रमांक	आर्थिक रूप से सशक्त होने के बाद महिलाओ के सामाजिक स्तर मे वृद्धि हुई	संख्या	प्रतिशत
1	बहुत अधिक	72	40%
2	कुछ हद तक	47	26%
3	बहुत कम	61	34%
	कुल	180	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त समंको के आधार पर।

उपर्युक्त तालिका के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि 40 प्रतिशत महिलाओ को आर्थिक रूप से सशक्त होने पर सामाजिक स्तर पर बहुत अधिक वृद्धि हुई है। 26 प्रतिशत महिलाओ को कुछ हद तक सामाजिक स्तर पर वृद्धि हुई है एवं 34 प्रतिशत महिलाओं को बहुत कम सामाजिक स्तर पर वृद्धि हुई है।

समस्याएँ :-

1. ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थापित समूह के सदस्यों की सतत् प्रशिक्षण का अभाव होना।
2. बैंको द्वारा स्वयं सहायता समूहो को ऋण उपलब्ध कराने मे जटिल वैधानिक औपचारिकताओं का होना।
3. समूह प्रोत्साहन के लिये सरकार द्वारा अतिरिक्त सेवाओ की उपलब्धता का अभाव।
4. निजी बैंको द्वारा समूह को दिए गए ऋण पर अधिकतम ब्याज दर होना।
5. स्वयं सहायता समूह मे बचत के साथ ही रोजगार सृजन के अवसरो का अभाव।
6. समूह को डिजीटल बैंकिंग से जोडने के लिये प्रशिक्षण एवं जानकारी का अभाव।

सुझाव :-

1. प्रत्येक समूह के लिये दिशा मार्गदर्शिका पुस्तक का होना चाहिए।
2. समूह से जुडे कमजोर वर्ग की महिला सदस्यो को समूह गठन के लाभ से अवगत कराना।
3. बैंको द्वारा समूह को उपलब्ध किये जाने वाले ऋण प्रकिया को सरलीकृत करना।
4. सरकारी एवं निजी बैंको द्वारा निम्न ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए।
5. नवीन समूहो की स्थापना एवं विकास के लिये बैंको से शीघ्र ऋण उपलब्ध होने की व्यवस्था करना।

निष्कर्ष :-

जीवन के प्रत्येक क्षेत्रो में महिलाओं की सहभागिता एवं स्वतंत्रता से है। जिसमे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृति आदि क्षेत्रो मे महिलाओ की भूमिका मे परिवर्तन हुआ है। महिलाओ का स्वयं पर नियंत्रण, पारिवारिक निर्णय में भागीदारी तथा बाहरी कार्यों में सहयोग करना है। महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत राजनीति प्रशासन, व्यापार वाणिज्य में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को प्रेरित किया है। शिक्षा का विकास, प्रतिनिधित्व एवं कौशल विकास इत्यादि कार्यों में महिलाओ को सशक्त करने में स्वयं सहयता समूह ने एक अहम भूमिका निभाई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रहलाद, सी. के. महिला सशक्तिकरण का सच' (2010) ओमेगा पब्लिकेशन, अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली।
2. यादव एवं शर्मा, भारत में आर्थिक नियोजन' (2010), ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. कुमार, 'शक्ति ने बनाया महिलाओ को आत्मनिर्भर' (2009) समाजवादी दृष्टि 28–29 अक्टूबर।
4. डॉ सुखपाल श्रीवास्तव (2009) 'सदस्यो को एकजुट करते स्वयं सहायता समूह, अक्टूबर 2009 पत्रिका –कुरुक्षेत्र पृष्ठ क्रमांक 15.
5. यादव चन्द्रभान : महिलाओ की सफलता का सशक्त माध्यम स्वयं सहायता समूह कुरूक्षेत्र, जुलाई 2013
6. एम. श्रीवास्तव, मुहम्मद युनुस योजना, 2008, पृ. 18
7. गुप्ता एवं एस. स्वयं सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण भारत का विकाश कुरूक्षेत्र जुलाई 2013, पृ. 23–26
8. पाण्डेय तेजस्कर, पाण्डेय ओजस्कर (2009) समाज कार्य भारत बुक सेंटर 17, अशोक मार्ग, लखनऊ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 188-191
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सनातन धर्म में सत्य की परिभाषा

डॉ. डी. श्रीदेवी
सहायक प्रोफेसर, एस. डी. एन. बी. वैष्णव कॉलेज फॉर वूमेन, क्रोमपेट, चेन्नई।

शोध सार :

यह शोध–लेख सनातन धर्म में "सत्य" की अवधारणा का दार्शनिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि सत्य केवल एक नैतिक गुण नहीं, बल्कि अस्तित्व का मूल सिद्धांत और ब्रह्म का स्वरूप है। वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण तथा महाभारत जैसे प्रमुख ग्रंथों के आधार पर सत्य की व्याख्या की गई है, जहाँ इसे धर्म, आत्मज्ञान और मोक्ष का आधार माना गया है। लेख में सत्य के विभिन्न आयामों 'व्यवहारिक, पारमार्थिक और अनुभवजन्य' का विश्लेषण करते हुए यह बताया गया है कि सत्य का पालन व्यक्ति के नैतिक आचरण, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य है। साथ ही, सत्य और धर्म, सत्य और अहिंसा के पारस्परिक संबंधों को भी स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक संदर्भ में, यह अध्ययन दर्शाता है कि सत्य का महत्व और अधिक बढ़ गया है, विशेषतः उस युग में जहाँ भ्रम, असत्य और नैतिक संकट व्यापक हैं। निष्कर्षतः, यह लेख स्थापित करता है कि सत्य सनातन धर्म का केंद्रीय तत्व है, जो न केवल जीवन के संचालन का आधार है, बल्कि आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति का प्रमुख साधन भी है।

प्रस्तावना :

सनातन धर्म विश्व की प्राचीनतम आध्यात्मिक परंपराओं में से एक है, जिसकी जड़ें वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में निहित हैं। इस धर्म का मूल आधार केवल धार्मिक अनुष्ठानों या सामाजिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है। इन सभी सिद्धांतों में "सत्य" को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

सनातन धर्म में सत्य को केवल नैतिकता का एक अंग नहीं माना गया, बल्कि इसे ब्रह्मांडीय व्यवस्था, आत्मज्ञान और मोक्ष का मूल तत्व समझा गया है। "सत्यं शिवं सुन्दरम्" का सिद्धांत इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि सत्य ही कल्याणकारी और सुंदर है। इस प्रकार सत्य केवल एक विचार नहीं, बल्कि जीवन का आधारभूत तत्व है।

सत्य का शाब्दिक एवं दार्शनिक अर्थ :

"सत्य" शब्द संस्कृत के "सत्" धातु से बना है, जिसका अर्थ है – "जो है", "जो अस्तित्व में है", "जो शाश्वत है"। इस दृष्टि से सत्य वह है जो कभी नष्ट नहीं होता और जो समय, स्थान तथा परिस्थितियों से परे

है।

दार्शनिक रूप से सत्य को दो स्तरों पर समझा जाता है। परम सत्य है जो शाश्वत, अपरिवर्तनीय और सार्वभौमिक है। इसे "ब्रह्म" कहा जाता है। व्यवहारिक सत्य है जो दैनिक जीवन में अनुभव किया जाता है और जो परिस्थितियों के अनुसार बदल सकता है। इस प्रकार सनातन धर्म में सत्य का स्वरूप बहुआयामी है – यह केवल अनुभवजन्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी है।

वेदों में सत्य की अवधारणा :

वेदों में सत्य को ब्रह्मांड की मूल शक्ति के रूप में देखा गया है। ऋग्वेद में "ऋत" और "सत्य" का घनिष्ठ संबंध बताया गया है। "ऋत" का अर्थ है ब्रह्मांडीय व्यवस्था या Cosmic Order, और सत्य उसका अभिव्यक्त रूप है।

वेदों के अनुसार सत्य वह नियम है जो सृष्टि को संचालित करता है। सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति ब्रह्मांडीय व्यवस्था के अनुरूप जीवन जीता है। असत्य से अराजकता उत्पन्न होती है। इस प्रकार वेदों में सत्य केवल नैतिकता नहीं, बल्कि सृष्टि का आधार है।

उपनिषदों में सत्य का स्वरूप :

उपनिषदों में सत्य को ब्रह्म के रूप में व्याख्यायित किया गया है। यहाँ सत्य को अंतिम वास्तविकता (Ultimate Reality) माना गया है।

- "**सत्यमेव जयते**" – सत्य की ही विजय होती है।
- "**सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्**" – प्रारंभ में केवल सत्य ही था।

उपनिषदों के अनुसार, सत्य ही सृष्टि का कारण है और आत्मा का स्वरूप है। सत्य को जानना ही आत्मज्ञान है। इस प्रकार उपनिषद सत्य को ज्ञान और मुक्ति का मार्ग बताते हैं।

भगवद्गीता में सत्य की अवधारणा :

भगवद्गीता में सत्य को केवल तथ्य बोलना नहीं, बल्कि संयमित और हितकारी वाणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता के अनुसार सत्य ऐसा होना चाहिए जो किसी को कष्ट न दे और हितकारी होना चाहिए। सत्य, धर्म के अनुरूप होना चाहिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक नैतिक दर्शन में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सत्य को संवेदनशीलता और नैतिकता से जोड़ता है।

महाकाव्यों में सत्य का महत्व :

रामायण में सत्य को जीवन का सर्वोच्च आदर्श माना गया है। श्रीराम का चरित्र सत्यनिष्ठा का प्रतीक है। उन्होंने अपने पिता के वचन को निभाने के लिए राज्य, सुख और वैभव का त्याग कर वनवास स्वीकार किया। यहां, सत्य व्यक्तिगत हित से ऊपर है और सत्य के लिए त्याग आवश्यक है।

महाभारत में कहा गया है : "**न सत्यात् परो धर्मः**" – सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं। यहाँ सत्य को धर्म का मूल आधार माना गया है। युधिष्ठिर का चरित्र सत्यनिष्ठा का उदाहरण है, यद्यपि जटिल परिस्थितियों में सत्य की परीक्षा भी होती है।

सनातन धर्म में सत्य को विभिन्न स्तरों पर विभाजित किया गया है। व्यवहारिक सत्य, जो समाज और दैनिक जीवन में स्वीकार्य है। पारमार्थिक सत्य, जो शाश्वत और अपरिवर्तनीय है – अर्थात ब्रह्म। अनुभवजन्य

सत्य, जो व्यक्ति अपने अनुभव से समझता है। यह वर्गीकरण यह स्पष्ट करता है कि सत्य केवल एक स्थिर अवधारणा नहीं, बल्कि बहुस्तरीय है।

सत्य और धर्म का संबंध :

सनातन धर्म में सत्य और धर्म एक–दूसरे के पूरक हैं। धर्म का आधार सत्य है। सत्य के बिना धर्म अधूरा है। धर्म का पालन सत्य के माध्यम से ही संभव है। यदि सत्य का अभाव हो, तो धर्म केवल औपचारिकता बनकर रह जाता है।

सत्य और अहिंसा :

सत्य और अहिंसा को एक–दूसरे का पूरक माना गया है। सत्य के बिना अहिंसा अधूरी है और अहिंसा के बिना सत्य कठोर हो सकता है। महात्मा गांधी ने सत्य को ईश्वर के समान माना। उनके अनुसार, सत्य ही परम शक्ति है और सत्य का पालन आत्मशुद्धि का मार्ग है।

सत्य का नैतिक एवं सामाजिक महत्व :

सत्य समाज में विश्वास और स्थिरता स्थापित करता है। सत्य के आधार पर ही न्याय संभव है। सत्य व्यक्ति को ईमानदार और आत्मविश्वासी बनाता है। सत्य समाज में पारदर्शिता और सहयोग को बढ़ावा देता है।

सत्य का आध्यात्मिक महत्व :

योग दर्शन में सत्य को "यम" के रूप में स्वीकार किया गया है। यह आध्यात्मिक साधना का पहला चरण है। सत्य का पालन करने से : मन शुद्ध होता है, आत्मा का विकास होता है, व्यक्ति ब्रह्म के निकट पहुँचता है। आज के डिजिटल युग में गलत सूचनाओं (Misinformation) का प्रसार तेजी से बढ़ रहा है, नैतिक मूल्यों में गिरावट दिखाई दे रही है और सामाजिक विश्वास कमजोर पड़ता जा रहा है। ऐसे समय में सत्य नैतिकता की आधारशिला बनकर उभरता है तथा व्यक्तिगत विकास का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। वास्तव में, सत्य ही समाज को स्थिरता और संतुलन प्रदान करता है।

सनातन धर्म के अनुसार सत्य का अंतिम लक्ष्य आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान का अर्थ है अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना और अपनी सच्ची प्रकृति का बोध करना। आत्मज्ञान का एक महत्वपूर्ण पहलू ब्रह्म के साथ एकत्व का अनुभव करना भी है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को समस्त सृष्टि से जुड़ा हुआ महसूस करता है। "**असतो मा सद्गमय**" – यह प्रार्थना असत्य से सत्य की ओर जाने का मार्ग दिखाती है।

निष्कर्ष :

सनातन धर्म में सत्य केवल एक नैतिक सिद्धांत नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन और ब्रह्मांड का आधार है। यह धर्म, आध्यात्म, और मोक्ष का मूल तत्व है। सत्य का पालन व्यक्ति के जीवन में गहन सकारात्मक परिवर्तन लाता है। यह न केवल उसे आत्मिक शांति प्रदान करता है, बल्कि उसके भीतर संतुलन और संतोष की भावना भी विकसित करता है। जब व्यक्ति सत्यनिष्ठ रहता है, तो समाज में उसे सम्मान और विश्वास प्राप्त होता है, जिससे उसके संबंध मजबूत और स्थायी बनते हैं। इसके अतिरिक्त, सत्य का मार्ग आध्यात्मिक उन्नति का भी आधार है, क्योंकि यह व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप के निकट ले जाता है और उसे उच्च नैतिक मूल्यों के साथ जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सत्य ही जीवन का परम लक्ष्य और सर्वोच्च साधन है।

संदर्भ सूची :

1. राधाकृष्णन, एस., उपनिषदों का मुख्य सार, हार्पर कॉलिन्स, नई दिल्ली, 1994
2. मोहनदास करमचंद गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1927
3. स्वामी शिवानन्द, हिंदू धर्म का सर्वांगीण परिचय, ऋषिकेश : डिवाइन लाइफ सोसाइटी, 2000
4. एकनाथ ईश्वरन, भगवद्गीता (अनुवाद). नीलगिरि प्रेस, 2007

9952951435

sridevipalani21@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 192-195
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

परवरिश की नई परिभाषा : 'मंजरी'

श्रीलक्ष्मी. एस.आर
शोध छात्रा, महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

शोध सार :

मालती मिश्रा द्वारा लिखित किन्नर विमर्श उपन्यास 'मंजरी' के माध्यम से समाज को यह आईना दिखाती है कि समस्या बच्चे की शारीरिक बनावट में नहीं, बल्कि समाज की संकुचित मानसिकता में है। यह कृति मातृत्व की उस जीत का उत्सव है, जो रूढ़ियों को तोड़कर ममता, शिक्षा और परवरिश की एक नई और समावेशी परिभाषा लिखती है।

बीज शब्द : लैंगिक पहचान, परवरिश, उच्च शिक्षा, आम आदमी।

मूल आलेख :

किसी भी व्यक्ति जिसकी लैंगिक पहचान जन्म के समय की लैंगिक पहचान से अलग होती है, वह ट्रांसजेंडर है। ट्रांसजेंडर पूरी तरह से स्वस्थ प्राणी है, जो शारीरिक और मानसिक स्तर पर आम आदमी की तरह सामान्य होता है। उसके मस्तिष्क का विकास आम आदमी के समान है। वह एक आम आदमी या औरत की तरह डॉक्टर, इंजिनियर, वैज्ञानिक सब कुछ बन सकता है। किन्नरों की एकमात्र कमी प्रजनन को लेकर है। ये बच्चे को जन्म नहीं दे सकते। लेकिन इसके सिवाय अब गोद लेने की सुविधा है, और पति–पत्नी बनने का अवसर भी किन्नर व्यक्ति स्वयं चुन लेता है। 'बुजुर्ग हो गए किन्नर जब असहाय हो जाएंगे शरीर से, तो किन्नरों की नई युवा पीढ़ी उस बिरादरी के बुजुर्गों की परवरिश करेगी। उनके पास कमाई का महज एक ही जरिया है, लोगों के यहाँ शादी–ब्याह, बच्चे के जन्म पर बधाई गाना, आशीर्वाद देकर पैसे, कपड़े या अनाज ले जाना है।' इसके अलावा वो बाकायदा सेक्स वर्कर भी बन चुके हैं। इसलिए घर, गली, शहर ढूँढकर अपने जैसे बच्चों को उठा लेते हैं अपने वंशबल बढ़ाने के लिए। यह पाँच या दस साल की बात नहींय सदियों से ये लोग ऐसी जिंदगी जी रहे हैं। जहाँ अधिकतर उपन्यासों में परिवार ऐसे बच्चों को छोड़ देने का उल्लेख मिलता है, लेकिन श्मंजरीश उपन्यास द्वारा उपन्यासकार मालती मिश्रा ने रजिता नामक पात्र के द्वारा दिखाया है कि कैसे एक किन्नर बच्ची जिसे अक्सर समाज मुख्यधारा से बाहर कर देता है, वह अपनी माँ की परवरिश और दृढ़ इच्छाशक्ति से उच्च शिक्षा प्राप्त कर कलेक्टर पद तक पहुँचती है।

एक किन्नर की माँ होना अत्यंत कठिन कार्य है। इस उपन्यास में रजिता एक हिम्मती और क्रांति विचारोंवाली शिक्षित माँ है, जो अपनी किन्नर बच्ची मंजरी के लिए चुनौतियों का सामना करती रहती है। रजिता

मंजरी को यही विश्वास के साथ परवरिश करती है कि उसका कुछ भी अनोखा सृजन नहीं है। सिर्फ रजिता का निर्णय ही मंजरी की जिंदगी में ममता, शिक्षा और परवरिश की एक नई और समावेशी परिभाषा लिख सकती है।

जिस बच्चे के आने की खुशी पूरे घर को होनी चाहिए थी, उसकी शारीरिक पहचान का पता चलते ही सबका व्यवहार बदल गया है। मेघराज जोशी यानी रजिता के ससुर नर्सिंग होम के डॉक्टर के हाथों नोटों की काफी मोटी गड्डी पकड़ाकर कहते हैं, 'किसी भी कीमत पर रजिता के बच्चे की खबर बाहर न निकले या रजिता अस्पताल से डिस्चार्ज हुए बिना चली गई, यह चर्चा का विषय कभी न बने।' समाज क्या कहेगा वाली इस सोच से समाज की कड़वी सच्चाई दिखायी गयी है। 'अस्तित्व' उपन्यास में गिरिजा भारती ने उल्लेख किया है कि 'किन्नर, हमारे पढ़े–लिखे समाज में आज भी उपेक्षित हैं। यहाँ तक कि परिवार वालों की स्थिति भी किन्नर के जन्म पर ऐसी होती है कि घर में किसी की मौत हो गयी है।'

अपनी बच्ची को हिजड़ों से बचाने की एकमात्र तरीके के बजाय रजिता हताशा और डर से अपने तीन दिन के बच्चे को लेकर अस्पताल से भाग गई। हर एक माँ को अपना बच्चा अमूल्य निधि है। रजिता अपनी बच्ची को किन्नर जानकर उसे छोड़ने के सिवाय उसके संरक्षण के लिए कर्तव्यरत थी। रजिता को पता था कि 'कोई कुछ नहीं कर पाता अगर किन्नर लोग आकर बच्चे को ले लें तो पुलिस, कानून सब फेल है हिजड़ों की शक्ति के आगे।' गलती से भी मंजरी का भेद खुल गया तो बच्ची हाथ से छीन ली जाएगी। इसी डर से रजिता किसी ओर के हाथ में एक मिनिट के लिए भी अपनी बच्ची को नहीं सौंपती है। यहां माँ की ममता और बच्ची के भविष्य और सुरक्षा के प्रति सदा अत्यंत जागरूक रहने का चित्रण मिलता है।

प्यार और इज्जत में जमीन–आसमान का फर्क है। बात जब बच्ची की आई वैसे ही बात करने का लहजा बदल गयाय सारा प्रेम तिरोहित हो गया। हेमंत यानी मंजरी के पिता का असलियत सामने आई। सभी ने शर्त रखा कि 'रंजीता अगर बच्चे का परित्याग नहीं करती है, तो अब उसका इस घर में प्रवेश सर्वथा असंभव है। अंततः तलाक ही लेना होगा।' सबको सदा लोग क्या कहेंगे वाली समाज की फिक्र है। पिता के घर में मंजरी को कोई अस्तित्व नहीं है, यह समझकर रजिता हेमंत से तलाक लेती है। रजिता के पिता के दोस्त का बेटा नरेन ने सच्चाई जानकर रजिता से शादी की और मंजरी को आम बच्ची की तरह पालन पोषण करने में वह हमेशा रजिता का साथ निभाता है।

मंजरी जैसा बच्चा होना माँ–बाप और पूरे परिवार के लिए श्राप होती है। अपनी बच्ची को लेकर अनजान जगह पर भाग जाना और उसके बाद एक जगह लोगों से छुप कर अपनी बेटी को पालना, कितना मानसिक त्रासदी का वक्त रहा होगा? रजिता मंजरी को सात साल की उम्र होने तक डायपर पहनाकर स्कूल भेजती थी। जिससे कि मंजरी जरूरत पड़ने पर भी स्कूल टॉयलेट इस्तेमाल न करें। यहाँ माँ द्वारा अपनी बच्ची का भविष्य और सुरक्षा के लिए अत्यंत जागरूक रहने का मार्मिक चित्रण है।

ट्रांसजेंडर होने का एहसास एक व्यक्ति के बचपन से लेकर वयस्क होने तक किसी भी उम्र में हो सकता है। किशोरावस्था में बच्चों को अपनी यौन संबंधी जागरूकता बढ़ती है। लैंगिक जागरूकता शारीरिक एवं

मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। मंजरी भी अपनी किशोरावस्था में अपनी पहचान महसूस करती है। किन्नर किसी दूसरे गृह से आया हुआ अनोखा जीव नहीं है। वह समझ लेती कि उसमें केवल शारीरिक कमजोरी है। बाकी सब साधारण है। माता–पिता वास्तविकता के साथ इनको स्वीकार करें तो इनके जीवन गति ही बदलेगी। इसका उदाहरण बन गयी है मंजरी। रूढ़िवादी सोच और 'लोग क्या कहेंगे' जैसे डर को छोड़कर अपने बच्चे को पहले माँ–बाप को ही अपनाना है। इससे उन्हें तिरस्कृत जीवन यापन न करना पडें। लेखिका ने मंजरी के माता पिता रजिता और नरेन द्वारा यही संदेश प्रस्तुत किया है।

मंजरी को अपनी असलियत पता थी और उसने ईमानदारी से उसे सामने करने का प्रयास किया। वैसे तो मंजरी को देखकर अंदाजा लगाना मुश्किल है कि वह हिजडा है, लेकिन आवाज थोड़ी भारी है। उसको पता था कि अगर उसने सबके सामने एक हिजड़े की तरह परिचय दिया होता तो लोगों की आँखें उसके लिए तुरंत ही बदल जाती। यह केवल मंजरी की बात नहीं, हर एक किन्नर की बात है।

शिक्षित और खुले विचारों वाले माता–पिता होने की वजह से मंजरी की शिक्षा में कोई कमी नहीं रह गयी। मंजरी ने सभी को चुप कराने का और अपना जंग जीतने की एकमात्र शक्ति के रूप में आई.पी.एस बनने का निर्णय लिया था। मंजरी का मत है कि किन्नर होना किसी भी व्यक्ति की वैयक्तिक बात है। इससे किसी दूसरे को इसके बारे में बातें करने का हक भी नहीं है। किन्नरों को दूसरों की तरह समान अधिकार मिलना चाहिए। किन्नर शब्द को जड़ से निकाल फेंकना और उसे आम जनता में शामिल करना है।

मंजरी पांडे प्रथम प्रयास में यू.पी.एस.सी के जनरल विभाग में २८वीं रैंक में आयी। वह अन्य विभाग के अंदर शामिल है। लेकिन उसने यू.पी.एस.सी के नियम के विरुद्ध अपने को फीमेल पर टिक किया है। क्योंकि वह अपने आपको स्त्री ही मानती है। और वह यू.पी.एस.सी बोर्ड के सदस्यों से अनुरोध करती है कि फॉर्म में से श्अन्यश कैटेगरी हटा दी जाए। वह कहती है,षकिसी व्यक्ति की लैंगिक विषमता या जननांग दोष उसके बौद्धिक ज्ञान के आड़े नहीं आना चाहिए।ष रोचकता की बात यह है कि जिस बच्ची का हिजड़ा पैदा होने से जिन परिवारवालों ने सामाजिक भय से उसका परित्याग किया था वही लोग बच्ची के आई.पी.एस पास होने से उसकी काबिलियत पर गर्व करते हैं। यहाँ लोगों की संकुचित मानसिकता दिखायी गयी है। मंजरी के केस में संदेह होने से यू.पी.एस.सी ने उसके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में केस फाइल किया और फिर मंजरी की बातों से सहमत होकर कोर्ट द्वारा उसे सर्विस ज्वाइन करने की अनुमति दी जाती है।

निष्कर्ष :

उपन्यास यह गहरा संदेश देता है कि जब जीवन में माँ,परिवार या किसी दूसरे की जिम्मेदारी और प्रेम जुड़ जाता है, तो वह अस्तित्व की तलाश से ऊपर उठकर अर्थपूर्ण बन जाता है। उपन्यास में दिखाया गया है कि कैसे एक किन्नर बच्चा, जिसे अक्सर समाज मुख्यधारा से बाहर कर देता है, अपनी माँ के परवरिश और दृढ़ इच्छाशक्ति से उच्च शिक्षा प्राप्त कर आई.पी.एस पद तक पहुँच सकता है। रजिता द्वारा यह साबित करती है कि माँ होना केवल जन्म देने का नाम नहीं है, बल्कि निस्वार्थ भाव से सुरक्षा और संस्कार देना भी है।

पूरी तरह से आम लोगों के बराबर सिर ऊँचा करके खड़े होने के लिए किन्नर को मजबूती के साथ अपना

कदम आगे बढ़ाना पड़ेगा। अब इन्होंने अपनी सोच बदली और सड़कों में या ट्रेनों में ताली बजाकर भीख माँगने का धंधा बंद किया। ये अपनी आजीविका के लिए अब अलग काम कर रहे हैं। किन्नर लोगों की स्थिति आज पहले से बहुत ही बदल गयी। इसमें सरकार और कानून भी उनकी सहायता करते हैं। ट्रांसजेंडर को अपने परिवार के साथ जीने का अवसर देना है। शिक्षित लोग ऊँचे विचारधारा वाले होते हैं और वह ट्रांसजेंडर को स्वीकार भी करते हैं। अशिक्षित लोगों के बीच फैले गलतफहमी को दूर करना बहुत मुश्किल ही रह जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. मिश्रा मालती २०२२, मंजरी, लखनऊ, रश्मि प्रकाशन, पृ. १२६

२. वही, पृ. १७

३. भारती गिरजा २०२१, अस्तित्व, कानपुर, विकास प्रकाशन, पृ. ३६

४. मिश्रा मालती २०२२, मंजरी, लखनऊ, रश्मि प्रकाशन, पृ. ३२

५. वही, पृ. ३७

६. वही, पृ. १२२

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 196-198
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीरदास की वाणी में भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक आयाम

डॉ. श्रीनिता पी. आर.
अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग, एन. एस. एस. कॉलेज, पंदलम, केरल विश्वविद्यालय।

शोध सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीन और समृद्ध चिंतनधाराओं में अग्रणी स्थान रखती है। इसका उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि मनुष्य के नैतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास को दिशा देना भी रहा है। इस परंपरा में ज्ञान को आत्मबोध, सत्य की अनुभूति, विवेकपूर्ण जीवन और मानव–कल्याण से जोड़ा गया है। मध्यकालीन संत साहित्य में कबीर का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने जनभाषा के माध्यम से गूढ़ दार्शनिक विचारों को सहज और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया। प्रस्तुत आलेख में कबीर के चयनित काव्यों के आधार पर भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक स्वरूप का विवेचन किया गया है।

बीज शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा, आत्मज्ञान, आत्मोन्नति, आत्मविश्लेषण।

मूल आलेख :

निर्गुण संत परंपरा में साधना, अंतःशुद्धि और चेतना के परिष्कार को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कबीर की वाणी आध्यात्मिक अनुभूति, लोकजीवन और आत्मजागरण का सशक्त माध्यम है। उनके लिए 'राम' किसी बाह्य मूर्ति का नाम नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर विद्यमान परम सत्ता का प्रतीक है। उन्होंने निर्गुण राम का जप करने को कहा है। इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं – "पर कबीरदास के नाम पर प्रचलित पदों और साखियों का सीधासादा अर्थ करने पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि निस्संदेह कबीरदास ने आत्म–विचार को बहुमान दिया है पर जो लोग उसके अधिकारी नहीं हैं उनके लिये शनिर्गुण रामश के जपने का उपदेश भी दिया है। निर्गुण राम के जप का अर्थ वही है जो महावाक्यों के चिन्तन का अर्थ है। नाम–जप का महावाक्य–चिन्तन से इतना अन्तर जरूर है कि नाम जप करनेवाला जहाँ विचार से बिल्कुल शून्य रह सकता है वहाँ महावाक्यों का मनन करनेवाला किसी–न–किसी कोटि के विचार में लगा ही रहेगा। महावाक्यों के स्मरण से अपने में ब्रह्मत्वाभिमान होने का मतलब ही यह है कि अपने को ब्रह्म समझते रहने का अभ्यास करना।"[1] यही है कबीर का निर्गुण राम।

कबीर का मानना है कि मनुष्य सांसारिक आकर्षणों में उलझकर अपने वास्तविक अस्तित्व को भूल जाता है। भौतिक वस्तुएँ क्षणिक सुख प्रदान करती हैं, किंतु स्थायी संतोष नहीं दे सकतीं। इसलिए कबीर मनुष्य को अंतर्मुखी साधना की ओर प्रेरित करते हैं। उनके अनुसार परम सत्य बाहर नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य के भीतर स्थित है।

"राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जन्म गमायो हो।"[2]

इस पंक्ति में जीवन की सार्थकता को आत्म चेतना और ईश्वर–स्मरण से जोड़ा गया है। यदि व्यक्ति अपने आंतरिक सत्य से विमुख रहता है, तो उसका जीवन उद्देश्यहीन हो जाता है। आत्मतत्व का ज्ञान नहीं है तो मनुष्य का जन्म ही व्यर्थ हो जाता है।

कबीर ने सांसारिक मोह की तुलना सेमल के फूल से की है। दूर से आकर्षक दिखाई देने वाले सेमल के फूल के भीतर केवल नीरस रुई ही मिलती है। इसी प्रकार विषय–भोग प्रारंभ में मन को लुभाते हैं, पर अंततः निराशा का कारण बनते हैं।

"सेमर सेइ सुवा ज्यों जहँडे, ऊन परे पछिताई हो।"[3]

यहाँ तोते का उदाहरण देकर मानव की मोहग्रस्त मानसिकता को व्यक्त किया गया है। बाहरी चमक–दमक से प्रभावित व्यक्ति बाद में अपने भ्रम पर पश्चाताप करता है।

कबीर विषय–वासनाओं को ऐसी मादकता मानते हैं जो विवेक को नष्ट कर देती है। जैसे मदिरा व्यक्ति की समझ को प्रभावित करती है, वैसे ही लोभ और मोह मनुष्य को आत्मज्ञान से दूर ले जाते हैं।

"जैसे मदपी गाँठि अर्थ दै, घरहु कि अकिल गमाई हो।"[4]

इस कथन में यह स्पष्ट किया गया है कि मदिरा पीने वाला व्यक्ति, अपने ही पैसे देकर स्वयं बुद्धि खो बैठता है। यानी इंद्रिय–सुख की अंधी दौड़ अंततः मानसिक शांति नहीं दे सकती।

कबीर आत्मज्ञान को अनमोल रत्न के समान मानते हैं। यह संपदा मनुष्य के भीतर ही विद्यमान रहती है, किंतु अज्ञान के कारण वह इसकी पहचान नहीं कर पाता।

"गाँठी रतन मर्म नहिं जाने, पारख लीन्हा छोरी हो।"[5]

अर्थात् राम या ब्रह्म रूपी रत्न सबके हृदय में है जिसे पारखी सद्‌गुरु अपनी आत्मपरख तथा परिक्षा एवं ज्ञान से जान लेता है। इस प्रकार वह साधारण जीवन को भी उच्च चेतना से प्रकाशित कर सकता है।

कबीर उन लोगों की आलोचना करते हैं जो केवल बाहरी धार्मिक आडंबरों के माध्यम से सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। बाह्य त्याग तभी सार्थक है जब उसके साथ आंतरिक शुद्धि भी जुड़ी हो।

"गाँव बसतु हैं गर्भ भारती, बाम काम हंकारा हो।"[6]

यानी गिरि, पुरी, भारती नामक साधु–संन्यासी अहंकार के कारण काम–मोहित होकर कामिनियों के दास बने हैंद्य इस पंक्ति के माध्यम से अहंकार और वासनाओं से ग्रस्त साधकों की स्थिति का चित्रण किया गया है। संत परंपरा में सत्संग को आत्मोन्नति का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। श्रेष्ठ संगति मनुष्य को सद्विचारों और आत्मबोध की दिशा में अग्रसर करती है।

"निर्भय भए तहाँ गुरू की नगरीया, सुख सोवै दास कबीरा हो।"[7]

यहाँ गुरु की नगरिया का अर्थ है, सत्संग जो आत्मज्ञान का कारण बन जाता है। इस प्रकार मन सारी वासनाओं से मुक्त होता है। भय, मोह और अहंकार का लोप हो जाता है तथा शांति का अनुभव होता है।

कबीर यह भी बताते हैं कि मृत्यु सार्वभौमिक सत्य है। सामाजिक स्थिति, ज्ञान या शक्ति किसी को भी इससे मुक्त नहीं कर सकती।

"आय है सो जाएँगे राजा रंक फकीर।"[8]

इस पंक्ति के माध्यम से कबीर बताते हैं कि संसार की सारी चीजें नश्वर हैं और यह विचार मनुष्य को अनासक्ति और संतुलित जीवन की ओर प्रेरित करता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा आत्मनिरीक्षण को आत्मविकास का प्रमुख साधन मानती है। कबीर भी दूसरों की आलोचना करने के बजाय स्वयं को परखने पर बल देते हैं।

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"[9]

यह दोहा आत्मविश्लेषण और विनम्रता के महत्व को प्रतिपादित करता है।

कबीर के अनुसार सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा का अंश विद्यमान है, तब किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाना उचित नहीं है।

"जीव बिना जिव बाँचे नहीं, जिव का जीव उधार।
जीव दया करि पालिये, पंडित करो विचार।।"[10]

जीवों के प्रति दया, प्रेम और संरक्षण का भाव रखना ही सच्चा धर्म है। केवल शास्त्रों का अध्ययन करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि जीवमात्र के प्रति करुणा का व्यवहार ही वास्तविक ज्ञान और धर्म के पालन का आधार है।

निष्कर्ष :

कबीर के दोहे भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक मूल्यों को अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त करते हैं। उनकी वाणी आत्मबोध, नैतिकता, समदृष्टि, करुणा और आध्यात्मिक चेतना का संदेश देती है। उनके विचारों में आत्मनिरीक्षण और अनुभवजन्य सत्य का विशेष महत्व दिखाई देता है। कबीर का चिंतन केवल मध्यकाल तक सीमित नहीं है, बल्कि आज भी जीवन–मूल्यों की स्थापना और मानवीय विकास के लिए समान रूप से प्रासंगिक बना हुआ है।

संदर्भ सूची :-

1. पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'कबीर', हिंदी–ग्रंथ–रत्नाकर कार्यालय, बंबई, संस्करण 1942, पृ. 113
2. व्याख्याकार अभिलाष दास, सद्गुरु कबीर विरचित 'बीजक', पारख प्रकाशक कबीर संस्थान, इलाहाबाद, संस्करण 1995, पृ. 119
3. वही, पृ. 119
4. वही, पृ. 119
5. वही, पृ. 119
6. वही, पृ. 996
7. वही, पृ. 996
8. https://sites.google.com
9. https://hindi.webduniya.com
10. https://www.hindwi.org

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 199-203
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परम्परा और नीतिकाव्य : वैश्विक उत्थान के संदर्भ में

प्रो. सुमन सिंह
हिन्दी विभाग, दयानन्द गर्ल्स पी0 जी0 कालेज, सिविल लाईन्स, कानपुर।

भारत भूमि का अतीत सदैव से गौरवशाली और ज्ञान के भंडार से युक्त रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा सदियों पुरानी है, जिसकी जड़ें हमारी संस्कृति में बहुत भीतर तक समायी हुई है जिस प्रकार भारतवर्ष एक प्राचीन राष्ट्र के रूप में जाना जाता है उसी प्रकार उसकी हजारों वर्षों की ज्ञान परम्परा सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। यह परम्परा वेदों, उपनिषदों, रामायण, गीता और दर्शन जैसी विविध शाखाओं में समृद्ध रही है। इन सभी विधाओं का मूल उद्देश्य केवल ज्ञान का अर्जन नहीं, अपितु उस ज्ञान का समाज व मानवता के कल्याण के लिए प्रयोग में होता रहा है। हजारों वर्षो से संचित ज्ञान इस देश की असली निधि है, जिससे हमारी संस्कृति पल्लवित–पुष्पित होकर गौरवशाली कालजयी एवं अक्षुष्ण है। भारतीय ज्ञान की इस अविरल धारा में हिन्दी साहित्य के सभी साहित्यकार प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के अपने ज्ञान से यहां की उर्वर भूमि को सृजित और नवोन्मेषित किया। जिसमें हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता के साथ ज्ञान विज्ञान की अप्रतिम झांकी मिलती है, जो वैश्विक उत्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का इतिहास कालजयी है। यह इतना विशाल और प्रभावी रहा है कि पूर्व में कई देशों के लोग यहाँ आये और आकर बस गये। यहीं नहीं कईयों ने तो भारत के ज्ञान को प्राप्त कर अपने देशों में इसका सदुपयोग किया, इसके बावजूद ज्ञान का भंडार इतना भरा पड़ा है, कि उसमें से कई बेशकीमती हीरे अभी भी निकाले जा रहे हैं। भारत ने शुरू से पूरी दुनिया का स्वागत किया, जिसका नुकसान भी भारत को तक्षशिला और नालंदा के रूप में उठाना पड़ा। इसके बाजवूद भारत इतना समृद्ध है, जिसका उदाहरण हिन्दी साहित्य में देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के विशेष भक्तिकाल जिसमें भारतीय ज्ञान परम्परा की निर्मल धारा प्रवाहित होती है, जो आज भी लोगों को अभिसिंचित कर रही है, इसी कारण इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल भी कहा जाता है। इसी तरह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की प्रबल भावना हिन्दी साहित्य के नीति काव्य में भी दिग्दर्शित होता है, जो भारतीय ज्ञान परम्परा का संवाहक बना, जिसमें विश्व मानवता का जीवनादर्श उपस्थित होकर भारतीय संस्कृति की व्यापकता, महत्ता और विशालता का हमें बोध कराता है। ''नीति काव्य की दृष्टि से आदिकाल और भक्तिकाल की तुलना में रीतिकाल अधिक महत्वपूर्ण है। इस काल में आकार ''नीति'' जैसे नियम को स्वतन्त्र रचना के अन्तर्गत व्यापकता और विविधता के साथ प्रस्तुत किया गया, जो कि इसमें पूर्व देखने को

नहीं मिलता। रीतिकाल में नीतिकाव्य लिखने वाले कवियों की एक बड़ी संख्या है।[1]

रीतिकालीन कवियों ने भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुसार ही तत्कालीन समाज में प्रचलित बुराईयों की निंदा की और मानवता हेतु जीने का सही मार्ग प्रशस्त किया। नीतिकाव्य में समााजिक, धार्मिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय विषयों पर भी बात की जाती है। अगर हम कहें तो रीतिकालीन काव्य जीवन का, जीवन के दर्शन का काव्य है। जीवन से विमुख होकर इन कवियों ने कुछ नहीं लिखा इस संदर्भ में रामस्वरूप शास्त्री जी लिखते हैं– ''समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष की उचित नीति से प्राप्ति कराने के लिए जिन निधि को निषेध मूलक वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देशकाल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है उन्हें नीति शब्द से अभिहित करते हैं।[2] यहीं नीति काव्य भारतीय समाज के उत्थान के साथ–साथ वैश्विक पटल पर अपनी अमीट छाप छोड़ी है।

कविवर वृंद रीतिकाव्य के चर्चित और गणमान्य कवियों में प्रमुख हैं। इनकी प्रसिद्ध मुख्यतः नीतिकार कवि के रूप में रही है। ''नीति सतसई'' नामक इनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसमें कवि ने अपने जीवनानुभवों के आधार पर लोकजीवन से सम्बन्धित व्यवहारिक बातों को सुंदर दृष्टांतों के साथ सरलतम भाषा में प्रस्तुत किया है। कवि को विद्वानों ने सुक्तिकार या नीतिकार के रूप में स्मरण किया है। इस संदर्भ में पं0 श्री शुक्ल लिखते हैं कि ''कविवर वृंद के काव्य का अनुशीलन करते समय हमें प्रतीत होता है कि उनके जीवन का अनुभव बहुत व्यापक था। उनकी वाणी में सुख–दुख भरे अनुभव जन्य निष्कर्ष अच्छी प्रकार से उभरे हैं।[3] नीतिकाव्य में जीवन के प्रवृत्तिपरक अथवा निवृत्ति परक विचारों के द्वारा समाज को सचेत किया जाता है। वृंद की कविता में अनेक प्रकार की सूक्तियां है। उन्होने इसके माध्यम से तरह–तरह की करने योग्य तथा न करने योग्य मान्यताएं स्थापित की हैं। इनका मानना था कि व्यक्ति के पास चाहे जितनी भी सम्पत्ति हो, लेकिन अच्छे व्यवहार व गुण के बिना सब व्यर्थ है। गुणों के कारण ही लोग तोता पालते हैं, कौए को नहीं–

''**मान होत है गुनहि ते, गुन बिन मान न होई।**
सुक सारी राखे सबे, काग न राखे कोई।।''[4]

वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों के विघटन के दौर में रीति–कालीन कवियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित मूल्य पूर्णतः प्रासंगिक है। ये मूल्य भटके हुए मानव को सही पथ प्रदर्शित करने की सामर्थ्य भी रखते हैं। वर्तमान समय में लोग कम परिश्रम के द्वारा सफलता प्राप्त करने की कामना करते हैं। कविवर वृंद ने जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम करने के लिये प्रेरित किया है–

"श्रम ही तें सब मिलत है, बिना श्रम मिले न काहि।
सीधी अंगूरी घी जम्यौ क्यों हू निकरै नॉहि।।"[5]

आधुनिक समाज में भाग्यवाद को लेकर अत्यन्त हास्यास्पद स्थितियॉ देखी जा सकती है। आज के युवा वर्ग कम परिश्रम द्वारा ज्यादा से ज्यादा पाने की इच्छा करते हैं। अगर उनकी इच्छापूर्ति नहीं होती है तो वे भाग्य को दोष देते हैं नीति कवियों का मानना है कि पुरूषार्थ करने वालों का ही भाग्य साथ देता है। इसलिये भाग्य को दोष देना उचित नहीं मनुष्य को कर्ममार्गी बनना चाहिए। गिरिधर कविराय का मानना है कि यदि व्यक्ति कर्म करने में ही उदासीनता दिखायेगा तो इसमें 'दैव' क्या कर सकते हैं–

"कॉंटे तले बिछाय के करै पुरूष कोउ सैन।

देत समय को दोष पुनि, तनक परे नाहिं चैन।।''[6]

प्रायः सभी नीतिकारों ने लालच, स्वार्थपरता जैसे अवगुणों की कटु आलोचना की है। आज लोग स्वार्थ सिद्ध हेतु ही दोस्ती व रिश्ता निभाते हैं। कवि गिरिधर कहते हैं कि– 'दुनिया मतलब की है। लोग मतलब के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। इस अर्थ प्रधान युग में पैसे का मूल्य बढ़ गया है। बिना पैसे या स्वार्थ के कोई पूछने वाला नहीं–

''साई सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लगि पैसा गांठ में, तब लग यार हजार।।
पैसों रह्यो न पास, या मुख से नाहिं बोले।
बिनु मतलब व्यवहार, यार बिरला कोई साई।।''[7]

नीतिकाव्य वस्तुतः जीवन के दर्शन का काव्य है। वर्तमान युग में धनोपार्जन की प्रक्रिया में व्यक्ति ने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया है। इन कवियों का मानना है कि समाज में फैली सभी बुराईयों की जड़ धन ही है। इसके उदाहरण नित्य–प्रति हमें समाज में देखने के लिये मिल ही जाते हैं। लोग व्यक्ति के गुणों को नहीं उसकी धनराशि को देखकर उसका आंकलन करने लगे हैं। कवि दीनदयाल गिरी जी इंसान को मानवीय मूल्यों का दर्पण दिखाते हुए लिखते हैं–

''निर-बुद्धि धनमान को मानत सकल जहान।
लाखि दरिद्र विद्वान को जग जन करै मिलान।।''[8]

वर्तमान समय में पारिवारिक विघटन तेजी से हो रहा है। संयुक्त परिवार की बात ही छोड़िए अब तो बच्चे अपने माता–पिता को बेसहारा छोड़कर धर्नाजन की आंधी दौड़ में शामिल होते जा रहे हैं। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा में परिवार में आपसी प्रेम व सम्मान का बहुत महत्व था। कवि वृंद पुत्र के कर्तव्य व गुण का बोध कराते हुए उसकी भारतीय ज्ञान परम्परा को निभाने की बात कर रहे हैं–

''पिता भगत सुत होय तो पितु के चलत सुभाय।
रामराज सुख छॉड़ि के बनवासी भये जाय।।''[9]

वर्तमान समय में धर्म को लेकर भी खूब राजनीति होने लगा है। धर्म को मजहबी और कट्टरपंथी खाँचों में विभाजित करने और देखने का उपक्रम होने लगा है। लोग आपस में एक–दूसरे धर्म के दुश्मन बनते जा रहे है, जिसके परिणामस्वरूप जन–धन की हानि बड़े स्तर पर होने लगा है, ऐसे वातावरण में कवि गिरिधर की यह पद हमें सचेत रहने की प्रेरणा देता है व्यंग्य द्वारा उन धर्म गुरूओं की सच्चाई सामने लाते है, जो धर्म की आड़ में भोली–भाली जनता को गुमराह करते हैं–

''पैगम्बर पिर ओलिए, सब मजहब के स्वान
मूसे आठो याम यें बिन मौला पहचान
कह गिरिधर कविराय दुनियाबी के आडम्बर
फितने में पच भुए, औलिए पीर पैगम्बर।।''[10]

नीति कवि सामाजिक लोक चेतना से सपृक्त थे। इनके काव्य में मिलने वाली लोक जागृति रूपी चेतना अपने युग की सीमाओं का अतिक्रमण करके सार्वजनिक बन गई है। समाज की बदलती परिस्थितियों से नीति

कवि अत्यन्त सावधान और सचेत थे। स्वार्थ और लोभ की मनोवृत्तियों का प्रसार, मनुष्य का पारस्परिक छल–कपट युक्त व्यवहार तथा ईर्ष्या व द्वेष की भावना को इन नीतिकाव्यकारों ने बहुत पहले ही देख लिया था। जिसे वे नीतिपरक रंगों में रंगकर उसे समाज के सम्मुख रखकर आत्म संतोष का अनुभव करते थे। आज भी समाज में सामाजिक अव्यवस्था न नैतिक मूल्यों का पतन जारी है। आज भी समाज में तरह–तरह की भ्रांन्तियां, विकृतियाँ तथा उलझने व्याप्त है। जीवन की वास्तविक नीतिकथन का क्षेत्र है 'नीतिकाव्य'। परिवार, समाज, धर्म, जाति, मित्र, शत्रु, सज्जन, दुर्जन आदि विषयों पर नीति कवियों ने अपनी कलम चलाई है, जो हमें तद्‌युगीन समाज की सामाजिक संरचना में जीवन मूल्यों के विश्लेषण में महत्वपूर्ण तथ्य एवं सूत्र प्रदान करती है।

अच्छे स्वास्थ्य, बल, पराक्रम की कामना करते हुए भी रीति कालीन नीतिकवि इस बात से परिचित थे कि इन सांमती समाज में बलवान, पराक्रमी और धनी व्यक्ति आम जन साधारण व्यक्तियों का उत्पीड़न करने से नहीं चूकत। नीति कवि का मानना था कि शरीर, बल, धन एक न एक दिन समाप्त हो ही जाता है। व्यक्ति का वास्तविक आभूषण एवं शक्ति उसका अच्छा चरित्र ही है। मनुष्य का प्रिय वचन मृदू स्वभाव अपनी छाप छोड़ ही जाता है।

"सज्जन के प्रिय वचन तै तन संताप मिटाय।
जैसे चंदन लेप तै मापन तन को जाय।।"[11]

नीति कवियों ने व्यक्ति के सामाजिक, चारित्रिक विकास में सत्य वचन के महत्व को स्थापित किया है, क्योंकि सत्य शाश्वत है और झूठे व्यक्ति का कोई सम्मान नहीं करता–

"जग परतीत बढ़ाइए रहित सांचो होय।
झूठे नर की साँच हूँ, सखि न माने कोय।।"[12]

व्यक्ति का स्वास्थ्य, शक्ति, वाणी आदि गुण व्यक्तित्व के वाह्य अंग हैं और अच्छा चरित्र उसका भीतरी पक्ष। चारित्रिक गुणों के प्रकाश से ही व्यक्तित्व परिष्कृत होता है। ''रीतिकालीन नीति कवियों ने एक ओर चारित्रिक दुर्गुणों की निंदा की है, वहीं दूसरी ओर सकारात्मक गुणों की प्रशंसा भी की है।।[13] बिना स्वार्थ के परोपकार करना धार्मिक, सामाजिक दृष्टि से उत्तम चरित्र माना गया है लेकिन वर्तमान समय में ऐसे लोगों की संख्या अत्यल्प ही है।

इस प्रकार मानवीय गुणों से युक्त नीति परक शिक्षा देना भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रक्रिया बराबर चलती रही है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन नीतिकाव्य युगान्तकारी सृष्टि के लिए जन चेतना का संवाहक और प्रासंगिक भी है। जो भारत ही नहीं सम्पूर्ण जगत के उत्थान हेतु उपयोगी है। नीतिकाव्य जीवंतता और सरसता के कारण समसामयिक के घेरे बन्दी को लांघकर सार्वभौगिक एवं सार्वकालिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है, क्योंकि बिना उदात्त मूल्यों के भविष्य की ओर जाना मानव जाति के लिए हानिकारक है। यह समस्त आदर्श एवं मानवमूल्य तब तक चिर स्थायी और जनचेतना के संवाहक बने रहेगें, जब तक मानव जीवन इस धरती पर कामय है। यहीं हमारे भारतीय ज्ञान परम्परा की सार्थकता है।

संदर्भ :–

1. सहृदय पत्रिका– विशेषांक भाग–2, जुलाई–दिसम्बर, 2020, पृ0–343

2. हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास–राम स्वरूप शास्त्री, रसिकेश–पृ0–15
3. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल– पृ0 –04
4. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल– पृ0– 64
5. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल– पृ0– 73
6. गिरिधर कविराय ग्रंथावली– किशोरी लाल गुप्त– पद–199
7. गिरिधर कविराय ग्रंथावली– किशोर लाल गुप्त– पद–160
8. दृष्टांत तरंगिनी– दीन दयाल गिरि– पद–73
9. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल – पृ0–111
10. गिरिधर कविराय ग्रंथावली– किशोरी लाल– पद–54
11. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल– पृ0– 60
12. वृंद सतसई– पं0 श्री शुक्ल– पृ0– 65
13. हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास–रामस्वरूप शास्त्री रसिकेश, पृ0–552

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2026 Page No. : 204-207
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा में दिव्यांगजन और पुनर्वास

सुनील कुमार
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
जगदगुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन काल से मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और संस्कृति विकास का आधार रही है वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा को आम जनमानस तक पहुंचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय ज्ञान परंपरा में सभी लोगों को सम्मान देने की भावना रही है। प्राचीन ग्रंथो में कई ऐसे दिव्यांग पत्रों का वर्णन मिलता है। जिन्होंने अपने ज्ञान और क्षमता से समाज में विशेष स्थान प्राप्त किया है इससे पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में दिव्यांगजनों को समान दृष्टि से देखा जाता था।

आज के समय में सरकार ने दिव्यांगजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 (RPWD ACT 2016) के अंतर्गत दिव्यांग की श्रेणियां को 7 से बढ़ाकर 21 किया गया है इस कानून के अनुसार सरकारी नौकरी में चार प्रतिशत तक का आरक्षण का प्रावधान है तथा उच्च शिक्षा में पांच प्रतिशत तक का छूट प्रदान की जाती है 7 से 18 वर्ष तक के बच्चों को निरूशुल्क शिक्षा का भी प्रावधान है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक दिव्यांगजन दोनों ही सामान्य शिक्षा और समावेशित पर आधारित है। इनका उद्देश्य समान अवसर प्रदान करना है।

मूल शब्द : दिव्यांग, भारतीय ज्ञान परंपरा गुरुकुल शिक्षा, पुनर्वास, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम।

प्रस्तावना :

प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुल प्राणी पर आधारित थी इसमें गुरु और शिष्य के बीच ज्ञान का आदान–प्रदान होता था। गुरु केवल पढ़ाई नहीं बल्कि जीवन जीने के लिए सही दिशा भी देते थे। संस्कृत में गुरु शब्द का अर्थ है अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला व्यक्ति भारतीय ज्ञान परंपरा वेदों उपनिषदों, आयुर्वेद, योग दर्शन और गणित जैसी विद्या से समृद्ध रही है। इस परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना नहीं बल्कि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना था। गुरुकुल प्राणी में शारीरिक मानसिक और नैतिक शिक्षा भी दिया जाता था जो समाज के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण योगदान है।

ज्ञान परंपरा में भारतीय संस्कृति :

भारतीय संस्कृत में प्राचीन समय से ही गुरु, ऋषि, दार्शनिक विचार को बहुत सम्मान दिया गया है समाज को सही दिशा देने का काम विद्वानों और आध्यात्मिक व्यक्तियों को सौंपा जाता था। यहां धर्म को केवल पूजा पाठ तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उसे आत्मज्ञान चिंतन और अनुभव से जोड़ा गया भारतीय संस्कृति का उद्देश्य मनुष्य को केवल धनवान बनना नहीं था बल्कि उसे मानसिक नैतिक और आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ बना था। ऐसी विशेषताएं किसी बार–बार या अज्ञानी समाज की नहीं हो सकती या एक उच्च और विकसित सभ्यता का प्रमाण है। पश्चिमी सभ्यता और भारतीय सभ्यता का प्रमाण है। पश्चिमी सभ्यता और भारतीय सभ्यता की तुलना भी करते हैं कि पश्चिमी सभ्यता अधिकतर भौतिक प्रगति विज्ञान और बाहरी सफलता पर ध्यान देती है, जबकि भारतीय संस्कृति में आत्मा धैर्य और जीवन के गहन सत्य को समझने का प्रयास किया गया है। इसलिए भारतीय संस्कृति अलग आवश्य है लेकिन किसी भी प्रकार से गलत नहीं है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक मान्यता और मानव कल्याण की भावना विशेष रूप से दिखाई देती है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए लेखक यूनान और रोम का उदाहरण देते हैं। यूनान ज्ञान, दर्शन, कला और साहित्य में बहुत महान था, लेकिन युद्ध में वह रोम से हार गया। दूसरी ओर रोम शक्तिशाली और विजयी था। फिर भी आज दुनिया यूनान की संस्कृति को अधिक महान मानती है। इससे यह सिद्ध होता है कि केवल सैन्य शक्ति या राजनीतिक विजय ही किसी संस्कृति की श्रेष्ठता तय नहीं करती। लेकिन उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएँ आज भी जीवित हैं। इसलिए किसी राष्ट्र की राजनीतिक हार से उसकी संस्कृति समाप्त नहीं हो जाती।

लेखक मानते हैं कि भौतिक समृद्धि भी सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। वे कहते हैं कि भारत प्राचीन और मध्यकाल में व्यापार, धन–संपत्ति, सामाजिक संगठन और आर्थिक समृद्धि में बहुत आगे था। भारत को "सोने की चिड़िया" कहा जाता था। विदेशी यात्री और ऐतिहासिक दस्तावेज भारत के वैभव और समृद्धि का वर्णन करते हैं। उस समय भारत का व्यापार दूर–दूर तक फैला हुआ था। और यहाँ की कला, उद्योग तथा सामाजिक व्यवस्था विकसित थी।

आज जब भारत गरीब और कमजोर दिखाई देता है, तो लोग उसकी संस्कृति को भी कमतर समझने लगते हैं। लेकिन यह दृष्टिकोण गलत है। पहले पश्चिमी देश भारत के ऐश्वर्य और वैभव को देखकर आश्चर्य करते थे, जबकि आज वही लोग भारत की गरीबी को उसकी संस्कृति की कमी बताने का प्रयास करते हैं।

आगे लेखक भारतीय राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक व्यवस्था की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि भारत की प्राचीन व्यवस्था कोई साधारण उपलब्धि नहीं थी। यहाँ शासन, समाज और अर्थव्यवस्था का अच्छा संगठन था। हालांकि उसमें कुछ कमियाँ भी थीं, लेकिन इतनी विशाल सभ्यता में कुछ कमजोरियाँ होना स्वाभाविक है। दुनिया की कोई भी सभ्यता पूरी तरह दोषरहित नहीं रही।

अंत में लेखक निष्कर्ष देते हैं कि भारत की असफलता उसकी संस्कृति की वजह से नहीं हुई, बल्कि समय के साथ उसके पतन और सांस्कृतिक मूल्यों के कमजोर पड़ने के कारण हुई। भारतीय संस्कृति आज भी अपने उच्च आदर्शों, आध्यात्मिकता, ज्ञान और मानव कल्याण की भावना के कारण विश्व की महान संस्कृतियों में गिनी जाती है।

दिव्यांगजन अधिनियम एवं पुनर्वास :

मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। वह जीवन के प्रत्येक क्षण में विभिन्न अनुभव से गुजरता है, कुछ अनुभव सुखद होते हैं जिनकी स्मृति मात्र से मन प्रसन्न होता है। वहीं कुछ अनुभव ऐसे भी होते हैं जो पीड़ा दुःख और अवसाद से भर देते हैं। जीवन एक सटीक प्रवाह नदी की भांति है, जिसमें आने वाली बाधाएं उसकी गति को रोक सकती हैं परंतु उसकी निरंतरता को समाप्त नहीं कर सकती। समाज केवल लोगों का समूह नहीं बल्कि उनके बीच वैचारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों का समन्वय है। समाज में सभी वर्गों की भागीदारी आवश्यक होती है जहां एक ओर शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से सक्षम रहता है वहीं दूसरी ओर कुछ लोग इन क्षेत्रों में कमजोर भी होते हैं इसी वर्ग में दिव्यांगजन शामिल है।

दिव्यांगजन अधिनियम वह कानून है जो दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करता है और उन्हें समाज में समान अवसर प्रदान करता है। भारत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 लागू है।

अधिनियम के मुख्य उद्देश्य :

- दिव्यांग व्यक्तियों को समान अधिकार देना।
- शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जीवन में भेदभाव रोकना।
- सार्वजनिक स्थानों, भवनों और परिवहन को सुगम बनाना।
- दिव्यांग व्यक्तियों को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर देना।
- सरकारी योजनाओं और सुविधाओं का लाभ दिलाना।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ :

- दिव्यांगता की श्रेणियाँ बढ़ाकर 21 की गई हैं।
- शिक्षा और रोजगार में आरक्षण की व्यवस्था है।
- सरकारी एवं निजी संस्थानों में भेदभाव करना दंडनीय है।
- दिव्यांग व्यक्तियों के लिए सुगम वातावरण (Accessibility) सुनिश्चित किया जाता है।
- महिलाओं और बच्चों के विशेष अधिकारों का संरक्षण किया जाता है।

पुनर्वास (Rehabilitation)

पुनर्वास का अर्थ है दिव्यांग व्यक्ति को ऐसी सहायता प्रदान करना जिससे वह अधिक से अधिक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जी सके।

पुनर्वास के प्रकार :

- **चिकित्सीय पुनर्वास** – उपचार, दवाएँ, कृत्रिम अंग, फिजियोथेरेपी आदि।
- **शैक्षिक पुनर्वास** – समावेशी शिक्षा, विशेष शिक्षा, सहायक उपकरण।
- **व्यावसायिक पुनर्वास** – रोजगार प्रशिक्षण और कौशल विकास।
- **सामाजिक पुनर्वास** – समाज में सम्मानपूर्वक भागीदारी और सामाजिक स्वीकृति।
- **मनोवैज्ञानिक पुनर्वास** – परामर्श और मानसिक समर्थन।

पुनर्वास का महत्व :

- आत्मविश्वास बढ़ाता है।

- शिक्षा और रोजगार के अवसर प्रदान करता है।
- व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है।
- समाज में समान भागीदारी सुनिश्चित करता है।

जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाता है। दिव्यांगजन अधिनियम दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा करता है, जबकि पुनर्वास उन्हें अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास करने और समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीने में सहायता प्रदान करता है। दोनों मिलकर समावेशी और समानतापूर्ण समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

१. मंगल, एस. के. एवं मंगल, शुभ्रा : (2017) समावेशी शिक्षा का सृजन, शिप्रा प्रकाशन, नई दिल्ली।

२. श्री अरविंद आश्रम पांडिचेरी भारतीय संस्कृति के आधार।
मुद्रक : श्री अरविंद आश्रम प्रेस पांडिचेरी

३. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995, भारत सरकार

४. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999, भारत सरकार।

५. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय प्रकाशक –उदयाचल आर्यकुमार रोड, पटना, प्रथम संस्करण, मार्च 1956 ई०

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh
SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115